घूमते नक्षत्र

पुष्पा महाजन

साहित्य संगम
लुधियाना

घूमते नक्षत्र

अगस्त
१९६०

पहला संस्करण
११००

प्रकाशक :
स० जीवन सिंह एम० ए०
साहित्य संगम,
क्लाक टावर, लुधियाना

मुद्रक :
स० जीवन सिंह एम० ए०
लाहौर आर्ट प्रेस,
लुधियाना

मूल्य ५.००

घूमते नक्षत्र

१

रामनाथ अभी कार्यालय से आकर बैठे ही थे कि पत्नी ने
ास मुख आकर उनका स्वागत किया। कोट उतार कर
ाते हुए उन्होंने पत्नी सावित्री से पूछा, 'कोई पत्र ?' 'जी,
क लिफाफा है। सम्भवतः उन्हीं लोगों के यहां से आया है।'
त्वरा से सावित्री भीतर गई और लिफाफा ले आई।
िफाफा खोलते हुए रामनाथ के हाथ कांप रहे थे। सावित्री
ा मन धड़क रहा था। हृदय को थाम वह भगवान से कुछ मांग
ही थीं। किन्तु···यह···क्या ? लिफाफा रामनाथ के हाथ से
ूट कर गिर पड़ा। वर्ण विवर्ण हो गया और माघ के शीत
ातावरण में भी स्वेद कण माथे पर झलक आये। सावित्री
वी घबरा गई। पुकार कर लड़कियों को बुलाया। वे तीनों
ागी २ आईं। रामनाथ के हाथ-पांव ठन्डे पड़ गये। बड़ी
ड़की साधना शीघ्रता से दूध गरम करने लगी। छोटी सरिता
ौर नीला कपड़ा लेकर पांव मलने लगी। लगभग पन्द्रह मिनट
के पश्चात रामनाथ स्वस्थ हुए। फीकी मुस्कान से उन्होंने
ारिजनों को देखा और उठने का उपक्रम किया। पत्नी ने
ूछा, 'क्या हो गया था ?'

'कुछ नहीं सावित्री।'

तब तक साधना ने वह पत्र पढ़ लिया था। कुछ क्षणों के
लिये उसकी स्थिति भी विक्षिप्त हो गई। उसे लगा जैसे नेत्रों

के सम्मुख अनेकों अन्धकार पूर्ण परछाइयां नृत्य कर रही हों। फिर वह सम्भल गई। मुख जो रक्त हीन हो गया था, पुनः स्वस्थ हो गया। उत्सुकता से मां ने पूछा—'क्या लिखा है बेटी ?'

'सगाई छूटगई मां।' साधना दृढ़ता से बोली, किन्तु सावित्री देवी तो एकदम अर्द्धचेतन सी हो गई। कुर्सी का सहारा लेकर भूमि पर बैठ गई। उसकी अवस्था पति से भी बुरी हो गई। बेचारी साधना और भी अधिक विक्षिप्त हो गई। उसी के कारण माता पिता की यह दुर्दशा थी। वह सुशिक्षिता थी। वैसे जिसे आजकल शिक्षा नाम से सम्बोधित करते हैं वह तो उसे नहीं मिली थी फिर भी वास्तविक शिक्षा उसने ग्रहण की थी। उसकी शिक्षा ने उसे सिखाया था कि मानव आंधी और तुफ़ान में भी आशा का सम्बल न छोड़े। चाहे वह केवल अट्ठारह वर्ष की ही थी फिर भी परिस्थितियों की जटिलता ने उसे कष्ट सहने में पर्याप्त रूपेण सशक्त बना दिया था। भाई बहिनों में साधना बड़ी थी और इस बड़प्पन ने उसे आयु से अधिक बड़ा रहना सिखा दिया था। साधना मां का उपचार करने लगी।

'मां, इस प्रकार दिल छोटा करने से क्या होगा ? तुम्हें तो भगवान में विश्वास है। तुम्हीं तो कहा करती हो कि होता वही है जो कर्तार को स्वीकार होता है। एक लघु कण भी उसकी आज्ञा के बिना हिल नहीं पाता; फिर इतनी निराशा क्यों ?'

साधना के शब्द मां को उठाने में सफल हो गये। नेत्रों में अश्रुकण लिये सावित्री ने अपने अन्तर्भवनवासी से प्रार्थना की कि वह उसे सब सहने की शक्ति दे।

रामनाथ भी अब सम्भल गये थे। पत्र के अनेक टुकड़े करके उन्होंने हवा में उड़ा दिये जैसे उनकी कुछ आशाएं वायु में बिखर गई हों। काफ़ी देर तक वे उन टुकड़ों को हवा में उड़ते देखते रहे। फिर एक निश्वास लेकर अखबार पढ़ने लगे। सावित्री देवी कार्य व्यस्त हो गई और साधना······वह एकान्त चाहती थी······छत पर जाकर विक्षिप्त सी टहलने लगी। दोनों छोटी बहिनें इस सब को समझ नहीं पा रही थीं।

रामनाथ एक स्थानीय हाईस्कूल में शिक्षक का कार्य करते थे। यह महंगाई का युग और वेतन कुल एक सौ पचहत्तर रुपये। तिस पर छः प्राणियों का परिवार। परीक्षा के दिनों में कुछ टयूशनें इत्यादि मिल जाती थीं तो आय भी बढ़ जाती। नहीं तो उसी सीमित वेतन में ही मकान का किराया, बिजली का बिल आदि जुटाना पड़ता था। आठ आने सेर तो दूध था, सेर भी रोज लिया जाये तो पन्द्रह रुपये व्यय हो जाते। नहीं तो रामनाथ ने वह समय भी देखा था जब दूध छः पैसे सेर बिकता था। कभी ननिहाल जाते थे तो रात्रि भोजन के समय नानी एक पैसा देतीं कि रबड़ी ले आओ और दोना भर रबड़ी आ जाती थी। सत्रह रुपये मन आटा वह भी मन डेढ़ मन लग जाता। अमृतसर में रहते थे सो तीर्थ दर्शन करने वाले अतिथि भी प्रायः आते रहते। सावित्री गृहस्थी की इन उलझनों पर झल्लाती रहती। तीन-तीन जवान लड़कियां जिसके सिर बैठी हों वह मां क्यों न चिन्तित हो। कुछ तो संग्रह होना चाहिये परन्तु स्थिति यह थी कि पहली तारीख के चार दिन पूर्व ही रुपये चुक जाते और उस समय जैसे निर्वाह होता वह कहने की बात नहीं। इसी आर्थिक तंगी के कारण साधना का अध्ययन रुक गया था। छोटे तीनों बच्चे पढ़ते थे। सरिता दसवीं में थी,

नीला सातवीं में और सबसे छोटा परितोष अभी चौथी में था। साधना अध्ययन में काफ़ी मेधावी थी। मैट्रिक में बिना किसी सहायता के उसने प्रथम श्रेणी ली थी। वह चाहती थी आगे पढ़े किन्तु किसी प्रकार भी राजकीय कालेज में उसे निःशुल्क प्रवेश न मिल सका। तब उसने प्रभाकर प्रवेश कर लिया। उसकी एक और सहेली प्रभाकर में पढ़ रही थी सो पुस्तकें इकट्ठी पढ़ने का सुभीता था। प्रभाकर भी उसने कर लिया पर आगे पढ़ने का किसी प्रकार भी प्रबन्ध न हो सका।

साधना की सगाई जहां हुई थी वह उनके मित्र का ही पुत्र था। और यह सगाई भी एक-दम नदी नाम संयोग ही था। रामनाथ एक बार कार्य-वश अम्बाला जा रहे थे कि जालन्धर से ला: ज्ञानचन्द उसी डिब्बे में- आ चढ़े। दोनों ही मित्र एक दूसरे को पहचान गये। मैट्रिक तक एक साथ पढ़े थे, इसके पश्चात ऐसे बिछुड़े कि पुनः मिल न सके और अब भाग्य का खिलवाड़ देखो। दोनों मित्रों ने मन खोल कर बातें कीं। रामनाथ ने अपनी पुत्री की बात की तो ज्ञानचन्द ने एकदम उसे बहू रूप में स्वीकार करने का वचन दे दिया। उनका लड़का तब बी. ए. में था। ज्ञानचन्द की पत्नी साधना को देखने आई। साधना लक्ष्मी सी सुन्दर और सरस्वती सी गुणी थी। उन्होंने भी स्वीकृति की छाप लगा दी। यह सगाई लगभग तीन वर्ष रही। सावित्री ने जब सुना कि लड़का एम. ए. हो गया है तो पति से कहा, 'तुम पत्र लिख कर ब्याह के विषय में पूछो। आजकल लड़के काम पर लगते ही ब्याह कर लेते हैं। अपने पड़ोसी सुभाष को ही देखो।'

रामनाथ ने बड़े विश्वास और आग्रह के साथ पत्र लिखा जिसका उत्तर यह आया कि लड़का इस सम्बन्ध के लिये

प्रस्तुत नहीं है। वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा का स्वामी है और उन्हें सम्बन्ध विच्छेद का अत्यन्त दुख है। पत्र से स्पष्ट विदित होता था कि ज्ञानचन्द पुत्र के इस आचरण से अत्यन्त निक्षुब्ध हैं किन्तु लड़के की इच्छा.........। पत्र में सम्बन्ध विच्छेद के कुछ कारण भी प्रस्तुत किये गये थे जो शायद ज्ञानचन्द ने अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण के लिये दे दिये थे।

साधना ने जितनी दृढ़ता ऊपर से प्रदर्शित की थी उतनी मन से न कर सकी। पत्र की वह पंक्तियां बार-बार उसके सम्मुख घूम जातीं। न बोलने को मन होता, न खाने को। बैठी बैठी सोचा करती। यह देख कर मां को चिन्ता हुई।

"साधना कितने दिन से तू नारी मन्दिर नहीं गई।" सावत्री ने तनिक साहस कर कहा।

'जाऊँगी मां।'

'अभी अभी माधवी का सन्देश आया था।

सावित्री ने झूठ बोल दिया। पर साधना पर इसका वांछित प्रभाव हुआ। वह उठ कर जाने के लिये तैयार होने लगी।

माधवी से उसकी भेंट अपने विद्यालय के वार्षिकोत्सव पर हुई थी। अध्ययन के दिनों में साधना अच्छी वक्ता भी थी कई प्रतियोगिताओं में उसने पुरुस्कार जीते थे। उसने एक कविता भी पढ़ी थी जिसमें विद्रोह का स्वर था बन्धनों की घुटन थी। लोगों ने उसकी प्रचुर सराहना की। कवितापाठ के पश्चात साधना माधवी की निकटस्थ कुर्सी पर आ बैठी। माधवी ने प्रशंसा भरे स्वर में कहा, 'आपकी कविता बड़ी अच्छी थी। किस की लिखी है यह ?

'जी मैंने स्वयँ लिखी है यह ?

"आप कविता भी करती हैं।"

"जी नहीं" साधना के स्वर में संकोच था। "कभी २ मन के भाव उमड़ आते हैं तो पन्ने काले कर डालती हूं।'

"नहीं" जी यह पन्ने काले करना नहीं है। अनुभूति के यह तीव्र क्षण क्या सब को प्राप्त होते हैं ? आपका नाम साधना है न ?'

'जी।' बड़ा संक्षिप्त उत्तर था। माधवी इस किशोरी की शालीनता पर मुग्ध हो गई। उसने आग्रह पूर्ण स्वर में कहा— 'कभी मेरे नारी मन्दिर भी आइयेगा।'

'नारी मन्दिर ?'

'मेरा एक लघु प्रयास है अपनी जाति के संरक्षण व विकास के लिये।'

'जी, मैं अवश्य आऊँगी। आपका शुभ नाम ?'

'माधवी !'

और एक सप्ताह के अनन्तर ही साधना वहां जा पहुंची। माधवी ने बड़े चाव से अपना कार्य उसे दिखाया। साधना वहां का वातावरण देखकर चकित रह गई। कुछ स्त्रियां बैठी कढ़ाई-बुनाई कर रही थीं, दूसरे कक्ष में भी दस-पन्द्रह स्त्रियां थीं वे निरक्षर और गंवार लगती थीं वे खजूर के पत्तों की रंग बिरंगी टोकरियां बना रही थीं। इसके आगे प्रौढ़ शिक्षा का कक्ष था। वहाँ अध्ययन अध्यापन चल रहा था। आंगन में आकर देखा एक महिला कुछ मैले कुचैले बच्चों को हैंड पम्प पर स्नान करवा रही थी। साधना को आश्चर्य हुआ, 'क्या यह बच्चे घर से नहा कर नहीं आते ?'

'हमारे गांव अभी उस ज्ञान से बहुत दूर हैं बहिन ! स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के साधारण नियम भी तो वे नहीं जानते। नहलायेंगे

तो वही गन्दे वस्त्र पहना देंगे। नेत्रों पर छिछड़े वैसे ही जमे रहते हैं।

'यह सब काम क्या आप अकेले करती हैं?'

'नहीं—बहुत सी तुम्हारे जैसी बहिनें, जो देश की सच्ची हितैषिणी हैं यहाँ आती हैं।'

'मैं भी आया करूँगी।'

'शौक से, यहां प्रत्येक का स्वागत है।' और साधना वहाँ आने लगी।

साधना तीन दिन से नहीं आ रही थी, माधवी स्वयँ इस विषय में सोच रही थी। आज वह सन्देशा भेजने ही वाली थी कि साधना आ गई।

'तेरी बड़ी लम्बी आयु है साधना! मैं तुम्हें स्मरण कर रही थी।'

साधना सदैव कमल सी खिली आती थी किन्तु आज उसकी मुस्कान में अन्धकार भरी रात्रि सी उदासी थी।

'क्या बात है साधना?' माधवी ने स्नेह से पूछा।

'कुछ नहीं दीदी।'

कुछ कैसे नहीं, न वह खिलखिलाहट, न वह चाँचल्य। मैं कैसे मान लूं कि कुछ नहीं।'

साधना की बड़ी २ आंखों में आंसू लहरा आये। तीन दिनों से माता-पिता के सम्मुख, हृदय का बांध जो बाँधे रही थी वह टूट गया। वह सिसक पड़ी। माधवी ने ऐसी विचलित उसे कभी न देखा था। साधना रो रही थी और माधवी मूक थी। हृदय का ज्वार जब स्वयँ ही बह गया तो साधना बोली, 'सगाई टूट गई दीदी।'

सगाई टूट गई?' माधवी को विश्वास न हुआ। तीन

वर्ष के पश्चात भी सगाई कच्चे धागे सी टूट सकती है ।

'दीदी यह भी पूछो कि टूटने का कारण क्या है ।'

'तुम ही बता दो ।'

'बहुत से कारण हैं, उच्चशिक्षिता नहीं हूं इसलिये सभ्य और सुसंस्कृत नहीं हो सकती । लड़का एम. ए. है, किसी बड़े कालेज में प्रशिक्षक हो गया है, उसे वह लड़की चाहिये जो क्लबों में जा सके, डांस कर सके और सब से बड़ा कारण है कि यह सम्बन्ध प्रणय प्रधान नहीं ।

'यह लहर भी खूब चली है, सभी कोई प्रणय के राग अलापते हैं, यह नहीं जानते कि प्रणय के मर्यादाहीन अशव को जब तक कर्तव्य रज्जू से न बांधा जाये यह जीवन के लिये उपयोगी नहीं हो सकता ।'

'मुझे अपनी चिन्ता नहीं दीदी, किन्तु माता-पिता को है । उस दिन से पिता जी कुछ सोचते रहते हैं । मां ठीक तरह से खाती नहीं ।'

'हीरे को कॉच समझ कर छोड़ दिया है मूर्ख ने । साधना एक बात कहूं ?'

'कहो ।' साधना ने उत्सुक स्वर में पूछा ।

'अपना अध्ययन आरम्भ कर दो ।'

किन्तु धनाभाव............?

तुम चिन्ता न करो, मेरे पास बहुत धन है । विपत्ति पड़ने पर अपनों से लेने में संकोच न होना चाहिये । विगत को विस्मृत करने में ही सुख है बहिन । यह न कर सकी होती तो मेरा जीवन भी बोझिल हो गया होता ।

'दीदी, तुमने कहा था कि वह सब वृत्त एक दिन सुनाओगी ।

'आज नहीं फिर किसी दिन ।'

'क्या मैं भीतर आ सकती हूं ?

एक सांवली सलोनी युवती द्वार पर खड़ी प्रश्न कर रही थी । माधवी ने उठकर स्वागत करते हुए कहा, 'यहां ऐसे व्यवहार की आवश्यकता नहीं बहिन । साधना ! यह रेखा बहिन, जैसे तुम एक दिन मुझे मिल गई थी न ; वैसे ही यह भी गाड़ी में मिल गई थी । कालेज में पढ़ती है और हमारे साथ काम करने की इच्छुक है ।'

साधना ने नमस्कार किया । रेखा को देख कर उसे प्रसन्नता ही हुई । माधवी उससे कुछ ऊपर थी यह रेखा बराबर की है । खूब पटेगी इससे । रेखा के नेत्रों में भी मैत्री का आमन्त्रण था ।

'साधना, अपना कार्यक्रम इन्हें दिखाओ । मैं तनिक कार्यालय के रजिस्टर इत्यादि देख लूं ।' साधना रेखा को लेकर चली गई । माधवी काम करने लगी ।

शीघ्र ही रेखा व साधना निरीक्षण करके लौट आई । 'आप बड़ी जन सेवा कर रही हैं माधवी दीदी ।'

'अरे मिथ्या प्रशंसा न करो बहिन, सच्चे अर्थों में जन सेवा होती कहां है । इस नारी मन्दिर के इधर उधर बीसियों गाँव हैं जहां शिक्षा का प्रसार नहीं, नारी स्वातन्त्र्य की भावना नहीं, शिशुओं के विकास की चिन्ता नहीं । इन्हें हम ने बहुत कुछ सिखाना है । कुछेक शहरों के विकास से ही देश की उन्नति सम्भव नहीं ।'

'यही तो भय्या कहते हैं ।'

'कौन' ?'

'मेरे भय्या श्रीकान्त । दो एम. ए. किए हैं उन्हों ने, हिंदी और संस्कृत में । उनके विचार बिलकुल ऐसे हैं । कहते

हैं, एक दो शहरों की उन्नति से देश को जागरुक नहीं समझा जा सकता । वास्तविक प्रगति तो गांवों से सम्बधित है ।'

'तब तो हमें एक कर्मठ व्यक्ति और मिला ।' माधवी बोली । 'मैं कभी लाऊंगी उन्हें । पुरुष के यहां आने में कोई रोक तो नहीं माधवी दीदी ।'

'अरे, इस युग में भी ऐसी बातें !'

'वे एक पत्र भी इसी सम्बन्ध में निकालने की इच्छा रखते हैं ।'

'एक लेखिका तो उन्हें हमारे नारी मन्दिर से मिल जाएगी ।'

'अच्छा !'

'हां ; यह साधना बड़ा सुन्दर लिखती है ।'

साधना संकुचित सी बोली, 'माधवी दीदी को तो प्रशंसा करने का रोग हो गया है । मैं तो यों ही कलम तोड़ती हूं ।'

'वाह ! वाह ! मुहाबिरा तो आपने स्वयं प्रयोग कर लिया । बड़े लेखकों के विषय में यही तो कहते हैं ।'

साधना का संकोच और भी बढ़ गया । मुख रक्तिम हो कर और भी सुन्दर लगने लगा । रेखा को चुटकी काट कर कहा, 'बड़ी शैतान हो ।'

'लो प्रथम भेंट में ही विशेषण मिल गया । धन्यवाद साधना बहिन ! किन्तु यह चुटकी मेरे काले रंग पर कोई प्रभाव न डालेगी ।'

'तुम काली हो ।'

'नहीं श्याम वर्ण !'

सभी मुक्त भाव से हंस पड़ीं । रेखा सचमुच ही श्यामवर्ण तो नहीं थी पर गोरी भी न थी । दुबली पतली आकर्षक आकृति

की थी। नेत्र बड़े २ और नोकीले। नाक और अधर सदा मस्कराने वाले।

वातायन से छन कर सूर्य की प्रखर रश्मियां मध्याह्न के आगमन का सन्देश दे रही थी। माधवी ने कलाई देखी। घड़ी साढ़े बारह बजा रही थी। धूप और भी कड़ी हो जायेगी इसलिये तीनों उठीं। चलते २ माधवी ने कहा, 'एक तो जनता की ओर से हमें पूर्ण सहयोग नहीं मिलता यह बड़ी कठिनाई है। फिर भी आशा है कि हमारे सतत् श्रम का फल हमें मिलेगा। आज नारी मन्दिर की वह दुर्बल स्थिति नहीं जो दो वर्ष पूर्व थी।"

२

रेखा जब भरी दो-पहरी में घर पहुंची तो मुख उसका लाल हो रहा था। लाड से डांट कर मां बोली, "कहां रही तू अब तक ?"

'मां आज एक अच्छे स्थान पर चली गई थी।'

'कहाँ ? पूछने वाला रेखा का भाई श्रीकान्त था। वह भी अभी २ बाहर से लौटा था।

'नारी मन्दिर।'

'नारी मन्दिर !'

'भय्या ! बिल्कुल तुम्हारी मन पसन्द जगह है। ठीक तुम्हारे अनुसार काम वहां होता है। हमें तो अभी तक उस संस्था का पता ही न था।'

'माधवी है न उसकी सञ्चालिका !'

'तुम जानती हो क्या ?' आश्चर्य से भर कर रेखा ने भाई से पूछा।

'सुना तो है किन्तु कभी गया नहीं।'

'तो चलना एक दिन।'

'खाना भी खाओगे कि नहीं, कब तक बैठी रहूं।'

अपराधी से—दोनों भाई बहिन खाने चले। मां दोनों को खिला रही थी और हृदय में एक गौरव अनुभव कर रही थी। मां का नाम सरलादेवी था और नामानुसार ही वे सरल स्वभाव की थी। आज से दस वर्ष पूर्व जब पति दो अल्हड़ बच्चों का भार उस 'सरला' पर छोड़ गये तब भी उसने भाग्य के अभिशाप को वैसे ही स्वीकार कर लिया था। श्रीकान्त के पिता गांव में रहते थे। भरा पूरा परिवार था। चार भाई थे तीन बहिनें। वे सब में छोटे थे। जमींदारी भी थी और लेन-देन भी चलता था। आर्थिक अभाव न था। किन्तु सरला देवी के सम्मुख वही कठिनाईयां आईं जो प्रायः एक विधवा के सम्मख आती हैं। उनके एक चचेरे भाई अमृतसर रहते थे। थे तो चचेरे पर सगों से बढ़ कर, क्योंकि उनका लालन-पालन सरला देवी की मां ने ही किया था। वे एक बार सरला देवी से मिलने गये तो सम्मति दी कि यदि वह बच्चों का भविष्य बनाना चाहती है तो गांव में रह कर निर्वाह नहीं होगा। श्रीकान्त तब आठवी में था और रेखा तीसरी में। श्रीकान्त मेधावी था। आठवी की परीक्षा में जब वह छात्रवृति ले गया तो मां को उसका भविष्य कुछ उज्जवल दीखा। वे अपने चचेरे भाई के साथ अमृतसर आ गईं। उन्हीं के निकट दस रुपये किराये का एक मकान उन्होंने ले लिया। बच्चों की शिक्षा इत्यादि ठीक ढंग से होने लगी।

बी. ए में पहुंचते २ ही श्रीकान्त टयूशन इत्यादि करके कुछ जुटाने लगा। वह गम्भीर हो गया और परिस्थिति को समझता था। उसका व्यक्तित्व भी आकर्षक था। गठीले बदन का लम्बा नवयुवक था और श्वेत सरल वेश भूषा उसे सजती भी खूब थी। बी. ए में भी प्रथम श्रेणी उसने ले ली। तब मां की इच्छा थी कि वह कहीं नौकरी कर ले किन्तु वह नहीं माना। वह एम. ए करेगा। उसके पश्चात सोचेगा कि जीवन को किस ओर ले जाना है। मां को मना लिया उसने। बड़ा होने पर जो बात उसे अखरी वह थी गन्दा घर। वह अब एम. ए में पढ़ता था। अच्छे २ लड़कों से उसकी मैत्री थी।

'मां अब इस घर में नहीं रहा जाता।

'बेटा! कठिनाई से तो निर्वाह हो रहा है। पढ़ कर काम पर लग जाउगे। तो चाहे जहां बँगला बना लेना।'

'मां बंगला मैं नहीं चाहता, पर रहने योग्य स्थान भी हो। इन गन्दी गलियों में अपने दोस्तों को लाते मुझे तो लज्जा आती है। चाहे भोजन में, दूध में कटौती करलो पर घर तो बदलना ही पड़ेगा।'

माँ को बेटे के हठ के सामने झुकना पड़ा। किसी मित्र से कह कर उस ने वेरका रोड़ पर एक कोठी में से दो कमरों, रसोई और गुसलखाने का प्रबन्ध कर ही लिया। यह कोठियां शहर से दूर पड़ती थीं और उन दिनों किराए आज कल की भान्ति अधिक बढ़े-चढ़े भी न थे। तब से वे लोग वहीं रह रहे थे। हां किराया बीस का चालीस हो गया था। यों तो कई बार मकान—मालिक बातों ही बातों में बढ़ते किराए के विषय में उन्हें सुना देता था किन्तु वे लोग अत्यन्त सुसभ्य थे अतः निकालना भी नहीं चाहता था।

भोजन खाते २ श्रीकान्त बोला, 'मां भला तुम क्यों हम लोगों के साथ नहीं खाती ? व्यर्थ ही बैठी रहती हो ।'

प्रत्युत्तर में माँ केवल मुस्काई । उस मुस्कान में आशीर्वाद था । बच्चे जैसे उस के बोझ से लद गए ।

श्रीकान्त के कमरे में जा कर रेखा ने देखा श्रीकान्त उसके लिए कोई पुस्तक लाया था । उठाई तो शरत की 'पथ के दावे दार' थी । शरत्-साहित्य रेखा को बहुत पसन्द था । उसके पन्नों की मनोवैज्ञानिकता पर वह मुग्ध हो जाती थी । वह सोचती जिसके सुन्दर अनुवादों में इतनी सरसता है उसके मौलिक ग्रन्थ कितने सुन्दर होंगे इसलिये आज कल रेखा बंगला का अध्ययन कर रही है ।

'तुम्हारी पढ़ाई आज कल कैसी चल रही है रेखा ?'

थर्डईयर में क्या पढ़ूंगी भय्या ।'

यही तो ग़लती है । अध्ययन नियमित होना चाहिए । तभी तो इन्टर में द्वितीय श्रेणी ले सकी थी । इस बार तुम्हें प्रथम श्रेणी लेनी है याद रखो ।'

'अच्छा भय्या ! मैं खूब याद रखूंगी । तुम्हारे कक्ष में पढ़ लूं बैठ कर ।

और अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना ही रेखा कुर्सी पर डट गई । श्रीकान्त बिस्तर पर लेट सुस्ताने लगा । बहुत थका था लेटते ही आंख लग गई ।

'श्रीकान्त !'

बाहर से कोई पुकार रहा था । हड़बड़ा कर उठ बैठा, तब तक पुकारने वाला भीतर आ गया था ।

'रोहित भय्या, नमस्ते ।'

रोहित श्रीकान्त का मित्र था, हार्दिक। ऐसी प्रगाढ़ मैत्री कम ही देखी जाती है। एफ. ए से लेकर एम. ए तक इकट्ठे पढ़ा था उन्हों ने। इंगलिश की एम.ए करने के उपरान्त रोहित आई. ए. एस, की तैयारी करने लगा और श्रीकान्त सँस्कृत के एम. ए में जुट गया। दोनों के क्षेत्र विलग हो गए किन्तु स्नेह की मात्रा में अन्तर न पड़ा था।

'रेखा रोहित को बधाई नहीं दी। आई. ए. एस. में आगया है।'

'बधाई हो रोहित भय्या! किन्तु हमारी मिठाई.........?

'तू तो एक पेटू है रेखा, मिठाई के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं।' श्रीकान्त ने हंस कर कहा।

'मैं कल जा रहा हूं कान्त! देहली में मुझे केन्द्रीय सेवा में ले लिया गया है।'

'कल, इतनी शीघ्र।'

'हां! आज ही सूचना आई है। चार दिन के पश्चात मेरा उपस्थित होना आवश्यक है। सो कल ही जाना होगा।'

श्रीकान्त के मुख पर कुछ उदासी झलक आई। फिर भी रोहित उसका सहृद था जीवन के छः वर्ष सुख-दुख के साथी बनकर व्यतीत किए थे। रोहित भी कुछ विषण्ण हो उठा। तभी मां आ गई, रोचित ने आगे बढ़ कर चरण छुए और अशीर्वाद पाया।

'मां! रोहित कल देहली चला जायगा। इसे बड़ी अच्छी नौकरी मिल गई है।'

'ईश्वर करे यह दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करे। तुम लोगों को देख मेरे प्राण खिड़ जाते हैं सच।'

मां यह सब आपकी सदकामनाओं का ही परिणाम है।'

श्रीकान्त के आग्रह पर रोहित को वहीं रुकना पड़ा। शाम की चाय से पूर्व वह किसी प्रकार नहीं जा सकता। रोहित की आर्थिक स्थिति श्रीकान्त से अच्छी थी। उसके पिता अमृतसर के एक नामी वकील थे। तो भी स्नेह और सौहार्द जिसे कहते हैं वह इस परिवार से रोहित को खूब मिला था। इसी लिए वह इस परिवार का इतना आत्मीय हो गया था।

चाय के उपरान्त श्रीकान्त रोहित को छोड़ने चला। रोहित की कोठी कूपर रोड़ पर थी। दोनों मित्रों ने एक रिक्शा ले ली। श्रीकान्त इस सवारी को यद्यपि पसन्द न करता था किन्तु कर भी क्या सकता था। उसके विचार में यह सवारी नितान्त अमानवीय थी। कुछ धन के लिए मानव को पशु बनाना क्या मनुष्य को शोभा देता है? जिस रिक्शा पर वे चढ़े उसका चालक कोई सोलह वर्षीय छोकरा था। श्रीकान्त का मन और भी खराब हो गया। वह सोचने लगा, इस वयस् के बालक जब कि अल्हड़ जीवन का आनन्द पाते हैं यह बोझा ढो रहा है। कितना अन्याय है, कितना अत्याचार।

'तू अभी से रिक्शा चलाने लगा है रे।'

'न चलाऊं तो क्या करूं बाबू जी।

'कुछ पढ़ लिख पगले, बोझ ढोने के लिये अभी काफी जीवन शेष है?

पढ़ना लिखना भाग्य में नहीं है बाबू जी, पिछले वर्ष साँतवी से मैंने पढ़ना छोड़ दिया, किन्तु क्या स्वेच्छा से।'

'तो?'

'तीन वर्ष पूर्व पिता जी मां को छोड़ न जाने कहां चले गये। मां बेचारी मेहनत मजूरी करके हम भाई बहिनों का पेट भरती रही किन्तु वह भी अन्धी हो गई। तीन भाई बहिन हैं, कैसे जियें?'

श्रीकान्त तथा रोहित दोनों द्रवित हो उठे। कितनी विवशता है। तभी रोहित का घर आ गया। रुकवा कर दोनों उत्तर पड़े। श्रीकान्त ने रिक्शावाले से छः आने किये किन्तु दिये आठ आने। रिक्शावाला आश्चर्य से देखता रह गया। और लोग जब उसे छः आने के स्थान पर चार आने देना चाहते हैं तो यह कैसे बाबू हैं जो अठन्नी दे रहें हैं। उसने कृतज्ञता से हाथ जोड़ दिये। और सवारी की हांक लगाता चल पड़ा। श्रीकान्त को दूर से भी उसकी पुकार सुनती रही, वह निश्चल खड़ा रहा।

'भीतर चलोगे कि नहीं ?'

रोहित ने उसे चौंका दिया। यन्त्र चालित सा वह चल पड़ा।

३

स्वर्णिम प्रभात की उनकी धूप वातावरण के सुन्दर पट पर सुनहरे चित्र अंकित कर रही थी। आज श्रीकान्त को इस समय अवकाश था। उसका विद्यार्थी कुछ दिन के लिये बाहर गया था। इसलिए वह आराम कुर्सी धूप में डाले विश्राम कर रहा था। परीक्षा निकट आ रही थी सो आज कल ट्यूशनों का कार्य पर्याप्त था। मां की उत्कट अकांक्षा थी कि बेटा कहीं नौकरी करे। किन्तु श्रीकान्त के भाव ही निराले थे। नौकरी उसे बन्धन लगती थी। वह स्वच्छन्द रहना चाहता था। बेचारी सरला देवी की यह इच्छा मन में ही दबी रह गई। खेद उन्हें यह होता था कि उसका बेटा इतना योग्य होकर भी कोई उच्च-पद न पा सका जबकि उससे कम योग्यता वाले

अच्छे २ पद पा गये । परन्तु बेटे पर अधिक दवाव डालना भी तो उचित न था। इतना ही भगवान का धन्यवाद है कि उनका पुत्र इस घोर कलियुग में भी सतयुगी पुत्र निकला था जो मां के लिये प्राण दे सकता था। मां दोनों समय आंचल पसार कर पुत्र के स्वस्थ्य और मंगल की भीख मांगती थी।'

'भय्या मां बुला रही है।' रेखा ने आकर कहा।

भीतर जाने पर मां बोली, आज यदि समय हो बेटा तो बाजार हो आ। बहुत सी वस्तु समाप्त हो गई हैं।

'अच्छा मां! रेखा तू सब वस्तुओं को एक कागज पर लिख दे तो बहिन।'

रेखा कापी पेन्सिल ले आई और लिखने लगी। श्रीकान्त चप्पल पहन कर तैयार हो गया। कागज़ देते हुए रेखा बोली: 'भय्या यदि हो सके तो आज ही नारी मन्दिर चलो।'

'आज तुझे कालेज नहीं जाना क्या ?

''आज हमें अवकाश है।'

'क्यों ?'

'हमारा कालेज पंजाव यूनीवर्सिटी का बैडमिन्टन मैच जीत कर आया है न, इसलिए।'

'अच्छा तो चल तेरा नारी मन्दिर भी देख ही आयें।'

दोनों भाई बहिन चले। मार्ग में रेखा ने उसे बताया कि माधवी बड़ी प्रभाव शाली युवती है। पंजाव यूनीवर्सिटी की ग्रेजुएट है और आजीवन कमारी रहने का ब्रत लिये है। सुनकर श्रीकान्त को उत्सुकता हुई उसे देखने की।

नारी मन्दिर जब वे पहुंचे तो माधवी नहीं आई थी अभी। साधना बैठी नवीन समाचार पत्र देख रही थी। रेखा ने पहुंच कर एक दम उसे चौंका दिया। फिर उसके साथ एक

पुरुष था । रूपरेखा से साधना ने समझ लिया कि यही श्रीकान्त है । उसने सहज सलज्ज भाव से नमस्कार किया ।। वहीं पर कुर्सियां खींच कर रेखा और श्रीकान्त बैठ गए ।

'भय्या ! यह साधना बहिन है, माधवी दीदी का दायां हाथ । उन्होंने मुझे बताया है कि यह बड़ा सुथरा लिखती है ।,

यह तो बड़ा सुयोग है, मैं अपना पत्र शीघ्र निकालने जा रहा हूं । आपका सहयोग तो हमें मिलेगा ।'

'जी मेरा सौभाग्य होगा यह, किन्तु रेखा बहिन केवल सुनी सुनाई प्रशंसा कर रही हैं ।'

तभी माधवी आगई । स्वागतार्थ सब उठ पड़े । परिचय करवाते हुए रेखा ने कहा, मेरे भाई श्रीकान्त ।'

'और आप के विषय में तो रेखा ने मुझे पर्याप्त परिचय देदिया है पहले ही, सो यह मिथ्याचार व्यर्थ है ।

वातावरण परिहास पूर्ण हो उठा । माधवी श्रीकान्त को भी नारी मन्दिर की कार्य शैली दिखाने ले गई ।

'आप कितने घंटे काम यहां करती हैं ?'

चार घंटे सुबह और तीन घंटे शाम को ।'

'बहुत समय देती हैं ।'

'तो क्या करु श्रीकान्त भाई, और कोई आकर्षण भी नहीं है । घर पर मैं हूं और पिता जी हैं । यही तो मेरे जीवन का स्थल है ।'

श्रीकान्त ने चाहा कि इस विषय में माधवी से पूछे किन्तु पूछ नहीं सका । प्रथम परिचया में ही यह पूछना कदाचित धृष्टता होती ।

नारी मन्दिर का काम देख श्रीकान्त को वास्तव में प्रसन्नता हुई । क्योंकि आजकल आडम्बर बहुत और काम थोड़ा की

उक्ति ही सर्वत्र चरितार्थ होती है। नारी वर्ग के लिए माधवी जो कार्य कर रही थी, वह श्लाघ्य था। आज के शिक्षित वर्ग में प्रगति जितनी दीखती है वास्तव में उतनी है नहीं। स्त्रियां भी सुधार और अधिकार के ढोल पीटती हैं किन्तु सच्चे मन से जाति की भलाई करने का साहस किसी में ही मिलता है। माधवी उन्हीं युवतियों में से थी जो वास्तव में देश व जाति की शुभाकांक्षा रखती हैं।

आप वास्तव में शुभ-अनुष्ठान कर रही हैं माधवी दीदी।'

रेखा की देखा देखी वह भी माधवी को दीदी सम्बोधन करने लगा। माधवी पुलकित हो गई। इस प्रकार की शुभ एवं सत्य प्रेरणाएं ही उसे अग्रसर होने का प्रोत्साहन देती थीं।

'आप कभी कभार हमारे नारी समाज को अपने सुविचारों से कृतकृत्य किया करेंगे ऐसी मुझे पूर्णाशा है श्रीकान्त जी।

'अवश्य, अवश्य।'

रेखा को कुछ काम करना था नारी मन्दिर में। वह वहीं रह गई। श्रीकान्त मां द्वारा कथित वस्तुयें लेने चला।

हास्पीटल रोड़ को हाल बाज़ार से मिलाने वाला पुल अब बहुत परिवर्तित हो गया था। नहीं तो कोई समय वह था जब अधिक यातायात को रोकने के लिए एक ओर रास्ता बन्द करना पड़ता था। इससे कई लोगों को कष्ट भी होता था। विशेष कर रिक्शा वालों को। उन्हें बहुत लम्बा चक्कर लगाना पड़ता था। किन्तु १९५३ में इसे बिलकुल नये सिरे से बनवाया और इसका नाम 'पद्म भण्डारी पुल' रख दिया गया। अब तो यह इतना लम्बा चौड़ा था कि कितना भी आवागमन क्यों न हो किसी प्रकार का कष्ट न होगा। इस प्रकार यह स्थान सर्वथा परिवर्तित हो गया किन्तु एक बात बिलकुल नहीं

बदली वह थी यहां के भिखारी।

श्रीकान्त जब भी वहां से लांघता है तो इस जटिल समस्या पर उसका ध्यान अवश्य जाता है। किसी भी सभ्य देश के लिये भिखारी एक विषम कलंक का टीका होते हैं। जिस समाज व्यवस्था में कुछ लोगों को भीख मांगने को विवश किया जाये उसे उत्तम व्यवस्था नहीं कह सकते। आज भी जैसे ही वह पुल पर पहुंचा एक दस ग्यारह वर्ष की छोकरी उसके पीछे होली। माँगने का ढंग उसे खूब सिखाया गया था। बड़े २ लच्छेदार वाक्य उसने रट रखे थे।

'तू इक्को पैसा दे दे, तेरी सोहणी वौहटी आवे, ओ सोहणे बटुए वाली, तू इक्को पैसा दे दे।

(तू एक पैसा दे दे, तुझे सुन्दर पत्नी मिले, जिसके पास सुन्दर पैसों भरा बटुआ हो। तू एक पैसा दे दे)

लड़की के केश रुखे थे, चोली फटी हुई और लहंगा जीर्ण शीर्ण। उसके मुख पर कालिख की घनी परत चढ़ी हुई थी जैसे उसे कई दिनों से धोया न गया हो। श्रीकान्त यद्यपि करुणार्द्र हो रहा था फिर भी वह देना न चाहता था कुछ। उसके विचार में उन्हें कुछ दान रूप में देना भीख के व्यवसाय को प्रोत्यासन देना था किन्तु लड़की बराबर दौड़े जा रही थी हांफ रही। उसकी जेब में या तो एक नया पैसा था या फिर पांच पैसे का सिक्का। पुराना एक पैसा देते वक्त मन इतना हिचकिचाता नहीं था पर नये पैसे देते हुए स्वयं संकोच सा होता था। उसने पांच नये पैसे उसे दे दिये। बालिका का रूखा चेहरा मुस्करा पड़ा, नेत्र चमक उठे।

आगे बढ़ा तो एक कोढ़ी स्त्री छोटे से बच्चे को लिये बैठी

थी। उसे भी उसने एक पांच पैसे का सिक्का दिया। तभी उसका ध्यान आकर्षित हुआ एक बारह वर्षीय छोकरे की ओर वह रो रहा था। पता लगा कि अभी २ एक बाबू इसे तमाचा लगा गया है क्योंकि इसने उसके सुन्दर कोट को छू दिया था। श्रीकान्त सोचने लगा एक तो भाग्य ही इन अभागों के प्रति क्रूर है दूसरे मानव भी इन्हें मानव नहीं समझता। उसने पुचकारकर कहा उसे, 'तू क्यों रोता है रे, चल तुझे कुछ लेदुं।'

'क्या ले दोगे ?' बालक के नेत्रों में विश्वास नहीं था।

'जो तू कहे'

'गरम-गरम जलेबी।'

'हां ! हां।' बालक श्रीकान्त के आगे २ चला। चलते २ श्रीकान्त ने पूछा, 'तेरे माँ-बाप क्या करते हैं ?

'भीख मांगते हैं।'

'क्यों ? उन्हें भीख मांगते लज्जा नहीं आती ?'

बालक भौचक्का रह गया। भीख मांगना उनका व्यवसाय है। कभी व्यवसाय भी बुरा हो सकता है ! वह समझ नहीं सका। वह केवल इतने दिनों के पश्चात यह जान सका था कि सभी लोक उसे ठुकराते हैं। कोई भी प्यार से उसे पैसे नहीं देता। कभी-कभार लोगों की झिड़कियां उसे बुरी लगती थीं। वह देखता था बहुत से लोग ऐसे हैं जो भीख नहीं मांगते फिर वे खाना कहां से पाते हैं ? यही प्रश्न आज भी उसके मन में उठा। श्रीकान्त की ओर घूम कर बोला, 'एक बात पूछं बाबू ?'

'पूछ।'

'यदि हम भीख न मांगे तो खाना कहां से मिले। भीख के पैसों से ही तो मां मेरे लिये रोटियां खरीदती है।'

'इतने लोग जो भीख नहीं मांगते क्या भूखे रहते हैं पगले।'

इसी समय उतनी ही वयस का एक और लड़का वहां आ पहुंचा। उसने एक डन्डे से रंग बिरंगे गुब्बारे बांध रखे थे। साथ ही छोटी २ पिप्पणियां भी थीं। श्रीकान्त ने कहा, 'यह देख, तेरे जितना ही है। भीख नहीं मांगता। काम करके चार पैसे पाता है और मान का जीना जीता है।'

जलेबी की दुकान आ गई थी। श्रीकान्त ने दुअन्नी की जलेबियां ले दीं। भिखारी बालक खाता-खाता चला गया पर जैसे वह कुछ सोचता जा रहा था।

बाजार में वस्तुएं खरीदते श्रीकान्त को घण्टा डेढ़ घण्टा लग गया। इस के पश्चात वह घर को लौट पड़ा। घर पहुंचा तो उसकी मौसी आई थी। उनके आने की सूचना तक न थी अतः कुछ देर वह चकित सा रह गया फिर आगे बढ़ कर मौसी को चरण वन्दना की। मौसी ने आर्शीबाद दिया: युग युग जियो, यश और कीर्ति के भागी बनो।

'मौसी जी और आशीर्वाद भी तो दो।' रेखा ने शरारत से कहा।

'क्या?' मौसी आशय समझ गई। वह हंस पड़ी। बोली, "यह भी कोई कहने की बात हैं, मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा मैं हूं।'......

'हट पगली तुझे और कुछ सूझता भी है। मौसी जी, सफर में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?'

'नहीं बेटा कष्ट की क्या बात है, पर आज कल रेल में धर्म कर्म नहीं रहता। मेरे पास ही आकर एक मेहतरानी बैठ गई।

मैं क्या जानती थी। कपड़े तो वह हम से भी अच्छे पहने थी वह तो तब ज्ञात हुआ जब उसने स्वयं कहा कि वह यजमान के लड़के की शादी पर जा रही है।'

'तो क्या हुआ मौसी जी, वह क्या मनुष्य नहीं? रेल में किराया तो सब एक सा देते हैं।' रेखा ने कहा।

'अरे बेटी तब क्या हुआ। मर्यादा भी कोई वस्तु है। अब तो सुना है सरकार भी उन की है। जो उन्हें भंगी, अछूत कहे उसे दण्ड मिलता है।'

मां भीतर जा चुकी थी। दोनों भाई बहिन मौसी की बातों का आनन्द लेने लगे।

'मौसी तो तुम उसके साथ बैठी रहीं, छि: छि:! घर आकर नहा लेतीं।'

'सो तो मैंने नहा लिया बेटा। न जाने किन कठिनाइयों से यह मनुष्य योनी मिली है उसे भी भृष्ट करदें। राम! राम!'

'मौसी जी आप के राम ने तो भीलनी के बेर खाए थे, वह भी अछूत थी।' रेखा ने पुनः छेड़ दिया।

'वह तो भगवान की बात थी बेटी, हम ठहरे तुच्छ प्राणी।'

'यह हमारे घर में मलेच्छ पैदा हो गई है मौसी। धर्म कर्म न जानती है, न मानती है।' श्रीकान्त ने टकोर लगाई

भीतर से सरला देवी ने पुकार कर कहा, 'बहिन तुम इधर आ जाओ। यह आज के लड़के लड़कियाँ हमें कहां जीने देंगे।' मौसी उठकर भीतर चली गई। श्रीकान्त नन्ही भिखारन की बात सुनाने लगा। सुनकर रेखा बोली, 'वही न गोल २ चेहरे वाली, मोटे २ नेत्र हैं जिस के।'

'हां! वही तूने देखी है?'

'मैंने कई बार देखा है उसे। किन्तु भय्या इन लोगों को

देना नहीं चाहिये। यह लोग देश के लिए अभिशाप हैं। यह भारत ही है जहाँ नन्हे बच्चे भी भीख जैसा घोर नीच कर्म करते हैं।'

'इस में सन्देह नहीं, पर दिये बिना किया भी क्या जा सकता है। यह तो सरकार को चाहिये कि उनके लिये आश्रम या सदन बनाये। तब तक तो जनता को देना ही पड़ेगा।'

रेखा नारी मन्दिर की बात चलाना चाहती थी। माधवी और साधना के विषय में वह क्या कहता है यह जानने की तीव्र इच्छा उसे थी। उसने सीधे प्रश्न किया, 'हमारा नारी मन्दिर कैसा लगा भय्या ?'

'अच्छा प्रयास है। माधवी वास्तव में कर्म शीला है।'

'और साधना ?'

श्रीकान्त ने ध्यान से रेखा को देखा, क्या आशय है उसका। वह नारी मन्दिर देखने गया था, ना कि लड़कियों के विषय में अपनी राय निश्चत करने !

'उस में क्या कोई विशेष बात है रेखा, जो तुम पूछ रही हो ?

'सो तो है ही बेचारी पुरुष के शोषण का शिकार है।'

'विधवा है ?'

'नहीं।'

'परित्यक्ता ?'

'नहीं।'

'तो फिर ?'

काफ़ी लम्बी अवधि के पश्चात इसके मंगेतर ने सगाई इस लिये छोड़ दी कि सम्बन्ध पुणय प्रधान नहीं है।'

श्रीकान्त चुप हो रहा, वह क्या कहे पर यह रेखा.........

'भय्या ! तुम लोगों में सहृदयता तो नाम तक को भी नहीं होती ।'

'साधना के लिये मुझ पर क्यों बरस रही हो बहिन ।'

'तुम पर नहीं पुरुष पर ।'

'तो मैं पुरुष नहीं ? लांछन तो तुमने समस्त पुरुष जाति पर लगाया है ।'

'व्यक्तिगत बात मत करो भय्या ! पर अधिकांश पुरुष वर्ग नारी का प्रतारण ही करता है ।'

'तो पुरुष क्या सुखी है । इसी कारण असुन्तलन और वैषम्य बढ़ रहा है ।

परिणामतः न नारी सुखी है न पुरुष सन्तुष्ट ।'

'अच्छा अब छोड़ो इस विवाद को, कोई नया कार्यक्रम ?'

'हां ! हम शीघ्र ही ऐसी संस्था का निर्माण करेंगे जो सब वर्गों की प्रगति कर सके ।'

संस्थाओं का अस्तित्व तो पहले भी काफी है ।'

'सुनती तो हो नहीं, बीच में टोक देती हो ।'

रेखा सुनने के लिये सतर्क हो गई । तब श्रीकान्त ने अपनी समस्त योजना उसके सम्मुख प्रस्तुत की । क्योंकि संस्थाएं तो बहुत सी थीं फिर भी रचनात्मक कार्य बहुत कम होता था । सभी नाम चाहते थे काम नहीं । कोई प्रधान पद का इच्छुक होता, कोई मन्त्री पद का । परिणाम यह होता कि कुछ मास पश्चात ही यह संस्थाएँ प्राणहीन हो जातीं । इसके अतिरिक्त कुछ संस्थाएं केवल बड़े लोगों से नाता रखती थीं । कभी गवर्नर और डी. सी. की अपील आ जाये तो चाहे जितना काम करदें परन्तु जन-साधारण का उपकार किस से है इससे उनका कोई सम्बन्ध न था । कभी नाटक, कभी वैरायटी शो और कभी

संगीत की सभाएं लगाकर धन एकत्रित करती थीं। इसके पश्चात सब समाप्त। श्रीकान्त और उसके मित्र सच्चे हृदय से जन सेवा करना चाहते थे। यह बात श्रीकान्त के लिये नवीन न थी। वह अपने कालेज के दिनों से ही सेवा में रुचि रखता था। कालेज की रेडक्रास सोसायटी का वह प्रधान था। यों भी किसी को कष्ट होता, रोग होता वह सदैव तत्पर रहता था। अध्यापन के पश्चात उसके विचार बहुत विकसित हो रहे थे। कालेज के प्रिंसीपल ने एक बार भविष्य वाणी करते हुए कहा था; 'तुम एक दिन महान बनोगे श्रीकान्त' और उसने शीश झुका कर यह आशींबाद ले लिया था।

उसकी योजना से रेखा प्रसन्न हो उठी। पूछा, 'भय्या! हमारे नारी मन्दिर को भी कुछ स्थान मिलेगा कि नहीं?'

'क्यों नहीं, हम तो नारी विभाग ही तुम लोगों को सोंप देंगे। फिर जहां साधना सी लेखिकाएं और रेखा सी वक्ता हों।'

'परिहास करने लगे भय्या!'

'नहीं बहिन! तुम देश की आशाओं के नवाङ्कुर हो। सामाजिक उन्नयन नारी के बिना हो ही नहीं सकता'

रात्रि को खाना खाते समय उसने देखा कि मां और मौसी ने नहीं खाया। पता लगा कि आज पूर्णिमा का व्रत है। श्रीकान्त मां की इच्छा में बाधा नही डालना चाहता परन्तु उसका शरीर जो पहले ही दुर्बल है क्या व्रतों का बोझ सह सकेगा। यह प्राचीन स्त्रियां न जाने किस हठ से यह सब व्रत उपवास कर लेती हैं। इसलिये मां को श्रीकान्त कभी २ टोक देता है। 'मां अभी, कल भी तो तुम्हारा व्रत था।'

'वह तो मंगल का था बेटा।

'आखिर स्वास्थ्य का ध्यान तो रख लिया करो'

'इस देह को कब तक संवारे रखूं कान्त। जीवन का अन्तिम भाग तो सुधर जाये।'

श्रीकान्त चुप हो गया। वह जानता था कि धर्म के विषय में मां बड़ी कट्टर है। भोजन चाहे मिले न मिले पूजा-पाठ में कोई त्रुटि न आनी चाहिये। दैनिक नित्य कर्म जब तक वे न कर लेतीं उन्हें सन्तुष्टि न होती। तभी उसकी दृष्टि मां के ठाकुर जी पर गई। यह एक छोटी सी हाथी दांत की प्रतिमा थी जिसे सरलादेवी ने एक बार ग्वालियर से मंगवाया था। मूर्ति का निर्माण बहुत ही सुन्दर हुआ था, इसमें कोई सन्देह नहीं। बनाने वाले का हृदय जैसे मुखरित हो रहा था। मां की श्रद्धा पर वह श्रद्धान्वित हो गया। यह तो वह भी जानता है कि मनुष्य के ऊपर एक अदृश्य शक्ति का नियन्त्रण है। ज्ञात एवं अज्ञात रूप से वही मानव के जीवन-चक्र की डोर हिलाती है सो उसे मां की विश्वास रक्षा करनी ही होगी। शैशव की एक घटना उसके नेत्रों के सम्मुख कौंध गई। वह आंठवी श्रेणी में था। मां प्रति सांध्य बेला में तुलसी के आगे दीप जलाती थीं। उसने पढ़ा था कि तुलसी असंख्य रोगों की अचूक दवा है और हिन्दु धर्म की यह विशेषता रही है कि प्रत्येक मानव जीवनोपयोगी वस्तु आध्यात्मिक महत्व प्राप्त कर जाती है। एक दिन शरारत से उसने मां का तुलसी का गमला छुपा दिया। दीप आंचल में लिये जब मां आई तो पौधे का गमला ही वहां न था। लगभग आध घण्टा तक मां ढूंढती रही। जब खोज २ कर मां हार गई तो श्रीकान्त ने लकड़ियों के पीछे से निकाल दिया। मां पहले ही खीझ चुकी थी। तिस पर श्रीकान्त के शब्दों ने जलती पर घी का काम किया। 'मां इस

पत्तों की पूजा में तुम्हें क्या मिलेगा, कहो तो जंगल पहाड़ सब ला दूं ।'

मां के अधर कांप कर रह गये । दीपक पौधे के सम्मुख रख कर मां ने नेत्र मूंद कर हाथ जोड़े और फिर मूक सी भीतर चली गई । मां यदि प्रतिकार करती तो शायद श्रीकांत को इतना बुरा भी न लगता परन्तु मां की चुप्पी ने उसे वास्तव में ठेस पहुंचाई । वह उदास हो उठा । रेखा तब छोटी थी । पिता जी के घर आते ही शिकायत कर दी उसने । तब श्रीकान्त को एक लम्बा चौड़ा उपदेश सुनने को मिला । पिता जी के शब्द अभी तक वह भूल नही सका ।

'देखो बेटा, मानों चाहे न मानों किसी के धार्मिक विचारों पर आघात नही करना । तुम इसे अभी नहीं समझ सकते । यह तर्क का प्रश्न नहीं विश्वास का है, समझे !'

'समझा पिता जी'

'जाओ मां से क्षमा मांगो ।'

और क्षमा मांगने से पूर्व ही मां ने उसे छाती से लगा लिया । ऐसी ममतामयी मां पाकर श्रीकान्त अपने को धन्य मानता है । तब से लेकर अब तक वह मां के धार्मिक विश्वासों की रक्षा करता रहा है । पिता जी ने ठीक ही कहा था 'यह तर्क का नही विश्वास का प्रश्न है ।' वह स्वयं मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करता । इस विषय में वह कभी कभी गम्भीर चिन्तन करता है । उसका अन्वेषण प्रिय मन उस अदृश्य के विषय में कुछ जानना चाहता है जिसे उपनिषदों ने नेति-नेति कह कर पुकारा है । जिसके विषय में कबीर ने मुक्त भाव से कहा है—

साहब मेरा एक है दूजा कहा न जाये ।

और साकार राम के पुजारी हो कर भी तुलसीदास जी ने जग को 'सियाराम मय' कह कर उसकी विराटता को स्वीकार किया। वह क्या है, कैसा है यह सचमुच श्रीकान्त के लिये एक रहस्य हैं। फिर मूर्तिपूजा की अवहेलना भी तो नहीं की जा सकती। हिन्दु जाति पर इतने कष्ट और संकट आये। महमूद गजनवी जैसे मूर्ति भंजक भी इसका प्रभाव कम नहीं कर सके। फिर इसमें कुछ ऐसा है जो इसे स्थिर रखे है चाहे इसे कोई मानव की सौंदर्य प्रियता ही कह ले। मूर्ति-निर्माण कला मनुष्य की सौंदर्य प्रियता ही तो कही जायेगी। उसने अपने अज्ञात इष्ट देव की नाना प्रतिमाएं प्रस्तुत करके अपनी सर्जना शक्ति का परिचय ही तो दिया है।

सो वह माने न माने उसने इतना अवश्य देखा है कि इन पुराने लोगों में नवीन युग की अपेक्षा कष्ट सहने की शक्ति अधिक है शायद आन्तरिक विश्वास के कारण। आज के लोग शोर-गुल मचाना ही जानते हैं। उनके जीवन में उतनी स्थिरता नहीं।

४

सरला देवी का स्वास्थ्य इन दिनों कुछ गिर गया था फिर भी निरन्तर काम में लगी रहती थी वे। श्रीकान्त एक ट्यूशन पढ़ा कर लौटा तो वे बाहर नहीं दीखी। वे सदा बाहर ही बेटे का स्वागत करती थी।

'मां!' उसने पुकारा। प्रत्युत्तर में मां के कराहने की

ध्वनि आई। श्रीकान्त समझ गया कि दर्द का आक्रमण फिर हो गया है। वह पसीने में भीगा था। पावस की धूप यों भी तीक्षण हो जाती है। फिर उस दिन उमस् भी थी। पत्ता तक नहीं हिल रहा था। एक दो बार वर्षा हो जाने से वृक्ष व बनस्पतियां हरी तो हो गईं थीं किन्तु अभी वह शोभा न थी जो छक कर वर्षा जल पी लेने पर लता-गुल्मों की होती है। श्रीकान्त की उच्छा थी कि वह कुछ विश्राम करे। परन्तु मां की कराहट ने उसे एक दम बेचैन कर दिया था। त्वरा से भीतर गया, मां बिस्तर पर थी।

'बड़ा कष्ट है मां ?'

'नहीं बेटा ! अभी ठीक हो जायेगा।' मां ने कसक को दबाकर मुस्कराने की चेष्टा की।

'मां मुझे झुठलाओ नहीं ! मैं अभी डाक्टर लेने जाता हूं।

'बेटा ठहर तो——कान्त तनिक ठहर जा बेटा।' माँ पुकारती रही और वह चला गया।

डाक्टर की ओर जाने से पूर्व उसने रेखा को सूचित करना आवश्यक समझा। उसने साईकिल नारी मन्दिर की ओर घुमा दी। साधना रेखा और माधवी तीनों ही कार्य समाप्त करके बाहर निकली थीं।

'रेखा, मैं तुम्हें बुलाने आया हूं।'

'क्यों, ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई !' अपनी चंचलता में रेखा ने भाई की व्यथा को नहीं देखा था।

'मां अस्वस्थ हैं। घर चलो, मैं डाक्टर लेकर आता हूं।'

सुनकर रेखा घबरा गई। वह जानती है कि मां की दर्द का दौरा साधारण दौरा नहीं होता। होता चाहे देर से है किन्तु रूप उसका भीषण ही होता है। वह गिरने लगी।

'रेखा इतने से ही घबरा गई !' माधवी ने कहा, 'आप डाक्टर ले आइये। हम सब मां की शुश्रूषा करेंगे।'

श्रीकान्त साईकिल भगाता चला गया। जब तीनों घर पहुंचीं तो सौभाग्य से मां के दर्द का वेग कम हो गया था और वे नेत्र मूंदे राम, राम रटने में व्यस्त थीं। रेखा भाग कर मां से लिपट गई।

'माँ कैसा जी है अब ?'

'अच्छी हूं बेटी, कान्त ने तुझे घबरा दिया होगा। बड़ा पगला है।'

'रेखा तो सुन कर एक दम सूख गई थी।' माधवी बोली।

इतने में श्रीकान्त डाक्टर को लेकर आ गया। डाक्टर ने सब प्रकार से निरीक्षण करके कहा, 'चिन्ता जनक बात नहीं है मि. श्रीकान्त ! पेट में हवा हो जाने से ऐसा हो जाता है।'

'किन्तु यह हो क्यों जाता है।' रेखा को बिल्कुल भूल गया था कि डाक्टर ने अभी २ कारण बता दिया है। डाक्टर हंस पड़ा। कहा, 'खाने पीने का परहेज रखिये जरा। वायु वस्तुएं मत दीजिये। कुछ दिन के लिये दालें इत्यादि भी बन्द करदें तो अच्छा है।'

'जी अच्छा।'

डाक्टर ने नुस्खा लिख दिया। एक गोली बेग में से निकाल कर तत्क्षण खाने को दी।

डाक्टर को विदा कर श्रीकान्त लौट आया। गोली ने अन्दर जाते ही एक दम प्रभाव डाला था। स्वर में उलाहना भर श्रीकान्त बोला 'मां अब कि नियमित रूप से दवा खानी होगी हां !'

सरला देवी मधुर हंसी मुस्काई, 'इन बूढ़ी हड्डियों को जिलाकर क्या करेगा पगले।'

'तुम्हारी यही बातें मुझे अच्छी नहीं लगती, क्यों रेखा।'

'सच्च मां! यदि अबकि बार ठीक ढंग से दवा न खाओगी तो हम भाई बहिन अनशन कर देंगे।'

'पागल हो गये हो क्या? अभी मेरी आयु बहुत लम्बी है, तुम लोगों के ब्याह भी तो करने हैं।'

वातावरण का सम्पूर्ण अवसाद इस परिहास में बह गया। साधना और माधवी भी हंस रही थीं। इस संक्षिप्त परिवार में कितनी आत्मीयता थी। अब समय पाकर रेखा ने मां के साथ दोनों का परिचय करवाया। साधना तथा माधवी जाना चाहती थीं पर माँ ने उन्हें रोक लिया। 'पहली बार हमारे घर आई हो बेटी, कुछ देर तो बैठो।'

मां के इस सरल अनुरोध पर उन्हें रुकना ही पड़ा। माधवी मां से बातें करने लगी। उधर साधना रेखा और श्रीकान्त की बातें होने लगीं। रेखा ने कहा, 'भय्या! साधना कुछ कहानियां तुम्हें दिखाना चाहती है।'

'मैंने कब कहा तुझे?' साधना के सुन्दर मुख पर त्योरियां चढ़ आईं।

'तो वह ढेर के ढेर कागज़ काले क्यों कर रखे हैं?'

'कुछ हो भी उनमें। लेखिका थोड़े ही हूं। मन में कुछ उमड़ता है तो लिख डालती हूं। घर वाले तो मुझे पागल कहते हैं।'

श्रीकान्त जो अब तक मौन था, बोला, 'इसे ही तो आत्माभिव्यक्ति कहा है। यही साहित्य की प्रणयनी शक्ति है। आपके पास कला है इसे प्रक्षिप्त मत रखिये। विकसित

करिये। आप अपनी रचनाएं मुझे दिखायें।'

इस प्रोत्साहन से साधना में आत्म विश्वास की भावना आई।

'मैं भिजवा दूंगी। धन्यवाद।'

'क्यों साधना, आज क्या वापिस जाने का विचार नहीं है ?' माधवी ने आकर कहा।

'चलो।'

दोनों के जाने के पश्चात मां तो सो गई और रेखा भाई के लिये चाय बनाने लगी। दोनों ने चाय पी कर अपने को तनिक स्वस्थ पाया।

श्रीकान्त किताब लेकर पढ़ने बैठा किन्तु पढ़ न सका। कितने ही नये पुराने दृश्य एवं घटनाएं उसके नेत्रों के सम्मुख घूमने लगे। माधवी की प्रतिमा तेजस्वी थी जबकि साधना एक दम निरीह बालिका सी उसके सम्मुख आती थी। माधवी परिस्थितियों से टकरा सकती है। उसके भीतर इतनी शक्ति है पर यह साधना—? यों लगता है इसे सहारा चाहिये नहीं तो बह जायगी।

'क्या सोचते हो भय्या ?'

'कुछ नहीं ?'

'कुछ तो ?'

सोचता हूं रेखा का ब्याह हो जाये तो उत्तर दायित्व से मुक्त हो जाऊं।'

'हटो, मैं नहीं पूछती।'

'अच्छा बताऊं ?'

'मैं नहीं सुनती !'

रेखा रूठ गई। उसने मुख दूसरी ओर कर लिया। श्रीकान्त भी रुख बदल कर उसी ओर जा बैठा। रेखा फिर घूमी, श्री कान्त भी घूम गया। तब दोनों एक दम खिल खिला कर हंस पड़े।

'एक बात कहूं भय्या ?'

'कहो।'

'यह साधना बड़ी अच्छी है।'

'अच्छा' संक्षिप्त उत्तर था।

'अच्छा नहीं, अपनी राय भी तो दो। तुम्हें कैसी लगी ?

श्री कान्त ने इसका उत्तर नहीं दिया। पूछा,—बहिन, ब्याह के विषय में वह स्वाधीन है या माता-पिता के अधीन ?

रेखा भाई के प्रश्न पर चकित रह गई। वह कभी ऐसी बात नहीं करता। फिर हंस कर बोली, 'भय्या ! वह एकदम माता-पिता के सर्वाधिकारी सुरक्षित है लेकिन यह प्रश्न क्या कुछ विशेष आशय लेकर पूछा गया है ?'

'हट पगली, मैंने तो यों ही पूछा था।'

वह पुनः पढ़ने लगा। मां सोई पड़ी थी। रेखा का शरारतीमन निश्चल नहीं बैठना चाहता था। वह एक पुस्तक उठा कर ज़ोर २ से लय के साथ पढ़ने लगी। श्री कान्त ने आंखे तरेर कर देखा किन्तु रेखा गाने में संलग्न थी। वह झूम रही थी। उसने स्वर और ऊंचा किया।

'धीमे पढ़ रेखा।'

'देखते नहीं कामायनी पढ़ रही हूं। कविता का वास्तविक आनन्द गायन और श्रवण में है।'

'अच्छा तो तुम गाओ, मैं सुनता हूं।' उसने अपनी पुस्तक

पटक डाली। रेखा अविचलित रही—वह और भी मुखर होकर पढ़ने लगी—

मधुमय वसन्त जीवन बन के, वह अन्तरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में।
क्या तुम्हें देख कर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी ?
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आंखें खोली थी।

'कितना सुन्दर लिखते हैं प्रसाद। किसीने सत्य कहा है कि सौंदर्य चित्रण में वे अद्वितीय हैं, क्यों भय्या ?'

'रेखा !' भीतर से मां पुकार रही थी।

'आई मां।'

'शुक्र है बला तो टली।'

रेखा मुँह चिढ़ा कर चली गई। श्री कान्त की खींझ मिट गई। इस वाचाल बहिन का निश्छल स्नेह उसे एक दम अलौकिक जगत की वस्तु लगता था। उसकी समस्त गम्भीरता रेखा के मुधुर-सरस बचनों के प्रवाह में बह जाती। वह एक दम हल्का अनुभव करने लगता। श्री कान्त सोचता यदि रेखा का प्यार जीवन में न होता तो वह एक बारगी ही बोझिल हो उठता। वह उठ कर कैमिस्ट की दुकान से दवा लेने चला।

मां की अस्वस्थता के कारण रेखा चार पांच दिन बाहर ही न निकल सकी, न साधना मिली न माधवी। आज जैसे ही कालेज से आई, साधना की छोटी बहिन सरिता बैठी थी। साधना ने दूसरे दिन आने के लिये कहला भेजा था। रेखा ने पूछा कि यदि कोई अत्यावश्यक कार्य हो फिर तो आना ही पड़ेगा किन्तु सरिता कुछ भी न बता सकी।

५

रेखा साधना के घर पहुंची तो ठाठ ही निराले थे। कमरे इत्यादि खूब सजे थे। मेज़ों पर रंग बिरंगे फलदार मेज़पोश बिछे थे, फूलदानो में मोतिये के फूल महक रहे थे। वैसे तो घर यों भी साफ सुथरा रहता था किन्तु आज चमक अधिक थी। वह झट ताड़ गई कि कोई न कोई साधना को देखने के लिये आने वाला है। वह मन ही मन हंसी। अच्छा! यह बात है! तभी सरिता कुछ बता नहीं सकी थी। भीतर सवित्री काम काज में व्यस्त थी। पड़ोसियों का मुंह भी दो तीन घन्टे के लिये मांग लिया गया था। वह चाय का सामान इत्यादि सजा रहा था। उसे देखते ही रामनाथ बोले, 'आ गई रेखा बेटी, आज का सारा प्रबन्ध तुझे करना होगा।'

बात यह थी कि घर का कार्य इत्यादि साधना ही देखती थी, छोटी बहिनें तो सर्वथा अनभिज्ञ थी। अब रह गई सावित्री देवी, वे तनिक पुराने ढंग की थी। आजकल कैसा चल रहा है यह उन्हें कम ही ज्ञात था। अतः रेखा को बुला लिया गया था। वह कालेज में पढ़ती है, आज कल के समाज के रंग ढंग जानती है। इसीलिये उसे कष्ट दिया गया था। रेखा सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई। एक दो सजावट की वस्तुएँ, उसे अच्छी नहीं लगीं वह हटवा दीं। अंगीठी पर सफेद अंगीठी-पोश था। उसने कहा, 'कोई रंगदार मेज पोश तिकोण करके बिछा दे सरिता, इस का प्रचलन आजकल नहीं है।'

सरिता स्फूर्ति से काम कर रही थी। थोड़ी देर में ही सब ठीक हो गया। अब वह साधना के पास गई। वह बिल्कुल गुम-सुम बैठी थी। मुख था वह भी निष्प्रभ।

'क्या बात है साध, खोई सी क्यों बैठी हो? आओ आज तुम्हें अलंकृत करने का भार मुझे मिला है।'

'सोचती हूं रेखा, पहला काण्ड अभी समाप्त भी नहीं हुआ कि पुनः यह तमाशा खड़ा किया जा रहा है।'

इतने में सावित्री भीतर आई और कहा, 'तुम हीं इसे समझाओ बेटी! जब विवाह करना है तो यह सब भी होगा। लड़कियां तो राजाओं महाराजाओं की भी घर नहीं रखी जाती। प्रातः काल से रो-रो कर इसने सिर का पानी भी समाप्त कर डाला है।'

साधना फिर रो पड़ी। आलिंगन में लेकर रेखा ने कहा, 'तुझे क्या हो गया है साधना। तनिक सम्भल जा बहिन।'

पर मन ही मन उसे क्रोध भी आया। साधना की अवस्था में यदि वह होती तो वह भी ऐसा ही करती। लड़की न हुई कोई मव्यिण्ड है जो मूक बनी सब सहती जाए। किन्तु वह बोली नहीं। साधना को तैयार करवाने लगी। सावित्री फिर रसोई में चली गई! हल्के हरे रंग की साड़ी में साधना बिलकुल समुद्र लक्ष्मी सी लगने लगी। गोरे रंग पर हल्का सा मेक-अप भी खूब फबा। घूमती घुमाती सरिता आई। बहिन को देख आल्हाद से भर उठी वह। 'अरे दीदी' तुम तो एक दम अप्सरा दीख रही हो।'

साधना ने कोई उत्तर न दिया, वह उसी मूक भाव से बैठी रही।

'दीदी कौन से स्वपन ले रही हो ?' सरिता ने पुनः छेड़ दिया ! साधना की चेतना लौट आई । रुंधे कण्ठ से बोली, 'जीवन की जटिलताओं में स्वपन नहीं देखे जाते सरो ।'

'एक दम इतनी गम्भीर न बनो दीदी ।'

'सच्च साधना, कोई समय होता है जब मृदुल सपने सबके हृदय में ज्वार उठाते हैं ।'

'जीवन केवल स्वप्न नहीं कठोर यथार्थ भी है बहिन ।'

सरिता बहिन के सौंदर्य पर रह २ कर रीझ रही थी ।

'दीदी कितनी सुन्दर लग रही हो आज ।'

'बिल्कुल प्रदर्शनी की वस्तु की भान्ति ।'

'प्रदर्शनी ?'

'और क्या । जैसे कोई व्यापारी ग्राहक को आकर्षित करने के लिए अपनी वस्तुओं को ठीन ढंग से सजाता है । ऐसी हा जड़वस्तुएँ समाज ने लड़कियों को भी बना डाला है ।'

बाहर घोड़े की टाप सुनाई । सब सतर्क हो उठे । रामनाथ बाहर गये । कुछ ही क्षणपोंरान्त एक युवक को भीतर लेकर आये और बैठक में बिठा दिया । योजना यह थी कि सब लोग इकट्ठे बैठ कर चाय पियेंगे । अतः जब चाय इत्यादि सज गई तो रामनाथ ने साधना को आने के लिए कहा ।

रेखा के साथ साधना आई । उसकी पहली सगाई जब हुई थी तब वह अभी निरी बच्ची थी किन्तु अब वह सब समझती थी । आगन्तुक ने साधना को खुलकर देखा, साधना ने पलकों ही पलकों में । साधना अनिंद्य सुन्दरी थी देखने वाला चौंधिया गया, इतना रूप ! वह काला था कुछ, स्थूल काय । व्यक्तित्व भी प्रभावशाली न था । फिर भी वह अकड़ कर बैठा था क्योंकि

पारखी बन कर आया था। साधना झुकी जा रही थी, क्योंकि वह परीक्षा दे रही थी। लज्जा की रक्तम्भा उसे और भी लावण्य प्रदान कर रही थी।

चाय चलती रही, राम नाथ बाबू इधर उधर की बातें करते रहे। साधना को जो देखने आया था उस का नाम रंजीत था। वह अपने व्यपार को बातें सुना रहा था। उन बातों से ऐसा अनुमान होता था जैसे वह लाखों का स्वामी हो परन्तु उन में डींग अधिक थी, यह कोई तनिक भी समझ रखने वाला जान सकता था।

सावित्री देवी प्रफुलित हो रही थीं। साधना को यह वर मिल जाए तो कितना अच्छा हो। राज करेगी, सुख भोगेगी। हां! कुछ काला अवश्य है तो क्या हुआ, पुरुष का सौंदर्य कौन देखता है, गुण चाहियें। फिर काले गोरे का युग्ल तो सदा से प्रसिद्ध है। राम सांवरे थे सीता जी गोरी, कृष्ण का तो नाम ही सांवलिया है और राधा गोरी थी। अहा कैसी अनूठी जोड़ी रहेगी यह।

चाय समाप्त हो गई, अब रामनाथ ने सावित्री को संकेत किया वे दोनों उठ गए। लड़के-लड़की को भी एक दूसरे को समझने का अवसर देना चाहिये। नया युग है जागृति का। उनकी भांति अन-देखे व्याह तो हो ही नहीं सकते थे। दोनों रात्रि के सन्नाटे की भांति गम्भीर थे। उनके लिये जैसे यह परीक्षा का समय था।

उधर रंजीत ने अपना परीक्षण आरम्भ किया। कभी साधना की शिक्षा के विषय में पूछता, कभी सिलाई के बारे में। फिर उसने संगीत और नृत्य के विषय में भी प्रश्न किये। रेखा चिढ़ रही थी, यह पुरुष नारी से क्या चाहते हैं! माना कि नारी

का गुणवान होना उसका गौरव है परन्तु इसका यह आशय भी नहीं कि नारी में वे सब गुण हों जो पुरुष चाहता है। इससे पूर्व पुरुष अपनी परिधि क्यों नहीं देखता कि वह कितने पानी में है। उसने हंस कर कहा, 'आप कठपुतली चाहते हैं, स्त्री नहीं ?'

'क्यों ?'

'एक दम जो इतना लम्बा चौड़ा विवरण पूछ रहे हैं।'

'पूछना ही पड़ता है जीवन भर का सम्बन्ध क्या बिना जाने ही हो जाना चाहिये ?'

रेखा पुनः कुछ न बोली। कहीं बात बढ़ न जाये और साधना के माता पिता उसी पर कोई दोषारोपण करदें।

साधना की बात चीत से, परीक्षण से रंजीत काफी संतुष्ट दीखता था। उसने और भी दो तीन लड़कियाँ देखी थीं किन्तु साधना जितनी सुन्दर थी उतनी ही गुण-वती। वह उस से प्रभावित हुआ था।

साधना को रंजीत की एक बात बहुत अखरी कि वह जब तक बैठा रहा सिगरेट पर सिगरेट फूंकता रहा। निरन्तर सिगरेट पीने से उस की उंगलियों के पोरे पीले पड़ गये थे !

रामनाथ फिर कक्ष में आ गये और रेखा इत्यादि को जाने के लिये संकेत किया। वे चली गईं तो धड़कते हृदय से पूछा 'तुम्हारा क्या विचार है बेटा ?'

उनका हृदय उसी अवस्था में था जिस में परीक्षार्थी का परिणाम निकलते समय होता है। उनकी आवाज़ निकल नहीं आ रही थी। 'लड़की आपकी सुन्दर है, सुशील है और मुझे देखकर सन्तोष ही हुआ है किन्तु निश्चित राय से वहां जाकर सूचित करूंगा।' 'जैसी तुम्हारी इच्छा।' रामनाथ का उत्साह

तनिक शान्त हो गया। फिर भी कहा, 'पिता जी से परामर्श करके शीघ्र ही सूचना देना।'

'जी, मैं पंद्रह दिन के भीतर ही आपको सूचित कर दूंगा।'

मंगनी का नौकर भेज कर टांगा मंगवाया गया। रामनाथ बाहर तक रंजीत को छोड़ने गये। लौटे तो सावित्री उत्सुक सीखड़ी थी। पूछा 'क्या कहा?'

''लड़की तो उसे पसन्द है। दस पन्द्रह दिन तक पक्का निश्चय सूचित करेगा।

'मेरा मन तो कहता है कि काम हो जायेगा'

'देखो भगवान को जो स्वीकार हो। लड़का सेहत का अच्छा है। कारोबार भी अच्छा है।हां! शिक्षा तनिक कम है, मैट्रिक पास है।'

'तो क्या हुआ, आगे एम. ए पास ने क्या सुफल दिया। लड़की के भाग्य में सुख हुआ तो मैट्रिक पास के साथ भी मिल जायेगा। तुम ज़रा पण्डित दीनानाथ के पीछे पड़े रहना। कर्त्ता धर्त्ता तो वही हैं।

'हां।'

पन्डित दीनानाथ इसी मोहल्ले के वयोवृद्ध सज्जन हैं! पहले एक सरकारा कार्यालय में हैडक्लर्क थे, अब रिटायर हो चुके थे और बस ब्याह शादियां करवाना और तुड़वाना ही उनका काम था। बा. रामनाथ भी शाम को वहां जा बैठते, उनके साथ दस-पांच और भो जुट जाते थे। खूब हुक्का गुड़-गुड़ाया जाता और कई समस्याएं हल की जातीं थीं। वे समस्याएं केवल व्यक्तिगत ही नहीं होती थीं, घर से लेकर समाज, देश यहां तक कि विश्व की समस्याओं पर विचार मिनिमय होता था। दो चार समाचार पत्र भी आ जाते, फिर तो राजनीति

धर्म, कर्म सब की आलोचना होती और कभी तृतीय युद्ध के प्रारम्भ के विषय में विचार प्रकट किये जाते। किसी दिन पड़ोसी देश पाकिस्तान की कश्मीर सम्बन्धी धमकियों की चर्चा होती तो कभी स्वेज नहर के प्रश्न तक उन लोगों की दृष्टि दौड़ जाती। यहीं, तक नहीं, बाप बेटे में झगड़ा हो गया तो उसका सुलझाव भी यहीं होता। एक दिन सब चले गये। केवल रामनाथ पं० दीनानाथ के निकट बैठे रहे।

'कहिये क्या बात है रामनाथ जी?'

आज सावित्री ने इन्हें पक्का करके भेजा था कि साधना के विषय में अवश्व वहां बात करें।

'जी लड़की स्यानी हो गई है।' रामनाथ के स्वर में संकोच था।

'कौन साधना बेटी? उसकी पहली सगाई तो टूट गई न।'

'जी हां।'

'लड़का खत्री ही हो न?'

'जी हां, बिरादरी का ही होना चाहिये। मैं तो जात पात छोड़ भी दूं पर स्त्रियों को तो आप जानते ही हैं।'

'हां, हां! क्यों नहीं, मर्यादा रहे तो अच्छी ही बात है।'

फिर गम्भीरता से सोचते हुए पं. दीनानाथ बोले 'लो बन गया काम। अरे एक लड़का है बहुत ही सुयोग्य।"

'कहां है?' रामनाथ की उत्कन्ठा उमड़ आई।

'जालन्धर में। कहो तो लिख दें। लड़का लाखों में एक है।'

और लाखों में एक लड़का ही साधना को देखने आया था। रेखा को काफी देर हो गयी थी सो वह चली गई थी। साधना ने क्रुद्ध भाव से साड़ी पटक दी और फिर सफेद कपड़े पहन लिये थे। केवल सरिता लुक छुप कर माता-पिता की

बात सुन रही थी। लड़का केवल मैट्रिक पास है यह उसने सुन लिया। उसे यह बात चुभ गई। उसकी दीदी एफ. ए' में पढ़ती है, सदैव प्रथम श्रेणी लेती है और ब्याह होगा केवल मैट्रिक पास से। चाहे सरिता अभी नादान बच्ची ही थी पर इतना समझती थी कि पति पत्नी से सुयोग्य ही होना चाहिये। वह भागी भागी साधना के पास गई।

'दीदी, सुना तुमने वह मि: रंजीत केवल मैट्रिक पास हैं।'

'होने दे सरो। जब डूबना ही तो क्या कुआं क्या खाई।'

किन्तु सरिता को चैन नहीं पड़ा। रात को जब वह पिता के पास बैठी तो कह ही दिया उसने, 'पिता जी, इतने कम पढ़े लिखे लड़के से दीदी की सगाई मत करिये।'

क्यों ?'

'मेरी सखियाँ मुझसे जब पूछेंगी तो मैं क्या कहुंगी कि मेरे होने वाले जीजा केवल मैट्रिक पास हैं। देखिये आशा की बहिन की सगाई डाक्टर से हुई, शोभा की बहिन की इन्जीनियर के साथ।

आशा और शोभा सरिता की पक्की सहेलियां थी।

'बेटी वे बड़े लोग हैं, हमारी और उनकी क्या बराबरी!'

'क्यों पिता जी, हमारी दीदी किससे कम है। वह तो उन सब से सुन्दर और योग्य है।'

सावित्री ने झिड़क कर कहा, 'तू सब बातों में टांग क्यों अड़ाती है सरो; बड़ों की बातों में मत बोला कर। उसके भाग्य में एम. ए. पास होता तो पहली सगाई ही न छूटती।'

भाग्य, भाग्य, भाग्य, भीतर बैठी साधना ने सिर पीट लिया। क्या है यह भाग्य, कुछ इसे देवता कहते हैं, कुछ

राक्षस। कहां छुप कर यह मनुष्यों की कर्म रेखा खींचता है। सब को अपने इंगिल पर नचाता है। क्या उसके भाल पर भाग्य ने कहीं 'सु' का चिन्ह नहीं लिखा ? दोनों हाथों में मुख छुपा कर साधना रो पड़ी विवश सी।

६.

नारी मन्दिर के द्वार पर खड़ी सहायिका से साधना ने पूछा, 'अभी दीदी नहीं आईं ?'

'मैं आ गई साध। माधवी ने एकाएक आकर उसे चकित कर दिया। माधवी अकेली नहीं थी। उसके साथ दो स्त्रियां थीं—मुरझाई हुई लतिका सी, प्राण हीन सी। दोनों के मुख पर परिस्थितियों की कठोरता परिलक्षित हो रही थी।

'तुम यहां बैठो।' दोनों स्त्रियाँ बरामदे में पड़े बैंच पर बैठ गईं। माधवी साधना को लेकर भीतर कमरों को देखने चली गई। अति वृष्टि के कारण कुछ कमरे बुरी तरह चू रहे थे। इस वर्ष की बर्षा भी क्या थी प्रकृति का प्रकोप था। बादल उमड़ते और बरस पड़ते थे। गत तीन दिवस अनवरत रूप से वृष्टि हुई। अनुमान से ३६ इंच वर्षा हुई होगी।

'अब क्या होगा ?' साधना ने चिन्ता से कहा।

'जो ईश्वर को स्वीकार होगा'

'ईश्वर !' साधना के स्वर में अविश्वास था।

'हां बहिन ! संसार का शासन चक्र उसी के अनुशासन में घूमता है।

'दीदी, हर समय ईश्वर, ईश्वर करना क्या मन की दुर्बलता नहीं है ?'

'तुम नास्तिक होती जा रही हो क्यों ? किन्तु साधना दुख में, निराशा में, एक मात्र वही मानव का सम्बल हैं, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।'

साधना को न जाने आजकल क्या हो गया था। हर एक बात में तर्क कर बैठती थी। कहीं भी उसका विश्वास स्थिर न हो पाता था। नारी मन्दिर की उपस्थिति आज बहुत कम थी। क्यों कि अधिक स्त्रियां गांवों की ही होती थीं और गावों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। वर्षा के कारण उनके कच्चे घर ढह गये थे। पशु मर रहे थे और वे लोग ऊँचे स्थानों पर आश्रय को खोज रहे थे। सहसा साधना ने पूछा, 'आज रेखा नहीं आयेगी क्या ?'

'वह तो पिछले इतवार से देहली गई है। उसके ममेरे भाई की शादी थी।'

'कब लौटेगी ?'

'कल श्री कान्त मिला था। कहता था वर्षा के कारण यातायात ठप्प हो गया है। कुछ भी हो श्री कान्त है अच्छा युवक।' आजकल खूब कार्य व्यस्त है। बेचारा दिन २ भर रात-रात भर गांव २ घूमता है।'

'हूं।' साधना केवल 'हुं' करके रह गई।

नारी मन्दिर का चक्कर लगा कर दोनों कार्यालय में

आ गई। तब दोनों स्त्रियों को, जो बाहर बैठी थी बुलाया गया।

'अब सुनाइये, आपने कैसे कष्ट किया है?'

'जो हमने पत्रों में लिखा है पढ़ लीजिये, सुनाने की शक्ति नहीं है।' एक बोली।

माधवी ने पत्र लेकर साधना को दे दिये। साधना पढ़ने लगी—

मेरे विवाह को छः वर्ष हुए हैं। इस अवधि में पति का प्रेम मुझे पूर्ण रूपेण मिला हो इसे मेरा मन नहीं मानता है। फिर भी कर्त्तव्य बन्धन से जकड़े यह वर्ष व्यतीत हो गये। यद्यपि पति कई प्रकार के शब्द-कुशब्द कहते थे पर जीवन चलता जा रहा था। मुझे इसी में सन्तोष था। परन्तु अब मुझे गुप्त रूप से विदित हुआ है कि वह दूसरा विवाह करवाने जा रहा है। मैं काली और करूप हूं। सभा-समाज में उसके साथ जाने के योग्य नहीं हूं, इसी शहर की एक एफ० ए० पास लड़की से उसका विवाह निश्चित हो गया है।

'एफ० ए० पास!' साधना पढ़ते २ रुक गई।

'जी हां, बेचारी के माता-पिता निर्धन हैं। धन के लिये लड़की का बलिदान कर रहे हैं।'

'ओह्!' साधना के मन को धक्का सा लगा।

'साधना अब यह रहने दो। दूसरा पत्र पढ़ो।' माधवी बोली।

'अच्छा दीदी।'

और वह दूसरा पत्र पढ़ने लगी—

मैं एक बाल विधवा हूं। चौदह वर्ष की आयु में विवाह हुआ और सोलह वर्ष की आयु में अकस्मात खेलते २ पति चल बसे। अश्रु की धारा में बह कर भी जीवन डूबा नहीं और

पापी प्राण पाषाण बन गये । सास ससुर जब तक जीवित रहे तब तक फिर भी कोई थोड़ा बहुत पूछने वाला था किन्तु अब देवर-जेठों के पल्ले पड़ी हूं । देवरानियां-जेठानियां सदा विद्रूप बाणों से हृदय छेदती हैं । दुखी होकर सोचती हूं आत्महत्या करलूँ, फिर मन कम्पित हो जाता है । न जाने किन कर्मों का फल वैधव्य रूप में भोग रही हूं, अब परलोक भी कैसे बिगाड़ लूँ । मेहनत मजदूरी की बात करती हूं तो उन की नाक कटती है । यूं खाना देना भी दूभर हो रहा है ।

'बड़ा करुण है दीदी, बस करूँ ।'

'रहने दो ।' फिर उन स्त्रियों की ओर घूम कर कहा, हम लोग आपकी सहायता करेंगी परन्तु आपका मन भी सशक्त होना चाहिये । यह समाज से टकराने का प्रश्न है । दुर्बलता से, कायरता से तो टकराया नहीं जा सकता ।'

'जी ।' एक बोली ।

हां बहिन ! आज तक नारी ने केवल रोना सीखा है । देना ही उस का लक्ष्य है यही जाना उसने । किन्तु देना ही देना रहे तो लेने का अधिकार भी छिन जाता है । विधवा बहिन तो यहीं रह सकती हैं । हस्त कौशल की शिक्षा उन्हें दी जायेगी । यदि पढ़ने की रुचि हो तो वह भी हो सकता है ।'

'पर दीदी, दूसरी बहिन—?'

'हां ! यह प्रश्न विचारणीय है । लड़की के माता-पिता को समझाया जा सकता है । मुझे यही समझ नहीं आता कि जब नारी काले करूप पुरुष के साथ जीवन भर निर्वाह कर सकती है तो पुरुष ऐसी स्त्री के साथ क्यों नहीं कर सकता ।'

साधना के नेत्रों के सम्मुख एक दम रंजीत वह आ गया ।

कुछ बोल ही न सकी। माधवी फिर बोली, 'लड़की सुशिक्षित है वह भी इस विषय में कदम उठा सकती है। अच्छा बहिनों, अब तुम जाओ, कल इसी समय पुनः उपस्थित हो जाना।'

'जी अच्छा।'

दोनों स्त्रियां चली गईं। माधवी पेन्सिल उठा कर कागज़ पर कुछ उलटी सीधी रेखाएं खींचती रही। फिर कागज़ का टुकड़ा उठा कर साधना को दिखाया

'यह क्या दीदी ?'

'चित्र कला।'

'वाह! यह नये रूप की चित्रकला है।'

'देखती नहीं ऐसे ही तो ब्रह्मा जी सभी की भाग्य रेखाएं डालते हैं।' बिना देखे, बिना समझे। न जाने किस के भाग्य में क्या आ जाये।'

साधना ने बाहर झांका, नभ कृष्ण वर्ण मेघों से आच्छादित था। कक्ष में अन्धकार सा छा गया। मन्द समीर का एक झोंका उसके केशों से क्रीड़ा करके उन्हें बिखरा गया।

'दीदी, बादल बरसते ही आ रहे हैं।'

'चलना चाहिये साधना।'

पर चलने से पूर्व ही छम छम वर्षा होने लगी। जल की बड़ी २ बूंदें बरस रही थीं जो शीघ्र ही मुसलाधार रूप धारण कर गईं। विवश हो उन्हें रुक जाना पड़ा। वे फिर कार्यालय में आ बैठीं। घुप्प अन्धेरा हो गया। साधना ने बत्ती जला दी।

'दीदी!' साधना के स्वर में जैसे अनुरोध था।

'क्या है ?'

दीदी एक दिन तुमने कहा था अपनी कहानी सुनाओगी। आज ही सुनाओ। समय का रथ तो चलता ही नहीं।'

'वर्षा के कारण पहियों को जंग लग गया होगा।'

'दीदी कहानी सुनाओ '

अभी समय नहीं आया साधना, मेरी कहानी एक की कहानी है मुझे कईयों की कहानियां देखनी हैं।

'कहानी तो एक की ही होती है। सुनाओ।'

'हठ न कर साधना। समय आयेगा तो स्वयं ही कहुंगी, फिर तू चाहे उपन्यास लिख डालना। अच्छा तू बता दुल्हिन कब बन रही है ?'

'तुम्हें तो हंसी सूझती है दीदी।'

'तुम्हारी सगाई नहीं हुई ? क्या मैंने झूठ सुना है ?'

'झूठ तो नहीं, परन्तु सच भी नहीं।

'क्यों।'

'केवल रेखा चित्र बना है रंग भरने तो शेष हैं।'

'बड़ी चालाक है, तूने देखा उन्हें ?'

'यह न कहो, कहो उन्होंने देखा तुम्हें।'

'एक ही बात है। साधना जो तुम्हें देखने आये वह पानी में मुख धोकर आये।'

'कुम्हारी अपना हो बर्तन तो सराहेगी। दूसरे तो बहुत कुछ देखते हैं दीदी।'

आठ बज रहे थे और वर्षा थमने के कोई लक्षण न थे। माधवी ने भी आशंका से देखा, फिर मुस्कराई 'साधना कहीं आज यहीं अतिथि न बनना पड़े।'

'नहीं दीदी, चलो शरीर कागज का तो नहीं जो गल जायेगा।

'तो चल भई तेरी ही मरज़ी सही।'

बाहर आकर देखा तो घुटनों तक पानी नीचे था। ऊपर से मुसलाधार वर्षा। दोनों ने समझ लिया कि आज यहीं टिकना पड़ेगा।

नारी मन्दिर में लगभग बीस स्त्रियां स्थायी रूप से रहती थीं, जैसे ही उन्हें पता लगा कि बहिन जी यहीं रहेंगी उनमें उत्साह की एक लहर सी दौड़ गई। भोजन की सामग्री वहीं जुटा ली गई। आलु और प्याज के पकौड़े बने, साथ में गेहूं के फुल्के। सभी हंसती थीं और बनाती थीं। यों लगता था जैसे घर में बारात आ गई हो। बन जाने पर सब ने इकट्ठे बैठ कर खाया। कोई कृत्रिमता न थी।

माधवी का विचार था कि साधना अब कहानी की हठ नहीं करेगी किन्तु साधना भूलने वाली न थी। चारपाई पर पड़ते ही पुनः पीछे पड़ गई। माधवी को अब हार कर सुनानी ही पड़ी।

यह कहानी नहीं साधना, जीवन की वास्तविक घटना है फिर भी दस वर्ष हो गये। तब मैं बीस वर्ष की थी, अब तीस की हो रही हूं। जैसे कोई स्वप्न मन व मस्तिष्क पर गहन छाप छोड़ जाता है यह घटना वैसी ही लगती है।

मैं बी. ए. में पढ़ती थी। तुम जानती हो मां का वात्सल्य विधि ने मुझ से बहुत पहले छीन लिया था पर पिता के प्यार की शीतल छाया में मैं निर्द्वन्द बढ़ती जा रही थी। पिता जी धुन के पक्के थे। रिश्ते-नातेदारों के लाख कहने पर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। वे धनवान थे, अवस्था भी अधिक न थी और तीसरे पुत्र-हीन थे। फिर सनै वे नहीं माने। उनके प्यार का केन्द्र मैं बन गई थी। 'कहा करते—'बिटिया, तू ही मेरे जीवन का आधार। है

ईश्वर को स्वीकार होगा तो तू ही मेरा नाम उज्जवल कर देगी।'

मैं फूल उठती सुनकर। हाँ! तो जब मैं बी. ए. में थी, हमारे पड़ोस में एक इन्जीनियर साहब आये। उनका लड़का मकरन्द ऐम. ए. में पढ़ता था। इंगलिश ले रखी थी उसने। मेरी इंगलिश थोड़ी कमज़ोर थी। पिता जी से कहा--'ट्यूशन' का प्रबन्ध कर दें। पिता जी के पास इन्जीनियर साहब प्राय: शाम को आते। मकरन्द भी आने लगा।

एक दिन मैं कोठी के बाग में बैठी पढ़ रही थी। शायद मिलटन की कोई कविता थी।

'क्या पढ़ रही हैं?' यह मकरन्द था। वह गौर वर्ण तो न था परन्तु छ: फुट लम्बा कद और सबल शरीर उसके व्यक्तित्व को सुन्दर बना देते थे। बड़ी बड़ी आंखें, तनिक मोटी नाक पुरुषत्व का पूर्ण प्रतिनिधि। मकरन्द ने पुस्तक मेरे हाथ से छीन ली, 'लाइये मैं आपकी परीक्षा लूं।'

'क्या आप प्रोफैसर हैं?' मैंने कुछ संकुचित हो कर कहा। उसकी ओर सीधे देखने का साहस नहीं हुआ। वह ज़ोर से हंस पड़ा, 'क्या आप समझती हैं कि मैं सचमुच आपकी परीक्षा लूँगा।'

अब कि मैंने देखा, वह मन्द २ मुस्का रहा था। किंचित आवेश में आकर मैंने कहा, 'ले लीजिये न परीक्षा, यहां डरने वाले नहीं हैं।'

'अच्छा, कापी लीजिये।' उसने एक प्रकरण लिखवाया। मैंने लिख दिया और क्षोभ से कापी पटक दी। वह फिर हंसा क्या बताऊँ कैसा हंसता था? कापी देखी उसने और कहा--'विचार प्रकट करने की शक्ति तो है किन्तु शब्द विन्यास--?

आप कहां पढ़ाते हैं ? उसके वाक्य पूर्ण करने से पूर्व ही मैंने कहा ।

पढ़ाता तो नही हूं परन्तु इंगलिश की एम. ए. कर रहा हूं ।"

तभी पिता जी वहां आ गये । मकरन्द ने प्रणाम किया तो उनका हृदय खिल उठा ।

'क्या देख रहे हो ?

'जी इनकी कापी ।'

'ठीक है, ठीक है, देखो जरा । बी.ए. फाइनल में है । मेरे कान खाती रहती है इंगलिश कमज़ोर है, इंगलिश कमज़ोर है ।

'पिता जी ! ' चिढ़कर मैंने कहा ।

'मकरन्द कोई दूसरा थोड़ा है । परीक्षा में अभी छः मास हैं । तब तक इससे सहायता लो । दो–तीन मास टयूशन रख लेना । क्यों बेटा मकरन्द ?'

'अनुमोदन करते हुए मकरन्द बोला, 'जी मुझे प्रसन्नता होगी ।" पुनः मेरी ओर देखा और शरारत से कहा, तो चलिये आज ही श्रीगणेश हो जाये । शुभस्य शीघ्र होना चाहिये ।'

'चलिये ।' झिझकते हुए मैंने कहा ।

उस दिन से पढ़ाई आरम्भ हो गई । समय रखा गया सन्ध्या के सात बजे । खेलों से मकरन्द को विशेष लगाव था । शाम की टेनिस का समय वह किसी मूल्य पर भी खो नहीं सकता था । पढ़ाते-पढ़ाते एक मास व्यतीत हो गया । मेरी इंगलिश सन्तोष जनक हो गई । नवमासिक परीक्षा हुई । इंगलिश में मेरी द्वितीय श्रेणी आ गई । पिता जी ने सुना तो प्रसन्न हो उठे ।

'वाह बेटी ! तुमने तो कमाल कर दिया ।'

मेरे आल्हाद की सीमा न थी। शाम को मकरन्द आया तो मेरी सराहना करते हुए पिता जी बोले, 'माधवी ने तो एक दम चमत्कार कर दिखाया मकरन्द !'

'जी हां ! वास्तव में चमत्कार ही है।

कितनी निरीहता से वह समस्त श्रेय मुझे दे रहा था। पिता जी चले गये तो उसका चांचल्य मुखर हो उठा।

'लाइये मेरा पारितोषक।'

'क्या ?'

'अरे, तो आप कुछ देना ही नहीं चाहती ।

'आप क्या चाहते हैं ?

'जो आप देना चाहें।'

'यदि मैं कुछ न देना चाहुं ?'

'तो हम 'कुछ न' को स्वीकार कर लेंगे।'

तब हम दोनों मुस्करा पड़े।

'अब तो मार्ग दिखादिया, चली जाइयेगा न ?'

'कहां ?' आश्चर्य से मैंने कहा।

'मेरी परीक्षा निकट आ रही है, अब प्रोफैसर आना चाहिये।'

मुझे उसकी बात चुभ गई। उससे पढ़ते-पढ़ते मुझे याद ही नहीं रहा था कि कभी पिता जी ने उसे एक-दो मास के लिये पढ़ाने को कथा था। मैंने जानबूझ कर पूछा, 'आपका आशय क्या है ?'

'हमें छुट्टी मिलनी चाहिये।'

'आप को बांध किसने रखा है ? आप मत पढ़ाइये। मैं परीक्षा ही नहीं दूँगी।' मेरे स्वर में रोष था।

'ओ, आप रूठ गईं ?

वह मेरी मनःस्थिति समझ रहा था। बोला, 'आपका मन

बड़ा छोटा है। अच्छा ! मैं ही आपको पढ़ाऊँगा।'

'आप को हानि नहीं होगी ?'

'जी ऐसी हानि क्या होगी। हमें भी तो वही कवि तैयार करने होते हैं। क्रियात्मक अध्ययन ही सही। किन्तु आज की भांति पारितोषक देने से मुकर मत जाईयेगा।

'नहीं, जो आप माँगेगे वही मिलेगा।'

'बचन रहा।'

'वचन रहा पक्का'

साधना ने बीच में ही टोक कर कहा, 'दीदी ऐसी शरारती और भावुक तुम थी। मुझे तो विश्वास नही आता।'

'नही साधना, वह वयस ही ऐसी थी। अब तो भावनाएं घुट २ कर मत प्राय: हो गई हैं। तब ऐसा न था।

फिर बादलों की ओर देख कर माधवी ने दीर्घ श्वास ली।

'ओह ! यह कम्बख्त बादल, बन्द होने का नाम नहीं लेते !

'दीदी फिर !'

हां......आगे। परीक्षा हुई और मैं देख कर आश्चर्य-चकित रह गई। मेरी प्रथम श्रेणी आ गई थी। इस उपलक्ष्य में पिता जी ने एक बहुत बड़ी पार्टी का आयोजन किया। उत्सव की नायिका बनी मैं इठलाती फिरती थी। आज प्रथम बार मेरे मन में मकरन्द को आकर्षित करने का विचार उठा। तुम देखती हो मैं अधिक सुन्दर नहीं हूं।'

ऐसी करूप भी नही हो दीदी, बनो ठनो तो अब भी अप्सरि लगो।

'हट शैतान। आगे सुन।'

जब सभी चले गये तो वह मेरे कमरे में आया।

'अब तो दोगी न।'

'क्या ?'

'अपनी कही बात भी भूल जाती हैं आप ?'

'अच्छा ! मांगिये ?'

'मांगलू ।'

'जो चाहें ।'

पर भीतर से मेरा मन धड़क रहा था । जाने यह क्या मांगले । किन्तु उसने आगे बढ़ कर मेज पर पड़ा मेरा चित्र उठा लिया । मेरे मन में प्रसन्नता का ज्वार सा उठा, तो भी ऊपर से क्षुब्ध होकर मैंने कहा, 'यह भी लेने की वस्तु है क्या ?'

'आपके लिये नहीं भी हो सकती मेरे लिये तो है ।'

मैं मूक बनी रही तो पुनः प्रश्न किया उसने, 'यदि आपको अच्छा नहीं लगता तो लौटा दूं । क्योंकि यह तो केवल बाह्य प्रतीक है ।'

अब मैं समझी कि उसकी बातों में गहराई है । मैं भी विभोर हो उठी । बोली, 'एक शर्त पर मिलेगा ?

'मान्य है ।'

'प्रतिदान में भी इसका पर्याय मिलेगा ।'

उसके मुख पर एक दीप्ति आ गई सुनकर, नेत्र मुस्कराये । उस दिन से हम निरन्तर निकट आने लगे । पिता जी ने देखा लड़का होनहार और सच्चरित्र है, उन्हों ने हमारे निकट होने में कोई अड़चन नहीं डाली ।

मेरा अध्ययन बी. ए. के पश्चात रुक गया । पिता जी और अधिक पढ़ने के पक्ष में न थे । वे मेरा विवाह कर देना चाहते थे । अवसर पाकर उन्होंने मकरन्द के पिता से यह चर्चा चलाई । इन्जीनियर साहब सांसारिक चातुर्य के मनुष्य थे । उनकी दृष्टि पिता जी की सम्पत्ति पर थी । वे मान गये ।

किन्तु एक दिन बातों ही बातों में उन्होंने कह डाला ''मैं तो आयु भर नौकरी में रहा साहब, मिथ्या ठाठ-बाट में सब उड़ा दिया। मकरन्द की योग्यता देख सोचता था विदेश जाना इसके लिये आवश्यक है। अब वह समस्या सुगमता से हल हो गई।'

पिता जी उनका संकेत समझ गये। उनकी बेटी का विवाह सौदा बन कर रह जाये, यह उन्हें कतई पसन्द न था। इन्जीनियर साहब की कुच्छ लालसा ने उन्हें जैसे ठोकर लगादी। उन्हों ने विवाह करना ही अस्वीकार कर दिया। कहा, 'निःसन्देह मेरे पास सम्पत्ति है पर मैं वह लड़का चाहता हूं जो अपना भविष्य स्वयं निर्माण करे। आप शादी मेरी लड़की से नहीं, मेरे धन से करना चाहते हैं।'

इन्जीनियर साहब ने बिगड़ी बात बनाने की लाख कोशिश की पर व्यर्थ !

उसी दिन जब मकरन्द आया तो पिता जी ने वही बात उसे भी कह दी। वह सर्वथा अनभिज्ञ था। सुनकर वह भी हक्का बक्का रह गया। एक लड़के के विवाह का सौदा हो वह उसके यौवन को चुनौती थी। किंकर्तव्यविमूढ़ सा लौट गया वह। पिता जी ने मेरा उससे मिलना जुलना बिलकुल बन्द कर दिया। मैं भी पिता जी की पुत्री थी। ऐंठ की मात्रा मुझ में पर्याप्त थी। किसी का यह साहस कि धन के पलड़े पर मुझे तोले ? मकरन्द का चित्र उठा कर अलमारी में बन्द कर दिया।

पिता जी देहली गये थे। घर में केवल मैं और मेरी बुढ़िया दासी थी। मकरन्द आया, एक दम मुर्झाया सा, मुख पर मानो किसीने हल्दी पोत दी हो।

'क्या हो गया आपको ?' मैंने पूछा।

'क्यों ?'

'यह ज्योतिहीन नेत्र, मुर्झाया चेहरा, किसी डाक्टर को दिखाइये न !'

'डाक्टर क्या करेगा ?' उसने चुभती दृष्टि से मुझे देखा। मैं सिहर उठी, दूसरी ओर देखने लगी।

'क्या बोलेगी भी नहीं ?'

'जी बोलती तो हूं।'

'माधवी तुम कुछ समझती नहीं हो।' प्रथम बार माधवी कह कर पुकारा था मकरन्द ने। इस सम्बोधन में उसके मन की एक २ धड़कन स्पष्ट हो रही थी। फिर भी मैंने कठोरता से कहा, 'मैं कुछ नहीं समझती।'

'स्पष्ट कहलवाओगी क्या,' वह केवल चित्रों का नहीं हृदय का विनिमय भी हो गया था।

'मैं पिता जी की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकती।'

मेरे निष्ठुर वाक्यों ने उसका हृदय छलनी कर दिया होगा साधना। पर उस समय मैं पाषाण बन गई थी। मेरे हृदय की कोमल भावना न जाने कहां मर गई थी। उस घड़ी को अब पछताती हूं साध ! किन्तु समय जो चला जाता है लौट के कहां आता है ? जब वह डगमगाता जा रहा था, मैंने उसकी खिल्ली उड़ाई थी-ढोंगी, पाखन्डी, प्रेमी बनने चला है ! पिता जी के आने पर मैंने इस घटना का वर्णन और भी तूल दे कर किया। क्रुधित हो वे बोले, 'मेरे घर में अब घुसेगा तो टांगें तोड़ दूंगा।'

इसके पश्चात वह नहीं आया। दिन पर दिन व्यतीत

होने लगे किन्तु उसकी स्मृति मेरे मन से न गई। पुस्तकें सम्मुख आते ही उसकी बातें स्मृति को झकझोर जातीं।

अपनी एक सखी के घर से मैं लौट रही थी कि वह मार्ग में मिल गया। मुझे देख कर वह ठहरा, मुझे शिष्टाचार के नाते अभिवादन करना ही पड़ा।

"क्या संग चलने की आज्ञा है ?'

'चलिये।'

चलते-चलते उसने कहा, 'तो क्या मन्दिर से प्रसाद नहीं मिलेगा ?'

'विवश हूं।'

'आप सब कुछ कर सकती हैं !

'आप पिता जी से कहिये।'

लम्बे डग भरता वह चला गया। देर तक मैं उसकी ओर निहारती रही।

'दीदी तुम बड़ी निष्ठुर निकलीं।'

माधवी रोने लगी। साधना जिसे चट्टान की भाँति सुदृढ़ समझे थी वह मोम सी द्रवित हो रही थी। अश्रु पोंछ कर माधवी आगे कहने लगी--

लगभग एक-डेढ़ मास व्यतीत हो गया। मुझे मकरन्द देखने को भी न मिला। मेरा मन कई बार हुआ कि उसे देखूं परन्तु मेरे हठ ने मुझे रोके रखा। दासी बाहर गई तो आते ही सूचना दी, 'सुना माधवी बिटिया !'

क्या ?'

'वह जो इन्जीनियर साहब का लड़का है न ?

'वह मकरन्द !'

'हां ! हां ! वही विटिया, सुना है पागल हो गया है ।'

'पागल हो गया है ?' एक दम मैं चिल्ला पड़ी । उसकी आकुल आवृति मेरे नेत्रों के सम्मुख नाच गई । हृदय ने धिक्कारा, वह सच्चा प्रेमी था । तुमने उसे खिलौना समझा । उसके जीवन नाश का कारण तुम हो, तुम हो । मेरे अन्तर्मन से जैसे चीत्कार सा उठा । मैं भागी गई उसके यहां । वह विक्षिप्त सा बैठा था । शून्य नेत्रों से ऊपर की ओर निहार रहा था । उसकी मां ने कहा, 'देख बेटा, माधवी आई है ।'

'कौन चान्दनी ?' मेरी ओर घूर कर उसने देखा और अट्टहास कर उठा, 'हा ! हा ! हा——तो उसे कहो नभ में बिखर जाये । तो कहो उसे फूलों पर छा जाये । मेरे पास उसे सँजोने के उपकरण नहीं है ।'

मैं माधवी हूं । देखिये तो——

उसने पुनः घूर घूर कर मुझे देखा किन्तु उन नेत्रों में परिचय-ज्ञान के कुछ लक्षण न थे । शून्य नेत्रों से देखता था और हंसता था । मैं लज्जित सी लौट आई । मुझे ग्लानि हो रही थी । मन दुखी हो रहा था । पिता जी को पता लगा तो बोले, 'कम्बख्त बाप ने धन को वेदी पर बेटे का बलिदान कर दिया ।'

उन्हें इन्जीनियर साहब पर क्षोभ था, मकरन्द से उन्हें हार्दिक प्रेम था । इन्जीनियर साहब बड़े दुखी थे । कहां बेटे को विदेश भेजने के स्वप्न देखते थे कहां यह स्थिति आगई । देखते थे और रोते थे । मां की दशा और भी बुरी थी, उसकी सभी आशाओं पर तुषारा पात हो गया था । मस्तिष्क के उपचार के लिये उसे रांची भेज दिया गया ।

मैंने उसका चित्र पुनः मेज़ पर सजा दिया । उसमें वह

वसा ही सरल मुस्करा रहा था। उसे देखते ही मेरे हृदय में ऊफ़ान सा उठ आता। मेरे लिये उसने जीवन का सौंदर्य नष्ट कर लिया। कभी मैं मजनु जैसे प्रेमो की कहानियां पढ़ती थी तो उन्हें मिथ्या समझती थी। अब स्पष्ट प्रमाण मिला कि संसार में सच्चे प्रेमी भी होते हैं।

इसी बोच इन्जीनियर साहब की बदली हो गई। वे लोग वहां से चले गये और साथ ही भविष्य में मकरन्द से मिलने की आशा भी गई। मैं अशान्त रहने लगी। घन्टों ही उस मूक चित्र के सम्मुख बैठो आंसू बहाती रहती। पिता जो इस सब से अनभिज्ञ थे। पर मेरे गिरते स्वास्थ्य ने उन्हें सतर्क किया, बुढ़िया दासी को बुला कर पूछा, 'क्या आज कल बिटिया कुछ खाती पीती नहीं है ?'

'खाना पीना क्या करेगा मालिक, घन्टों वैठी रोयेगी तो दुबली ही होगी।'

'माधवी रोती है ! क्यों ?

'मैं क्या जानूं', उस मकरन्द के चित्र के सामने बुझे २ नेत्रों से बैठी जाने क्या सोचती रहती है। मालिक, घर में अकेली बिटिया क्या करे। ब्याह कर दोजिये, स्वयं ठीक हो जायेगी।'

पिता जी केवल 'हूं' करके रह गये। उस दिन से मेरा वे और भी अधिक ध्यान रखने लगे ताकि मकरन्द को भूल जाऊं पर मैं भूल नहीं सकी।

'माधवी सामान तैयार कर लो, हम लोग शिमला चलेंगे।

शिमला जाने का कोई पूर्व चिन्तित कार्य क्रम न था। पिता जी ने बहाना तो अपने व्यापार का किया परन्तु शिमला आने पर पता चला कि वह कोरा बहाना था क्यों कि वे सारा

दिन मुझे ही घुमाते-फिराते रहते थे। वहां पिता जी के एक भाई रहते थे। हम उन्हीं के पास ठहरे थे। मैं कहती, 'पिता जी आप अपना काम समाप्त करलें। मैं चाची के पास ठीक रहुंगी।'

वे कहते, 'मुझे जिसके साथ काम है वह अभी नहीं आया।'

उन्हीं दिनों एकाएक चाचा जी ने मेरे विवाह के लिये एक लड़का उन्हें दिखाया। जो प्रसिद्ध डाक्टर था। पिता जी इसी ताक में थे किन्तु मेरे सम्मुख जब यह प्रस्ताव आया तो मैं बिल्कुल 'ना' कर गई। पिता जी ने मुझे समझाया, 'देखो बेटी, मैं मानता हूं कि मकरन्द अच्छा लड़का था। उसके उन्मत्त होने का मुझे भी असीम दुख है। किन्तु अतीत को लेकर व्यर्थ ही जीवन को बोझिल बनाना ठीक नहीं। जो हो नहीं सका उसके लिये पश्चाताप क्यों ? हमें परिस्थितियों को स्वस्थ रूप से स्वीकार करना चाहिये।'

'जी, आपका कथन ठीक हो सकता है। किन्तु मैंने विवाह न करने का प्रण कर लिया है।'

'प्रण कर लिया है ? किसके सामने ?'

'अपने अन्तर्वासी को साक्षी मान कर मैंने यह प्रण किया है कि आजीवन विवाह न करुँगी।'

पिता जी के समस्त प्रयास विफ़ल हो गये। रिश्ते-नातेदारों ने समझाया। परन्तु मैं अड़ गई थी। पिता जी का दुख अब पराकाष्ठा को पहुंच गया था। एक ही बेटी और उसका जीवन भी अनिश्चित। उन्हें यह चिन्ता थी कि इतने वृहत् विश्व में कुमारी का जीवन कैसे निभ सकेगा ?

'दीदी यह आश्रम फिर कैसे खुला ?' साधना ने कहानी का प्रवाह बदलना चाहा।

'यह भी सुनो---

एक बड़ी भयानक रात्रि थी। घोर अन्धकार का साम्राज्य था। सम्भवत: चतुर्दशी रही होगी। नक्षत्र आकाश में स्वच्छन्द क्रीड़ा में व्यस्त थे, मैं उनकी आंख मिचौनी देख रही थी। सहसा करुण क्रन्दन की ध्वनि मुझे सुनाई दी। यह चीत्कार निरन्तर बढ़ता जा रहा था। मैं सो नहीं सकी। निकट सोई दासी को जगाया। उसने कहा, 'सो जाओ बिटिया, अब आधी रात को किसे पूछोगी।'

पर मुझे चैन कैसे आये। मेरा हृदय उस चीत्कार का रहस्य जानने को व्यग्र था। नारी कन्ठ का वह करुण रोदन मैं सह नहीं पा रही थी। मेरा मानवी मन कचोट उठा। पता करने पर ज्ञात हुआ कि थोड़ी दूर पर जो ड्राइवर रहता है वह अपनी बहिन को प्राय: ऐसे ही पीटता है। दासी ने मुझे आश्वासन दिया कि प्रात:काल वह अवश्य उसे ले आयेगी और अब मैं सो जाऊं। किन्तु सोना मेरे लिये असम्भव था। सारी रात करवटों में काट दी।

प्रात:काल दासी उस स्त्री को ले आई। उसने बताया कि पति उसका शराबी और बिगड़ा दिल है। उसकी मार-पीट से तंग आकर वह भाई के पास आ गई है पर भाबी उसे देख नहीं सकती। यद्यपि वह सारा काम काज करती है फिर भी कोई न कोई दोष लगा कर उसे तंग किया जाता है। कल रात भाबी ने उस पर कांटे चोरी करने का दोष लगा दिया। इसी पर भाई ने उसे मारा। वह चाहता था कि वह चोरी स्वीकार करले पर जब उसने चोरी की नहीं तो कैसे झूठा आरोप स्वीकार कर लेती।

'बहिन इससे तो अच्छा है कि तू मेहनत मज़दूरी करले ।'

प्रत्युत्तर में वह स्त्री बोली 'बीबी जी, आप के पास धन है, सुरक्षा है, आप नहीं जानती कि एक युवती का जीवन कितना कन्टक-मय होता है। पग २ पर उसे कामुक भेड़ियों से अपनी रक्षा करनी होती है। आप कहेंगी कि जब भाई की मार ही खानी थी तो पति छोड़कर क्यों आई। मेरा पति मुझे बेचना चाहता था।

'बेचना ?' आश्चर्य में पड़ कर मैंने कहा।

'हां ! उसने पांच सौ में मेरा सौदा पक्का कर लिया था। मुझे जैसे ही सूचना मिली मैं भाग आई।'

'किन्तु भाई भी तो तुझे मारता है ?'

'वहां से तो भाग आई बीबी जी, यहां से कहां भागूंगी। अब तो एक ही राह है—आत्म-हत्या।'

'आत्म-हत्या ?' मैं कांप उठी। पर उसके मुख पर भय का चिह्न तक न था ! सम्भवतः कष्टों ने उसे मौत का सामना करने की दृढ़ता दे दी थी। मेरे मन में विचार आया—मेरे पास धन है-साधन है, क्यों न ऐसी असहायों का सहारा बन जाऊं। मेरे हृदय की पीड़ा दूसरों की पीड़ा में समा जाये। अपने दुःख से सभी दुःखी होते हैं, आनन्द तो दूसरों के लिये दुखी होने में है। फिर एक और प्रश्न भी था···मानव-मन को सन्तुलन चाहिये, और सन्तुलन होता है व्यस्त रहने से। मैं चाहती थी कि ऐसा बोझ मन व मस्तिष्क पर पड़े कि कोई अन्य चिन्ता इसे विचलित न कर सके।

पिता जी के सम्मुख यह प्रस्ताव जब रखा तो वे प्रसन्न हुए। वास्तव में मेरी इच्छा ही उनकी इच्छा थी। तब से यह सब आरम्भ हो गया।

'दीदी, बड़ी करुण कहानी है। इस महान् दुख को हृदय में रखे हुए तुम कितनी महान हो ?' साधना ने श्रद्धा से कहा।

उत्तर देने से पूर्व ही माधवी ने करवट बदल ली थी। उसके हृदय का बांध आज ओर-छोर तोड़ बह जाना चाहता था। बाहर बादल पूर्ण वेग से बरस रहे थे, भीतर माधवी के नयन।

७

बहुत प्रयास करने पर भी श्रीकान्त माँ व रेखा के विषय में कोई सूचना न पा सका। कई तार उसने अपने मामा को दिये किन्तु वहाँ से उत्तर मिला कि वे वहाँ से चल चुके हैं। न जाने दोनों कहां हैं, यह चिन्ता श्रीकान्त को तंग कर रही थी। यों आजकल कार्य भी कम न था। अमृतसर के इर्द गिर्द के सभी गांव जल मग्न थे। एक सप्ताह के ताण्डव के पश्चात् वर्षा का प्रकोप तो शान्त हो गया था किन्तु उसके अवशेष अभी भी भीषण रूप प्रदर्शित कर रहे थे। कच्चे गांव तो समूचे के समूचे बह गये थे, जो पक्के थे उनकी दशा भी चिन्त्य थी। और स्थान नहीं मिला तो ऊँची सड़कों पर ही लोगों ने डेरे जमा लिये थे। बहू-बेटियां मुक्त वातावरण में आकाश के वितान तले सोती थीं। सुमन-कोमल शिशु कंकरों की शय्या पर लेटते थे और पुरुषों के लिये तो विश्राम की आवश्यकता ही जैसे न थी। सारी सारी रात जागते थे और प्रकृति के अभिशाप को देखते थे। उन्हें सामान की चिन्ता

न थी, यदि चिन्ता थी तो परिजनों की। भौतिक सामग्रियां पुन: जुट सकती हैं, यह स्नेह और मोह के नाते पुन:मिलने दुर्भल होंगे। अत: उन्हें ही सुरक्षित रखने की उन्हें चिन्ता थी। इस घोर संकट के क्षणों में उन्हें केवल उसी का भरोसा था जिसे भगवान कहते हैं। हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए वे कहते—हे ईश्वर दया कर। विभो अपने प्रलयंकर रूप को छुपा लो और करूणा की स्निग्ध रश्मियां विकीर्ण करो। सब के मन की गहराइयों से एक ही पुकार; एक ही विनय निकलती थी।

ऐसे समय श्रीकान्त जैसे कई नवयुवक सब कुछ भूल कर इन पीड़ितों की सेवार्थ निकल आये। दिन दिन भर घूम कर अन्न वस्त्रादि का संग्रह करके वे उनमें बांटते थे। विश्राम की अपेक्षा नहीं थी उन्हें, अदम्य साहस था उनमें। हृदय की सच्ची स्फूर्ति उनमें नये प्राण डाल देती थी और वे पुन: काम में जुट जाते थे। ऐसे समय माधवी का नारी मन्दिर भी खूब काम आया। काफ़ी स्त्रियों और बच्चों को वहां स्थान मिला। इसके अतिरिक्त मांगे हुए वस्त्रों की मुरम्मत वहां होती। पहनने योग्य होकर वे फिर बांटे जाते थे। निर्धनों के लिये निशुल्क लंगर खोल दिया गया! शहर की कई गण्य मान्य स्त्रियां समय समय पर आकर वहां रोटियां सेंकती थीं। माधवी और साधना में तो कमाल की कार्य शक्ति आ गई थी, वे गांव २ जाकर वस्त्र अन्नादि बांटती और ग्रामीण स्त्रियों को आश्वासन देती थीं।

'बच्चे बीमार होते जा रहे हैं, एक औषधि विभाग भी खोल देना चाहिये।' श्रीकान्त ने माधवी से कहा।

'अवश्य श्रीकान्त जी, परन्तु शासकीय विभाग यह कार्य

अच्छी तरह कर सकता है।'

'आप ठीक कहते हैं, उनका चलता फिरता अस्पताल भी काम कर रहा है फिर भी वह पर्याप्त नहीं है फिर हमारे और उनके कार्य में अन्तर है।'

'क्या ?'

'वे लोग बाह्य दबाव से काम कर रहे हैं हम आन्तरिक प्रेरणा से। इस समय लोगों को हार्दिक सहानुभूति की आवश्यकता अधिक है।'

गन्दे पोखरों का पानी पी पी कर बच्चे रुग्ण होते जा रहे थे। फिर खाद्य सामग्री भी उनके योग्य न थी। बड़े लोग तो रुखी सूखी रोटियों पर प्राण धारण कर सकते थे किन्तु वे कोमल पुष्प खिलने से पूर्व ही संकटों की धूप जिन्हें जला डालना चाहती थी उनका जीवन दूभर हो रहा था। किसी प्रकार चावलों का प्रबन्ध किया गया। कहीं से डबल रोटियाँ और दूध एकत्र करके वितरण किया गया तब कहीं उनके जीवन की आशा बंधी। सच्ची सेवा भावना लिये जिधर यह नवयुवकों की सेना जा निकलती मृत वातावरण में प्राण आ जाते थे।

समस्त दिन कार्य करते करते श्रीकान्त बहुत थक गया था। संगी साथी दूर निकल गये थे। सूर्य प्रतीची के अंक में विश्राम पाने जा रहा था। श्रीकान्त भी घर को लौटा। कीचड़ के गढ़ों से स्वयं को बचाता वह ऊँची पगडन्डी पर चल रहा था। खेत अभी भी पानी में डूबे थे। फसल का नाम शेष भी न दीखता था। निरीह किसानों की आशाएं निराशमय हो सिसक रही थीं। दूर दूर तक अनन्त जलराशि के दर्शन होते थे। श्रीकान्त ने शिव के प्रलयकारी रूप को देखा और मन

ही मन उस नियन्ता को प्रणाम किया जो सुन्दरम् का प्रणयन भीकरता है। बगुलों की एक लम्बी पंक्ति ऊपर से सर्राटा भरती निकल गई। अन्धकार मन्थर गति से बन-प्रान्तर को ग्रसता हुआ बढ़ा आ रहा था। आकाश में कुछ नन्हीं तारिकाएं मचलने लगी थीं। जहां दो पगडन्डियां मिलती थीं वहां साधना कुछ ग्रामीण लोगों के साथ खड़ी थी। सलवार को घुटनों से कुछ ऊँचा करके बांध रखा था उसने।

'आप ?' आश्चर्य से श्रीकान्त ने पूछा।

'जी हां ! माधवी दीदी आज यहीं रहेंगी। एक बच्चे की स्थिति चिन्ता जनक है। उसके माता-पिता नहीं है। बेचारे दोनों छत के नीचे दब गये और यह अभागा बच गया। माधवी दीदी ने मुझे इन लोगों को शहर तक पहुंचाने भेजा था कि आप आ गये।'

'आप नहीं रहेंगी यहां ?'

'जी, मुझे तो ऐसी आज्ञा नहीं है। माधवी दीदी स्वतन्त्र ठहरीं। आगे ही मुझे तो बिलम्ब हो गया सो इसी का भय मुझे लग रहा है। मध्यम श्रेणी के मां बाप इतने स्वतन्त्र विचारों के नहीं होते।'

'ठीक कहती हैं आप।'

इसके पश्चात ग्रामीण लोगों को लौटा दिया गया। एक दो ने चलने के लिये कहा भी परन्तु श्रीकान्त ने आवश्यकता नहीं समझी। 'आप आगे चलिये।' श्रीकान्त ने साधना को कहा। वह आगे २ चलने लगी। दोनों मूक भाव से चल रहे थे। वातावरण सर्वथा नीरव और शान्त था। अन्धकार गहन होता जा रहा था। छप...साधना कीचड़ में गिर गई थी। और कोई चारा न देख कर श्रीकान्त ने हाथ आगे बढ़ा दिया।

'पकड़ लीजिये ।'

साधना ने हाथ पकड़ लिया और एक ही झटके में बाहर निकल आई ।

'एक टार्च नहीं रखते आप ?'

'आज ही इतनी देर हुई, नहीं तो सन्ध्या वेला में ही घर जा पहुंचते थे । मार्ग पुनः मौन रूप में कटने लगा । अन्धकार में दोनों ही न एक दूसरे को देख सकते थे, न भाव समझ सकते थे । फिर भी यह निकटता ..?' मौन भंग करके साधना ने पूछा, 'रेखा की कोई सूचना मिली ?'

'न' यही चिन्ता दिन रात लगी है ।'

'यातायात तो सुना है आज खुल गया है । आप चले जाइये ।'

'कहां ?'

'जालन्धर तक ही हो आइयें ।'

'यदि वे वहां होती तो आ न जाती अब तक ?'

'वे स्त्रियां हैं । सुना है ब्यास के निकट अभी भी सड़क टूटी है और पांच मील पैदल चलना पड़ता है ।'

'चला जाऊंगा, इधर से कुछ निश्चिन्त हो कर ।'

साधना एकाएक सोचने लगी कि श्रीकान्त जिस सहजभाव से माधवी को दीदी पुकार लेता है, वैसे ही मुझे क्यों नहीं कहता । एक झिझक सी क्यों अनुभव करता है ?

इतने में शहर की बत्तियां दीखने लगीं । साधना घर पहुंची तो रात्रि की छाया घनी हो चुकी थी । रामनाथ द्वार पर ही प्रतीक्षा कर रहे थे । वे साधना के लिये चिन्तित थे । देखते ही बोले , 'बहुत विलम्ब हो गया बेटी ।'

'आज काम कुछ अधिक था पिता जी ।'

साधना भीत भाव से भीतर चली गई । सावित्री भरी

पड़ी थी एक दम साधना पर बरस पड़ी। झिड़कियों की आवाज सुन रामनाथ ने श्रीकान्त को विदा दी और भीतर आ गये।

'सावित्री ! किसी आये गये का ध्यान तो रखा करो।'

'तुम रखो ध्यान, बेटी रात-रात तक नौजवान लड़कों के साथ घूमे और मैं मुंह न खोलूं यह नहीं हो सकता। मैं तो सीधे दो टूक बात कहूंगी। कल को व्याह होने वाला है। तुम तो आराम से कार्यालय में बैठ कर कलम घिसोगे। अच्छे बुरे का उत्तर तो मुझे देना होगा।'

'वह कोई बुरा काम नहीं करती सावित्री।'

'बुरा नहीं तो अच्छा क्या है ? वह माधवी जैसी स्वयं आवारा है इसे भी बना देगी। इस वयस् की लड़कियां घर का काम-काज करती हैं, सीती पिरोती हैं। रात-रात तक घूमती नहीं। समाज सेवा, समाज सेवा, गोली मारो ऐसी समाज सेवा को।

साधना अभी तक मूक भाव से सुन रही थी। सोचा था, मां है, थोड़ा सा विष वमन करके शान्त हो जायेगी किन्तु जब सीमा का अनुक्रमण होने लगा तो वह सह न सका। बोली, बस करो मां, रात-रात तक घूमती हूं अपने स्वार्थ के लिये नहीं, उन पीड़ितों के लिये जिन से भगवान ने सब कुछ छीन लिया है। आवश्यकता होगी तो और भी घूमूंगी। वह युग लद गया जब लड़कियां विवश सी घर की चार दिवारी में कैद रखी जा सकती थीं। कर्त्तव्य को समझने लगी हैं वह। यह कर्त्तव्य केवल घर तक सीमित नहीं रह सकता। देश व समाज को जब २ उनकी आवश्यकता होगी वे अवश्य काम करेंगी।

आवेग में साधना भीतर चली गई। कहीं वह और कुछ

न कह बैठे। रामनाथ स्तब्ध से रह गये सावित्री देवी सुन्न। राम नाथ का सारा क्रोध पत्नी पर था। यह पुरातन रूढ़ियों में पली नारियाँ स्वयं ही तो जाति के विकास की राहों के कन्टक बन जाती हैं। इतना भी नहीं समझती कि अब वह समय नहीं रहा जब नारी की मानसिक ग्रन्थियां खुलने से पूर्व ही उत्तरदायित्व के बोझ से इतना दबा दिया जाता था कि मुक्त श्वास लेना भी कठिन हो जाता था।

सावित्री को व्यर्थ ही कभी २ क्रोध आ जाता था। सम्भवत: जीवन की विषम परिस्थितियों ने ही उनके स्वभाव में चिड़चिड़ा पन उत्पन्न कर दिया था परन्तु उनका क्रोध था नदी की बाढ़। चढ़ते उतरते विलम्ब नहीं लगता था। मन सद्भावनाओं से भरपूर था। पति के सुख दुख में उसने पूर्ण सहयोग दिया था। इसी से पति का आदर वह पाती थी। तनिक स्वर को झुका कर बोले, 'लड़की बड़ी हो गई है सावित्री! सोच समझ कर क्रोध किया करो।'

'और पढ़ा लो न, पढ़ लिख कर आज की लड़कियां माता-पिता के मूंह लगना ही तो सीखेंगी।'

झनझनाती सावित्री भी वहां से चली गई। राम नाथ खिन्न से लेटे रहे। परन्तु चैन नहीं आया उन्हें। सरिता को बुला कर पूछा,'तेरी दीदी ने रोटी भी खाई है या नहीं?'

'खा ली है।'

सरिता के उत्तर से उन्हें संतोष मिला।

दूसरे दिन सावित्री का कोप सर्वथा शान्त हो चुका था। तब सच्च ही उसे ग्लानि हुई। उस दिन के पश्चात साधना तीन चार दिन बिल्कुल बाहर न निकली। माधवी को एक पत्र उसने लिख दिया था इस विषय में। पढ़ कर माधवी

एकदम आग बबूला हो उठी। पगली। माँ की बात भी बुरा मानते हैं। वह झटपट जा पहुंची उसके घर। सावित्री आंगन में बैठी सब्जी काट रही थी। माधवी को देख कर खिल उठी, 'तू आ गई बेटी, अपनी साध को तू ही मना ले।'

'सो ही तो आई हूं, कहां है वह ?'

'रसोई में होगी।'

'साधना !' माधवी ने पुकारा।

'भीतर आ जाओ दीदी, हाथ आटे में सने हैं

'आज क्या बनाया है मौसी जी ? आज तो खाना यहीं खाऊंगी।'

सावित्री प्रफुल्लित हो उठी। स्नेहासिक्त स्वर में कहा, 'बहुत अच्छा बेटी। सरो आलू ले जा !' फिर उन्हों ने अपनी मंझली लड़की को पुकारा। माधवी वहीं चारपाई पर डट गई और सावित्री से गप्पें लड़ाने लगी। साधना रसोई में ही बैठी रही।

'साध तू बाहर क्यों नहीं आती ?'

'दीदी रूठी जो हैं।'

यह शब्द साधना ने सुन लिये उस पर कोई रूठने का आरोप लगाये यह असह्य था उसे। झिड़क कर बोली, 'हट चुड़ैल, झूठमूठ जो आता है कह देती है।'

अच्छा झूठ है, तो इतने दिन तू आई क्यों नहीं।'

'घर में काम था माधवी दीदी।'

'मेरे साथ तुम्हारी सखी रूठ गई है माधवी।' सावित्री ने दुखित स्वर में कहा।

'रूठी हो, मां के संग रूठी हो, दुर पगली, मां से भी कोई रूठता है। मुझ से पूछो, जिसने कभी मां का प्यार नहीं पाया।

तो यों करो तुम मेरे घर रहो, मैं यहां रहती हूं ।'

साधना मुस्करा उठी। माधवी बातें बनाने में कितनी चतुर है ।

'क्या कहती हो दीदी ?'

'सच्च, मुझे डांट खाने की बड़ी चाह है ।'

कहते–कहते माधवी सचमुच सावित्री के अंक में बच्चों के समान लेट गई। उसके नेत्रों में तरल जल-बिन्दु लहरा रहे थे। सावित्री ने दुखित हो पूछा, 'माधवी जब तुम्हारी मां मरी तुम कितने वर्ष की थी ?'

'चार वर्ष की रही होऊंगी ।'

'तब तो कोई विशेष स्मृति न होगी ?'

'न, केवल यही स्मरण है कि गोरी-गोरी स्थूल शरीर की थीं ।'

'तेरे पिता जी ने पुनर्विवाह नहीं करवाया ?'

यही तो आश्चर्य है मौसी जी, जिन लोगों के चार चार बच्चे होते हैं वे भी ब्याह करवा लेते हैं। पिता जी ने यह बलिदान कैसे किया ? जब कि उन्हें पुत्र का भी अभाव था।

सावित्री ने इस चर्चा को यहीं बन्द कर दिया। उसे रसोई में जाने की शीघ्रता थी क्योंकि माधवी ने भोजन वहीं करने को कहा था। मां के जाने के पश्चात साधना ने सब बातें माधवी से कहीं। उसे इस बात का आक्रोश था कि माँ उसके चरित्र पर ही विश्वास नहीं करती। माना कि यौवन कभी सीमा का अतिक्रमण कर सकता है किन्तु मां क्या अपनी बेटी को नहीं पहचानती। साधना माधवी काफी देर तक बातों में व्यस्त रहीं। तभी सरिता ने आकर कहा कि भोजन तैयार है। भोजन अत्यन्त सादा था पर माधवी को उस में मां के हाथों

की गन्ध आ रही थी। उसे बड़ा आनन्द आया किन्तु वह आधा ही खा सकी क्योंकि आधा उसे अपने पिता जी के साथ खाना था।

हाथ मूंह धो कर माधवी उठ पड़ी। उठते-उठते उस ने साधना सेपूछा, 'तो कल आओगी न ?'

'नहीं दीदी।

सावित्री देवी भीतर जा रही थी रुक गई। 'इस का क्रोध अभी नहीं उतरा। अच्छा माधवी बेटी, यह उस दिन श्रीकान्त के साथ रात को देर से आई। माना कि वह अच्छा लड़का है किन्तु समाज यदि बातें करे तो.........?'

'यही तो दुर्बलता है मौसी जी। समाज का भय हमें व्यर्थ की चिन्ताओं में फंसा देता है। हम मिथ्या कल्पनाओं से ग्रस्त हो कर भविष्य की राहें रुद्ध कर लेते हैं। यह एक हऊआ है जो कुछ भी अस्तित्व नहीं रखता फिर भी हमारे मन-मस्तिष्क को आच्छादित कर लेता है।'

'फिर भी बेटी हमें समाज से मिल जुल कर ही रहना है।'

'रहना तो बुरा नहीं पर इतना त्रस्त होना भी ठीक नहीं मौसी जी।'

'तुम नहीं समझती मेरी बच्ची, हम साधारण लोगों को फूंक फूंक कर क़दम रखना पड़ता है। बड़े बड़े लोग वही काम करें तो कोई कुछ नहीं कहता, छोटे वही करें तो चर्चा का विषय बन जाते हैं। वह बैरिस्टर मंगलसेन हैं न, उनके पुत्र ने विलायत में मेम से विवाह कर लिया तो कोई कुछ नहीं बोला किन्तु मास्टर शंकरलाल के बेटे ने बनियों के यहां विवाह कर लिया तो उस की बिरादरी में बवंडर सा उठ खड़ा हुआ।'

'ऐसा ही तो होता है दुर्बल को सभी दबाते हैं। अच्छा साधना यह पुरानी राम कहानी छोड़ो। कहो कल आओगी।'

माधवी ने तब तक पीछा नहीं छोड़ा जब तक हां नहीं कहलवा ली। बातों ही बातों में पता चला कि साधना का विवाह कार्तिक में होगा। जुलाई चल रहा था। सावित्री ने विशेष आग्रह करके माधवी से कहा कि ब्याह का सब काम-काज उसे सम्भालना होगा क्योंकि सरिता और नीला अभी दोनों बच्चियां थीं। ब्याह की सुन कर साधना कीड़ा अनुभव कर रही थी। रक्ताभा देता उस का सुन्दर मुख और भी सुन्दर लग रहा था विषय बदलने के लिये साधना ने कहा, चलो सरित दीदी को छोड़ आएं।' घूमने फिरने के लिये सरिता सदैव प्रस्तुत रहती थी। एकदम चप्पल पहिन कर तैयार होगई।

'परितोष को बुला लो।' साधना ने सरिता से कहा।

परितोष अभी किशोरावस्था में था। पर माधवी जानती थी कि साधारणतया हिन्दू परिवारों में ऐसा विचार चला आता है कि लड़कियों को अकेले बाहर नहीं जाना चाहिये। पुरुष जाति का व्यक्ति चाहे वयस् में छोटा हो फिर भी पौरुष का प्रतीक माना जाता है। हंस कर उस ने कहा, 'अरे हम तीन होकर भी असहाय और वह एक हो कर भी सबल। चलो मैं ही पर्याप्त हूं।'

चलते-चलते सावित्री देवी ने फिर टोक दिका, 'बेटी इन्हें अकेली मत भेजना।'

'पर यह तो दो हैं मौसी जी।'

'न, मेरी अच्छी बेटी, ज़माना बड़ा ख़राब है।'

८

श्रीकान्त जालन्धर जाने के लिये सामान बांध रहा था कि द्वार पर रिक्शा के खड़े होने का आभास हुआ। कौन हो सकता है अभी श्रीकान्त सोच ही रहा था कि द्वार पर दस्तक हुई साथ ही किसी ने पुकारा, कान्त!

अरे यह तो सुरेन्द्र है। उसने द्रुत गति से जा कर द्वार खोल दिया। सुरेन्द्र अकेला नहीं था साथ में उस की पत्नी कोकिला भी थी। वे दोनों काश्मीर से आ रहे थे। यों तो सुरेन्द्र सीधा भी अम्बाला जा सकता था परन्तु श्रीकान्त को मिलना आवश्यक था। जब से विवाह हुआ था सुरेन्द्र श्रीकान्त मिल ही न सके थे। दोनों मित्र मन खोल कर मिले। कोकिला का स्वागत करते हुए श्रीकान्त उन्हें भीतर ले गया। घर की अवस्था देख सुरेन्द्र आश्चर्य से बोला, 'अरे घर तो तुम ने एकदम कबूतरखाना बना रखा है।'

'क्या करूं, आज कल रेखा और मां तो यहां हैं नहीं और मैं समस्त दिन बाहर रहता हूं।'

'देखा कोकिला, मैं कहता था न कि मेरा यह दोस्त बिल्कुल सन्यासी है।'

'भाबी आप इस की बातों में मत आइयेगा आप मुंह हाथ धोकर स्वस्थ हो जाइये। मैं अभी चाय का प्रबन्ध करता हूं।'

कोकिला हंस पड़ी। उसकी हंसी बड़ी मधुर थी। उसे ज्ञात था कि श्रीकान्त और सुरेन्द्र की मैत्री पर्याप्त हार्दिकता

लिये है। श्रीकान्त ने बिजली का हीटर लगा कर चाय का पानी चढ़ा दिया तथा स्वयं मिठाई लेने चला गया।

मिठाई लेकर लौटा तो सुरेन्द्र और कोकिला तैयार होकर बैठे थे। तीनों ने मिल कर चाय बनाई। वातावरण में सर्वत्र आत्मीयता थी। कोकिला कम ही बोलती थी। दोनों मित्रों की नोंक झोंक चलती रही।

'आप ब्याह क्यों नहीं करते भाई साहब?' सहसा कोकिला पूछ बैठी।

'श्रीकान्त, मेरे दोस्त, मेरी बात मानो तो ब्याह कभी न करना।'

'देखा भाबी आपने।' श्रीकान्त ने कोकिला को कहा

'अरे रहने दीजिये भाई साहब, इनकी भली कही, जनाब को खुद तो ब्याह के बिना नींद नहीं आती थी और दूसरों को सिखाने चले हैं।' मैं कहां करता था ब्याह, वह तो तुम्हारे पिता जी ने मिन्नत खुशामद की तो मुझे मानना ही पड़ा।'

'जी, ऐसे ही दयालु तो आप थे।'

'सच कान्त, यह नारियां एकदम नाक पकड़ कर नचाती हैं। अब देखो काश्मीर के भ्रमण में मेरी जमा-पूंजी सब लुट गई। काश्मीर देखेंगे—काश्मीर देखेंगे... एकदम नाक में दम कर रखा था इन्होंने।

उन दोनों की सरस बातों से सचमुच श्रीकान्त चाहने लगा कि उसका ब्याह हो जाये ... उसके जीवन में भी ऐसे ही सरस क्षण हों — वह कुछ सोचने लगा। उसकी चाय पड़ी पड़ी ठण्डी होने लगी।

'क्या सचमुच ही स्वपन देखने लगे हो कान्त?'

'नहीं।'

श्रीकान्त चौकन्ना होकर चाय पीने लगा। श्रीकान्त ने उन्हें बताया कि वह मां और रेखा की खोज में जालन्धर जा रहा था। पन्द्रह मिनट भी वे न पहुंचते तो वह घर से निकल जाता। अब वह उन केलिये दो दिन ठहरे गा। सुरेन्द्र बोला, 'दो दिन की आवश्यकता नहीं भई, एक ही दिन पर्याप्त होगा। मेरी अपनी छुट्टी परसों समाप्त हो गई है।'

इस एक दिन में श्रीकान्त ने कोकिला को सारा अमृतसर घुमा फिरा कर दिखा डाला!

'तुम्हारा शहर अच्छा रौनक दार है भय्या।' कोकिला ने कहा।

'विभाजन न होता तो और भी रौनक होती भाबी।' सीमांत पर स्थत होने से यहां का व्यपार कुछ धीमा पड़ गया है।

कार्यक्रम बना कि तीनों ही बाम्बे एक्सप्रेस से चलेंगे। कान्त जालन्धर उतर जायेगा और सुरेन्द्र पत्नी सहित आगे चला जायेगा।

रात को दोनों मित्र बारह २ बजे तक बातें करते रहते। कुछ उस अतीत की जो लौट के आने वाला न था, कुछ आगत भविष्य की। कालेज के वे सुनहरे दिन उन दोनों की स्मृति को आड़ोलित कर देते थे जब वे संसार की दुश्चिन्ताओं से दूर थे। जब जीवन केवल निर्द्वन्दता की सीमाएं जानता था।

सुरेन्द्र जैसे ही सो कर उठा कि देखा श्रीकान्त नहीं आया है। वह उसके इस स्वभाव को भली प्रकार जानता था। कालेज के दिनों में ही उसकी इस विषय पर श्रीकान्त के साथ तकरार हो जाया करती थी। वह तनिक आधुनिक सभ्यता का भक्त था बिना नहाये चाय इत्यादि लेने में उसे कभी आपत्ति

नहीं हुई। परन्तु श्रीकान्त पर मां के संस्कारों का प्रभाव था। और इन दिनों तो वह और भी बढ़ चुका था। ईश्वर के प्रति उसकी आस्था निरन्तर बढ़ती जा रही थी। साकार के विषय में चाहे उसका विशेष आग्रह न था फिर भी कुछ क्षण चिन्तन करना उसे अच्छा लगता था। सुरेन्द्र शौचादि से निवृत्त होकर आया तो श्रीकान्त ध्यान मग्न था। वह बैठकर हजामत बनाने लगा। कोकिला स्नाना गार में थी।

चिन्तन के पश्चात श्रीकान्त मुस्कराता हुआ उठा। हजामत बनाते २ सुरेन्द्र बोला, ज्ञात होता है, तुम निरे पोंगा पण्डित होते जा रहे हो। अरे भई कुछ पुन्य-धर्म हमारे लिये भी रहने दो।'

उसकी बात का उत्तर दिये बिना ही श्रीकान्त ने कहा, 'भाबी के पश्चात् तुम भी शीघ्रता से नहा लो सुरेन। मैं तब तक हीटर पर चाय चढ़ा दूं।'

'आपने राम तो बिना नहाये पियेंगे कान्त। तुम नहाने की चिन्ता करो।'

इतने में कोकिला आ गई। मृदु मुस्कान बिखराते हुए वह बोली, 'आप दोनों मित्र कैसे हो गये, यही आश्चार्य है।'

'क्यों ?'

'स्वभाव और कर्म में तो आकाश-पाताल का अन्तर है।'

'भाबो! मैत्री के लिए स्वभाव-कर्म के सामंजस्य की अपेक्षा नहीं होती। हृदय की कोमल अनुभूति ही यह ग्रन्थि जोड़ देती है।'

'तुम कहीं हमारी मैत्री को नजर न लगा देना कोकिला। विपरीत कर्म-स्वभाव में आकर्षण तो प्रकृति का नियम है। हमारी मैत्री में क्या अनोखापन है।'

चाय तैयार थी। उसका दायित्व कोकिला ने ले लिया था। श्रीकान्त कहता ही रहा कि वे लोग अतिथि हैं। आतिथेय का गौरव उसे ही मिलना चाहिये परन्तु नारी का अधिकार .....? कोकिला इसे छोड़ने को प्रस्तुत न थी। कोकिला चाय डालने लगी। लम्बी पतली उंगलियां कलाकार की सुन्दर सृष्टि सी खूब अच्छी लग रही थीं। ऊपर ध्यान गया श्रीकान्त का, लम्बी पलकें नयनों पर झुकी हुई थीं। कोकिला उसे सुन्दर लगी, फिर उसके ध्यान में माधवी और साधना के चित्र भी घूम गये। माधवी एक ठोस पाषाण निर्मित प्रतिमा सी केवल अपने गुरु गम्भीर व्यक्तित्व से अभिभूत करती है। साधना का सौंदर्य सरल और निरीह है, उस में आकर्षण है। और यह कोकिला सौभाग्य के भार से लदी हुई ... सुरेन्द्र भाग्य शाली है। सचमुच ऐसी गुणज्ञ एवं सुन्दर पत्नी पाना ......?

चाय लीजिये श्रीकान्त भाई।'

वह सतर्क हो बैठा। चाय पीते-पीते दोपहर की गाड़ी से चलने का कार्यक्रम बन गया।

सुरेन्द्र और कोकिला के टिकट इन्टर के थे परन्तु श्रीकान्त ने तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा। सुरेन्द्र ने बहुत कहा भी कि वह भी उनके साथ ही बैठे। यात्रा अच्छी कट जायेगी। तो भी श्रीकान्त नहीं माना। उसकी उक्ति थी भी ठीक। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात और किसी वस्तु में सुधार चाहे न हुआ पर गाड़ियों की रूपरेखा ही बदल गयी थी। विशेष कर नये डिब्बे जो बन कर आ रहे थे उन में यात्रियों की सुख सुविधा का पर्याप्त ध्यान रखा गया था। बैठने की सीटें भी अच्छी थीं पंखे भी थे। फिर श्रीकान्त भावुक कलाकार था।

वह जानबूझ कर ही तीसरे दर्जे में यात्रा करता था। अपने देश की सत्य-झलक वह यहां देखता था।

गाड़ी कई दिनों के पश्चात सीधी जालन्धर जायेगी सो भीड़ काफ़ी थी। कोकिला को ठीक से बैठा कर सुरेन्द्र श्रीकांत को बिठाने चला। चलते समय कोकिला ने कहा, 'आप थर्ड में कैसे सफ़र करते हैं भाईसाहब ?

'मुझे तो वहां सफ़र करने में बड़ा आनन्द आता है भाबी। बड़े दर्जों में देश की वह झलक कहां जो वहां मिलती है!'

वहां से विदा होकर श्रीकान्त चला। तीसरे दर्जे के डिब्बे काफ़ी खचाखच भरे थे। किसो प्रकार यत्न करके श्रीकान्त ने अपना सूटकेस टिका दिया। एक साहब खूब टांगें फैलाये बैठे थे। बाहर से ही सुरेन्द्र ने कहा, 'ऐ श्रीमान, तनिक टांगें समेट लीजिये न। औरों को भी बैठने दीजिये।'

'देखते नहीं हम पठान कोट से आ रहे हैं और देहली जायेंगे।'

'अरे रहने भी दो सुरेन, तुम जाओ, मैं कहीं न कहीं स्थान बना लूंगा।'

'यहां आ जाइये भाईसाहब।' एक सज्जन व्यक्ति ने अपने पांच वर्षीय बच्चे को गोद में उठा लिया। श्रीकान्त ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, 'आप क्यों कष्ट करते हैं जा ?'

'नहीं नहीं बठिये। रेल में ऐसा होता ही है। यह किसी की व्यक्तिगत बपौती तो नहीं। संसार में मिल जुल कर ही निर्वाह होता है।'

श्रीकान्त मध्य में घुसड़ गया। सुरेनु चला गया। कोने में बैठे एक सज्जन सिगरेट फूंक रहे थे, उन्हों ने उपेक्षा से श्रीकांत की ओर देखा।

गाड़ी चली। चलती गाड़ी में एक विशाल काय व्यक्ति घुस आया। पूरा छः फुट लम्बा जवान था, मूछें बड़ी-बड़ी और लाल नेत्र। जो व्यक्ति टांगें फैलाये बैठा था उसको गरज कर आगन्तुक ने कहा,

'ऐ साहब, ज़रा सीधे हो बैठिये।'

'क्यों ?'

'क्यों, गाड़ी आपके बाप की है क्या ?' मूछों वाला कर्कशता से बोला।

'ज़ुबान सम्भाल कर बोलो न।'

'टांगें समेट कर बैठो न।'

विवश हो कर उसे स्थान देना ही पड़ा। श्रीकान्त के साथ वाला व्यक्ति बोला, 'ज़माना लाठी का है बाबू जी।'

'आप का कथन सत्य है।'

श्रीकान्त नई अखबार देखने लगा। एक धक्के से गाड़ी खड़ी हो गई। स्टेशन आ गया था। दरवाज़ा खुला और मैले कुचैले वस्त्र पहने एक ग्रामीण व्यक्ति चढ़ आया। लाठी कन्धे पर रखे, गठड़ी उस पर लटका रखी थी उसने। ज्योंही थोड़ी सी जगह पर वह बैठने लगा, एक पण्डित जी बोल उठे, 'अरे, क्या अन्धा है ? देखता नहीं खाने को वस्तुएं रखी हैं।'

निकट बैठे पुरुष ने कहा, 'पण्डित जी, इसे नीचे रख दीजिये न।'

'आप भी गजब करते हैं, खानें की सामग्री पैरों में रख दें ?'

'किन्तु सीट तो बैठने के लिये बनी है, सामान रखने के लिये नहीं।'

'आप मेरे लिये नाहक लड़ रहे हैं बाबू जी। मैं नीचे बैठ जाऊंगा।' निरीहता से ग्रामीण व्यक्ति ने कहा। श्रीकान्त को

क्रोध हो आया। यह अच्छी धांधली है कि पण्डित जी की टोकरी सीट पर विराजे और इन्सान नीचे। उठता हुआ बोला, 'आप मेरे स्थान पर आ जाइये, मैं वहां बैठूंगा।'

वह व्यक्ति न, न, करता रहा, श्रीकान्त ने उठ कर बलात् उसे अपने स्थान पर बैठा दिया। पण्डित जी ने लज्जित होकर टोकरी उठाई और घुटनों पर रख ली और श्रीकान्त से बोले,

'आप बैठ जाइये बाबू जी।'

'जी नहीं, आप टोकरी रखे रहिये। जालन्धर तक ही तो जाऊँगा।'

श्रीकान्त जंजीर को पकड़े खड़ा रहा। गाड़ी पूर्ण वेग से चली जा रही थी।

"ऐ लो साहब गोलियां सन्तरे की, मालटे की, अंगूर और केले की, चार पैसे में बच्चे खुश करो। ज़ायकेदार, हाज़मे दार, आने की चार, पैसे की एक।"

एकाएक जैसे विस्फोट होता है वैसे ही आने वाले का स्वर गूंज उठा। गोलियों वाला कठिनाई से बाइस-तेईस वर्ष का होगा। तो भी मुख पर रौनक नहीं। रंग काला, नसें उभरी हुई और हड्डियां निकली हुई। पर्याप्त समय तक कोई उठा नहीं। बेचारे का सारा उत्साह ठन्डा पड़ गया। उसने फिर अपने शब्द दोहराये—खट्टी मिट्ठी गोलियां, ज़ायकेदार, आने की चार, पैसे की एक, न खाने वाले पछतायेंगे।

अबकि बार एक बूढ़ा उठा, 'एक आने की दे दे भाई' गोली वाले ने चार गोलियां गिन कर दे दीं और आना थाम लिया। फिर ऐसी दृष्टि से वृद्ध को देखा जो शत्-शत् आशीर-कण बरसा रही थी। इसके पश्चात् वह चलती गाड़ी में ही द्वार खोल कर चला गया। अभी वह गया ही था कि एक अन्धा

भिखारी आ गया। किस साहस से वे लोग चलती गाड़ी में इधर उधर जा पाते हैं सभी को आश्चर्य हो रहा था। न जान का डर न शरीर की अपेक्षा। अन्धे की आँखें बुरी प्रकार से नष्ट हो चुकी थीं। शरीर व मुख पर चेचक के बड़े बड़े गहरे दाग थे। श्रीकान्त ने दुअन्नी निकाल कर उसके हाथ पर रख दी। धीरे-धीरे सभो ने कुछ दिया। दान देने के लिए भारतीय प्रकृति बड़ी शीघ्र उमड़ती है, उस समय पात्र-अपात्र का पश्न नहीं रहता। इसका रहस्य तब खुला जब कि टिकट निरीक्षक उसो समय आ गया। आने ही उसने अन्धे के दो थप्पड़ जड़ दिये। सभो हा! हा करते रह गये। तीसरा थप्पड़ उठते ही श्रीकान्त सामने आ गया।

'और नहीं मार सकेंगे आप उसे। वह बेबस है, असहाय है, क्या इसी लिये उसे मार डालेंगे।'

रोष पूर्ण नेत्रों से टिकट-निरीक्षक ने देखा, फिर गुस्सा पीते हुए बोला,

'आप बीच में हस्ताक्षेप करने वाले कौन होते हैं?

'मैं मानव हूं। जो भाग्य द्वारा पहले हो पीड़ित है उसे और सताने से क्या बनेगा?

'ठीक कहा आपने पीड़ित वह अवश्य है, परन्तु चोर है। परसों ही तो यह बटुआ चुराते पकड़ा गया था। क्यों वे अन्धे?'

'क्या बाबू साहब ठीक कहते हैं?' श्रीकान्त ने अन्धे से प्रश्न किया। इस प्रश्न पर अन्धा सिसक २ कर रो उठा—'पर ठीक कहते हैं बाबू जी, मैं तीन दिन से भूखा था। उस दिन मेरे सारे पैसे किसी आंख वाले ने छीन लिये थे। दूसरे दिन मुझे ज्वर हो आया। बेसुध पड़ा रहा। अन्न का दाना तक

मूंह में नहीं गया। चौथे दिन उठा तो शरीर लड़खड़ा रहा था। गाड़ी में आया। सहसा एक स्थान पर हाथ पड़ गया, एक बटुआ गिरा पड़ा था। मैंने उठा लिया। किस का था मैं नहीं जानता था, परन्तु पकड़ लिया गया। लांछन मिला सो अलग और मार खाई सो अलग। मैं चोर ही हूं, पकड़ कर कारा में डाल दें तो अच्छा है। रूखी सूखी सही, रोटी तो मिलेगी। पेट की ज्वाला दर् दर् तो न भटकायेगी।'

अन्धा भिखारी इस कथन के पश्चात चुप हो गया। गाड़ी में बैठे सभी लोग उसकी करुण-कहानी सुन प्रवित हो उठे थे। टिकट निरीक्षक समय देख कर खिसक गया था।

'क्या नाम है तेरा ?' स्नेह-सिक्त स्वर से श्रीकान्त ने पूछा।

'पारस।'

'पारस, तू मेरे साथ चलेगा ?'

'इस अन्धे को लेजा कर क्या करियेगा बाबू जी।' एक नें टोक दिया।

श्रीकान्त उत्तर में मूक ही बना रहा। थोड़े समय के पश्चात फिर पूछा,

'चलेगा ? बोल ?'

'चाहे जहाँ ले चलिये साहब, पेट की चिन्ता न रहे।'

लोगों ने सोचा श्रीकान्त निरा मूर्ख है। व्यर्थ ही बोझा लाद रहा है।

जालन्धर आ गया था। कुली द्वारा सामान उतरवा कर श्रीकान्त बाहर आ गया। जी. टी. रोड पर उसके दूर के मामा रहते थे, वह उन्हीं के यहां पहुंचा। जिस आशा को लेकर वह आया था वह आते ही पूर्ण हो गई। रेखा तथा मां

वहीं थीं। नतमस्तक हो कर उसने भगवान का धन्यवाद किया।

'तुझे बड़ा कष्ट हुआ कान्त।' सरला देवी ने कहा।

'नहीं मां किन्तु चिन्ता बहुत अधिक थी। न खबर, न सूचना, न तार, न पत्र। रेखा कैसी रही तू ?'

'अच्छी तो हूं आप दुबले हो गये हैं। पानी वहां भी खूब आया होगा।'

'खूब, माधवी, साधना सभी कार्य व्यस्त हैं, मैं ही भाग आया।'

'क्यों ?'

'तुम्हें ढूंढने। शुक्र है तुम लोग यहीं मिल गईं। नहीं तो देहली पहुंचना पड़ता।'

'हम तो चार को वहां से चल पड़े थे। पहले दिन गाड़ी ने अम्बाला उतारा, दूसरे दिन लुधियाना और तीसरे दिन जालन्धर। कल सुना कि यातायात खुल गया है तो मां ने जाने के विषय में कहा पर मामा जी माने ही नहीं।'

श्रीकान्त के मामा उस से मिल कर खूब खुश हुये। वे जालन्धर के अच्छे व्यापारी थे। विभाजन से पूर्व लायलपुर में उनकी आढ़त की सब से बड़ी दुकान थी। बाद में यहां आगये और जालन्धर में स्थाई रूप से बस गये। अमृतसर में यद्यपि रहने की उन्हें पर्याप्त सुविधाएं थीं किन्तु एक तो वह सीमान्त पर स्थित था दूसरे अब उसकी वह महत्ता भी न रही थी अतः उन्होंने जालन्धर को ही चुना। यहाँ उन्होंने आढ़त की दुकान छोड़ दी और कपड़े का व्यापार करने लगे। दुकान सुस्थान पर मिल गई और दो वर्षों की अवधि में ही वे पुनः लक्ष्मी के कृपा पात्र बन गये। मामा जी के दो पुत्र थे, बड़ा तो कारोबार में

ही लगा रहा किन्तु छोटा पढ़ लिख रेलवे में इन्जीनीयर हो गया था। उसकी पत्नी शोभा भी एम. ए. बी. टी. थी। वह भी जालन्धर के एक स्थानीय विद्यालय की मुख्याध्यापिका थी। छः मास पहले पति की बदली मद्रास हो गई थी किन्तु वह अभी वहीं थी। आधुनिक युग के अनुसार वह सामाजिक मनोवृत्ति की थी। न जाने कितनी सभा सोसायटियों की वह सदस्य थी। रेडक्रास पार्टी की वह सेक्रेटरी थी।

रात्रि भोज के समय समाज सेवा पर तर्क वितर्क चलने लगे। कार्य आधिक्य के कारण वह समस्त दिन घर से अनुपस्थित रही थी। प्रशंसात्मक भाव से श्रीकान्त ने कहा, 'आप खूब काम कर रही हैं भाबी!'

'काम तो कुछ न पूछिये श्रीकान्त भाई, मैं कहती हूं इस संकट के समय नारियों ने जितना काम किया है पुरुष क्या करेंगे। घर घर जा कर अन्न और वस्त्रों का संग्रह हमारा ही काम था।'

'मैं स्वयं नारी का धैर्य और साहस देख दंग रह गया हूं। कौन कहता है नारी कोमलांगी है?'

श्रीमती शोभा इस प्रशंसा से फूल उठी। कहा, 'इस बाढ़ के लिये हम ने दो सौ वस्त्र एकत्र कर रखे हैं और पचास मन अनाज।'

'एकत्र कर रखे हैं, क्या तात्पर्य?' आश्चर्य से श्रीकान्त ने पूछा।

तात्पर्य यह कि अभी वितरण कार्य आरम्भ नहीं हुआ। हमारी सोसायटी ने यह निश्चय किया है कि इस का शुभारम्भ गवर्नर की श्रीमती के हाथ से करवाया जाये परन्तु अभी उन्हें अम्बाला और लुधियाना से ही अवकाश नहीं मिला। यों उन

का पत्र आ गया है कि इस शनिवार को आ सकेंगी ।'

किन्तु भाबी, आवश्कता तो लोगों को अब है !'

'इससे हमें क्या ? कमिश्नर की पत्नी हमारी प्रधान है । उनकी आज्ञा बिना तो कुछ हो नहीं सकता ।'

'आपकी स्वतन्त्र सम्मति...... ? रोगी मर जायेगा तो दवा क्या करेगी ?

'न करे ।'

श्रीकान्त विस्मित रह गया । अभी वह नारी वर्ग की प्रशंसा कर रहा था। इस में संदेह भी नहीं कि उस की सहयोगिनी नारियों ने जो किया वह वास्तव में सराहनीय था। पर एक रहस्य भी आज उसके सम्मुख उद्घाटित हुआ, वह यह कि अधिक शिक्षित नारी वर्ग नाम का भूखा था काम का नहीं । वे केवल प्रदर्शन की दृष्टी से काम करना चाहती हैं। गवर्नर की पत्नी के हाथों जो कार्य आरम्भ होगा उस में वाह-वा ही मिले गी। समाचार पत्रों में बड़े-बड़े चित्र निकल जाएंगे। और चाहिये भी क्या ? ऐसी मनोवृत्ति देख कर श्रीकान्त दुखी हो गया। उसकी निश्चित धारणा को कुछ ठेस पहुंची। आड़े समय भी यदि मानव, मानव की सहायता इस उद्देश्य से करे कि नाम हो जाए तो उस मानवत्व को धिक्कार है ।

अगले दिन श्रीकान्त मां व रेखा को ले कर अमृतसर लौट आया। पारस को स्टेशन पर उसने पुनः खोज लिया था। वह भी उस के परिवार का सदस्य बन गया ।

६

श्रीकान्त नहा कर आया तो रेखा धोती का पल्ला कमर में ठोसे सफ़ाई कर रही थी। उसने घूम कर भाई की ओर देखा और कहा, 'भय्या साधना के लिये दिल्ली से जो उपहार लाई हूं तनिक पहुंचा दो उसे।

'क्यों और कोई इस काम के लिये नहीं है क्या ?'

'अच्छे भय्या।'

'चल खुशामदी। मुझे आज बहुत कार्य है।'

रेखा ने अनुनय से कहा, 'भय्या चली तो मैं ही जाती पर घर को तुमने एकदम कबूतरखाना बना रखा है। तिस पर भी पुरुष कहते हैं नारी के बिना हमारा निर्वाह हो सकता है।'

'मैं तो सुबह सात बजे निकल रात्रि को नौ बजे लौटता था बहिन।'

तभी तो कहती हूं भाबी ला दो। घर में कोई आकर्षण तो रहे। परन्तु मां भी कान में तेल डाले बैठो है।'

'हट शैतान।'

रेखा खिलखिला पड़ी, उसका स्वर वातावरण को मुखरित कर गया। शीशे का फ़ूलदान गिरते-गिरते बचा। शोर गुल सुन कर सरला तेवी भी आ गईं थीं।

'क्या शोर मचा रखा है तुम दोनों ने ?'

'मां यह रेखा मुझे तंग कर रही है।'

'नहीं मां, भय्या से कह रही थी मैं कि दिल्ली में इस के

लिये हम लड़की पसंद कर आये हैं।'

'कब री ?'

'मां ! अब अधिक मत छुपाओ। देखो नहीं वह मोटी-मोटी गोरी-गोरी।'

अबकि श्रीकान्त उसे मारने को झपटा। मां मुस्कराती हुई भीतर चली गई। रेखा शीघ्रता से भीतर जा कर वस्तुएं ले आई। श्रीकान्त तब तक तैयार हो चुका था। हाथ में वस्तुएं देते हुये रेखा ने कहा, 'भय्या मेरी सौगन्ध।'

श्रीकान्त इस स्नेहसिंचित अनुरोध के प्रत्योत्तर में न कैसे करे। वह पराभूत हो गया। वह सोचने लगा......मधुर बातों में पुरुष नारी से कभी जीत न सकेगा फिर जब बहिन का निश्छल प्यार भी उस में सहयोग देने लगा हो।

× × × ×

साधना आज बड़े दिनों के पश्चात कविता की कापी लेकर बैठी थी। विचार उमड़ रहे थे पर भाषा में बन्ध नहीं पा रहे थे। पहली पंक्ति लिखी :—

हे प्राण ! तुम्हारा आकर्षण, भरता जीवन में नवस्पन्दन।
आगे क्या लिखे ? कुछ सूझता नहीं था। काट दिया उस पंक्ति को। पुनः पेंसिल को उठाया—

संवेगों की मृदु क्रीड़ा में, है व्यस्त मेरा कोमल मानस।
किन्तु आगे फिर ? लग गया। जाने क्या हो गया था आज ? ऐसी स्थिति तो कभी आई नहीं। क्षुब्ध-भाव से उस पर भी लकीर फेर दी।

'दीदी।' सरिता पुकार रही थी। पलकें उठा कर देखा साधना ने, श्रीकान्त भी सरिता के साथ है ?

क्या काव्य साधना हो रही है ?

'जी, कुछ नहीं, लिख ही नहीं पाई ।' साधना संकुचित हो गई। कापी दरी के नीचे छुपा दी ।

'यह लीजिये, रेखा ने भेजा है ।'

'रेखा आ गई ?' साधना प्रसन्नता से उछल पड़ी । वस्तुएँ थामते हुए साधना ने कहा 'रेखा ने आप को कष्ट दिया ।'

'यदि यह साधारण वस्तुएँ उठाने में कष्ट हो तो सुख की परिभाषा नई ही बनानी पड़ेगी ।'

कितना मधुर बोलता है श्रीकान्त। साधना ने कृतज्ञता से पलकें उठाई, श्रीकान्त दूसरी ओर देखने लगा। तभी बाब राम नाथ आ गये ।

'आज आप विद्यालय नहीं गये बाबू जी ?' नमस्कार के पश्चात श्रीकान्त ने पूछा ।

'कल से तबीयत कुछ ठीक नहीं, अतः तीन दिन से अवकाश पर हूं । आओ बैठक में बैठो ।'

श्रीकान्त उनके साथ चला गया। राम नाथ कुछ बातें करने लगे। इधर उधर की । बातों ही बातों में अपने विद्यालय का रोना ले बैठे। उन्हें इस बात का क्षोभ था कि जो लोग उनके पीछे आये वे तो उन्नति पर उन्नति किये जा रहे हैं परन्तु उन्हें कोई नहीं पूछता । क्योंकि उन्हें अपने से ऊंचों की लल्लो-चप्पो करनी नहीं आती और आज का युग ही चापलूसी का है। कुत्तों की भाँति दुम हिलाते फिरो तो पुचकार देंगे। स्वाभिमानी लोगों के जीवन को ही धिक्कार है। वे पुराने अनुभवी व्यक्ति थे, चाहते थे उनके अनुभव की ही प्रतिष्टा हो। अलमस्त थे, न तीन में न तेरह में, पर आजकल यही पर्याप्त नहीं समझा जाता। जो जितना सुन्दर

शब्द-जाल रच सकता है वही अफ़सरों की दृष्टि में चढ़ जाता है। सुन कर श्रीकान्त ने कहा, 'क्या करें, आजकल ऐसी ही धांधली प्रत्येक स्थान पर चलती है। दोष भी किस २ को दिया जाये जब कि सम्पूर्ण मशीनरी ही बिगड़ी है। छोटे से लेकर बड़े तक इसी चक्र में फंसे हैं। आप जैसे ईमानदार मनुष्य तो आटे में नमक के बराबर ही मिलेंगे बाबू जी।'

'यह सब करते हुए अपने राम का तो मन कांपता है श्रीकान्त, यह लोग जाने किस बूते पर हज़ारों क्या लाखों पर डकार मार जाते हैं।'

'तुम चाय तो पियोगे श्रीकान्त ?'

'जी नहीं, पीकर आया हूं। अब तो आज्ञा दीजिये।'

श्रीकान्त जैसे ही जाने के लिये उठा कि भीतर से सावित्री का तीक्ष्ण स्वर सुनाई पड़ा, 'यह श्रीकान्त आज फिर आ गया।'

'मां ! रेखा ने कुछ वस्तुएँ भेजी हैं। धीरे बोलो, वे सुन लेंगे।'

'सुन ले; एक बार नहीं हज़ार बार, मुझे यह लक्षण कतई पसन्द नहीं।'

श्रीकान्त लज्जित सा चल पड़ा। मन ने कहा—फिर कभी इस राह न आना कान्त। इधर की जगती बहुत संकीर्ण है। फिर साधना की ओर ध्यान गया। कितनी विवश है बेचारी। लिखने का शौक है किन्तु ऐसे घुटन मय वातावरण में क्या लिख सकेगी वह।

साधना खिन्न थी। मां चाहती क्या है। हे विधाता। या तो तू मुझे मूक पाषाण बना देता, जहां हृदय न होता,

अनुभूतियां न होती। उसके सीप जैसे बड़े नेत्रों में आँसु लहरा आये। वह रोने लगी। सरिता अपनी दीदी के पास आकर खड़ी हो गई। वह अब कुछ बड़ी हो गई थी और दीदी की विषम स्थिति समझने लगी थी।

'दीदी रोती हो?' स्नेह से उसने पूछा।

साधना ने अश्रु पौंछ डाले। वेदना पूर्ण स्वर में कहा, रोती नहीं सरो, परन्तु मुझे दुख है कि मैं मां को समझा नहीं पाती।'

'और मैं समझना भी नहीं चाहती। तुम तो हो कल की छोकरी, बदनामी-नेकनामी होगी हमारी होगी। तुम्हारा तो नाम तक भी नहीं जानेगा कोई।'

साधना चुप रह गई, उत्तर देने से बात अधिक बढ़ जाती। सारा दिन वह जाने क्या २ सोचती रही। मस्तिष्क व मन में कुछ था जो बाहर आने को आकुल था। सो पुनः कापी की शरण लेनी पड़ी। लिखा—

बन्धन ही बन्धन, सघर्ष ही संघर्ष। क्या यही जीवन रहेगा। मुक्त-धारा सा स्वच्छन्द प्रवाह क्या कभी नहीं मिलेगा। यह तीक्षण कटु व्यंग, मृदुल हृदय को छलनी कर देते हैं फिर भी मूक रहना होगा। यह वेदना ही किसी दिन जीवन का संगीत बन जायेगी। इस जलन और घुटन में ही आत्म प्रकाश होगा।

सहसा भाव बदल गए। कुछ कवित्व मय भाव जागृत हो उठे। मन जैसे मुस्करा उठा। लिखा—

स्वप्निल जगती में रहने की
हम को है चाह नहीं,
चाहे कितना ही मादक हो, चाहे कितना ही अनुपम हो

जिस जीवन में संघर्ष नहीं
उस की परवाह नहीं ।

अन्तिम पंक्ति उसे अच्छी लगी। उसे कई बार गुनगनाया और खिलखिला कर हंस पड़ी। सरिता निकट ही बैठी थी। बहिन को अपने आप हंसते देख विस्मित हो उठी।

'दीदी हंसती क्यों हो ?'

'कुछ नहीं सरिता।' साधना की संज्ञा जैसे लौट आई उसने कापी आगे बढ़ा दी। सरिता ने कविता पढ़ी तो वह भी गुन-गुनाने लगी। फिर बोली, 'दीदी, हमारे विद्यालय की गोष्टी होगी तो यही पढ़ूंगी मैं।'

'हट पगली, मेरे भाव तू कैसे व्यक्त कर सकेगी।'

'कर लूंगी मैं, किन्तु दीदो दो चार पंक्तियां और जोड़ दो न, यह तो बहुत कम हैं।

'न बहिन रहने दे लोगों को सुनाने के लिये महा कवियों की कृत्तियां होनी चाहिये। हमारी कविताएं तो कापी में रहेंगी।

'साधना !' रामनाथ पुकार रहे थे। साधना ने कापी बन्द कर दी और सरिता से कहा, 'देख सरु छेड़ना मत, नहीं तो सब गड़बड़ हो जायगी।' और साधना त्वरा से चली गई। तत्क्षण ही सरिता को जाने क्या याद आया कि वह भी उठ भागी। साधना पिता की कमीज़ में बटन टांक रही थी। एक दो स्थान रफु करने को भी थे। कमीज़ के तार छिन्न हो चुके थे फिर भी रामनाथ जैसे उससे चिपके रहना चाहते थे।

'अब तो कमीज़ को छुट्टी दीजिये पिता जो।'

रामनाथ केवल शून्य हँसी मुस्करा कर रह गये। सरिता पीछे खड़ी थी मूक भाव से। रामनाथ जान गए कि वह अवश्य

कोई विशेष फरमाइश ले कर आई है क्योंकि जब भी उसे कोई वस्तु मांगनी होती, वह ऐसे ही खड़ी होती है ।

'क्या है बेटी ?' सस्नेह पिता ने पूछा ।

'पिता जी, मुझे सफेद सलवार कमीज चाहिये । इस शनि को मुख्याध्यापिका जी हमारी वर्दी देखेंगी । गर्ल गाइडस की रैली हो रही है ! मैं अपने झुण्ड की कैप्टन हूं ।'

'अरे तू बिना बौज में गये कैप्टन हो गई ।'

'हट मूर्ख ! हर समय पिता जी को तंग करती है ।' साधना ने उसे डांट दिया ।

'नहीं बेटी उसे कुछ मत कहो । मुझीसे तो कहेगी । बेटी ! कल मैं तुझे अवश्य कपड़ा ला दुंगा ।' सरिता पुलकित हो कर चली गई । इतने में परितोष आ गया वह हाकी खेल कर आ रहा था । आते ही पिता की कुर्सी थाम कर खड़ा हो गया । बोला, 'पिता जी मेरी कापियाँ ला दीजिये । परसी से काम मिल रहा है कल न होगा तो इतिहास-शिक्षक क्रुद्ध होंगे ।

रामनाथ बोले नहीं एक रुपया जेब से निकाल कर पुत्र को दे दिया । बच्चे मांगते हैं तो अस्वीकार कैसे करें ? भोले बच्चे नहीं जानते उनका पिता क्या पाता है । उन्हें तो बस आवश्यता पूर्ति चाहिये । ओह ! उत्तरदायित्व के बोझ से दबे मानव को विराम कहां ? कोल्हु के बल की भांति अनवरन श्रम करते जाना ही जैसे जीवन है । बंधे बंधाये मार्ग पर चलना ही लक्ष्य हो गया था । कहीं नवीनता नहीं, कहीं परिवर्तन नहीं ।

सांझ को मन्दिर में दीप जला कर सावित्री लौटी थी । उसका दृढ़ विश्वास था कि कभी-कमार भगवान के पावन मन्दिर में उपस्थित होने से वरदान अवश्य मिलता है । परिवार

एवं पति की शुभ कामना ले कर वह जाती थी। अपने इष्ट के चरणों में शीश झुका कर, नेत्र मूंद कर और आंचल पसार कर वह भीख मांगती थी। अपने लिए नहीं, परिवार के लिये।

'आगई भक्तिन जी ?' रामनाथ ने कहा।

'क्या करुं, सब के भाग्य का तो मुझे ही भुगतना पड़ेगा। जैसे तुम नास्तिन हो वैसे ही बच्चे भी नास्तिक हैं।

'हम नास्तिक हैं वाह ! भगवान के दिये चार-चार जीवों का पालन करते हैं देवि जी, फिर भी नास्तिन। कोई बात नहीं शास्त्रों में लिखा है कि पत्नी के पुन्य का आधा भागी पति होता है। सो हम निश्चिन्त हैं हमारे लिये स्वर्ग के द्वार सदा खुले हुए हैं।'

'ईश्वर के नाम पर उपहास नहीं किया जाता। हर समय परिहास अच्छा नहीं लगता।'

'सारा दिन तो काम करते मस्तिष्क थक जाता है सावित्री। कुछ क्षण हंस लेने से जीवन में नूतनता आ जाती। निश्छल हास के यह क्षण भी न मिलें तो एक दम राम नाम सत्य...............'हैं, हैं, सन्धिी काल में यह कुवचन न बोलिये। मुझ कम्बख्त की जिहबा भी वश में नहीं रहती।'

पति की दुष्कल्पना ने सावित्री के मन को विचलित कर कर दिया था। भारतीय संस्कारों में पली नारी सब सह सकती है, नहीं सह सकती केवल पति के अनिष्ठ की बात।

'रामनाथ जी ! बाबू रामनाथ। बाहर से कोई पुकार रहा था। बुनियान पहने ही रामनाथ चले गये। फिर जल्दी ही लौट आये।

'सावित्री !'

'जो ।'

'दस रुपये होंगे तुम्हारे पास ?'

'कौन है ?' सावित्री ने पूछा ।

'वह, अपना ही इन्द्रनाथ है । बेचारे की माँ बीमार है ।'

'रुपये नहीं हैं ।'

'तंगी में है बेचारा, हों तो देदो ।'

'नहीं हैं, ना कर दो ।'

'ना करदूं सावित्री ! तुम्हारे पास रुपये हैं और तुम मुकर रही हो । कष्ट में पड़ोसी ही पड़ोसी के काम न आयेगा तो कौन आयेगा ?'

'हां ! हां ! सब का ठेका तो आप ने ले रखा है । आप को सीधा समझ ठगने आ जाते हैं ।'

'नहीं सावित्री, मनुष्य उसी के पास जाता है जिस पर अपना अधिकार समझता है । खाली कुएं के निकट तो प्यासा नहीं जाता ।'

सावित्री का मन दुविधाग्रस्त था । एक क्षण सोचती कि रुपये ला दे किन्तु पुनः भाव बदल जाते । दो मास पश्चात लड़की की शादी है और इन्हें जूं बराबर भी चिन्ता नहीं है । कठिनाई से चालीस-पचास बचाये हैं वह भी पेट काट कर नहीं तो घर गृहस्थी में रुपया तवे की बूंद हो जाता है । यह तो दानी कर्ण बने बैठे हैं । लोग भी चालाक हैं ऐसे बुद्धू घर लुटाने वाले कहां मिलेंगे उन्हें ? बेचारे रामनाथ स्तब्ध रह गये । ईश्वर ने धन नहीं दिया दिल तो दिया है । उन्हें खिन्नता सी हुई । कितना विवश हो कर वह मेरे पास आया है, ना कैसे करुं ? साधना ने पिता को असमंजस में देखा तो कहा, 'मैं देदूं पिता जी ।'

'तू, तेरे पास कहां से आए ?'

'माधवी दीदी के मेरे पास कुछ रखे हैं ।'

'उसे क्या कहेगी तू ?'

'वे तो कभी पूछती ही नहीं। न हो तो अगले मास लौटा ही देंगे।'

'हां बेटी।'

रामनाथ के मुख पर पुनः दीप्ति खेल गई। साधना ने शीघ्रता से भीतर जाकर रुपये ला दिये। रामनाथ दे कर लौटे तो सावित्री ने रोक लिया, 'सुनिये तो, यह श्रीकान्त हमारे घर रोज़ २ क्यों आता है ?'

'भला लड़का है बेचारा।'

'तुम्हें तो ज़माना-भर भला दीखता है। मैं कहती हूं लड़कियों पर नियन्त्रण होना चाहिये।'

'तुम्हें अपनी लड़की पर विश्वास नहीं सावित्री ?

'इसमें विश्वास-अविश्वास का प्रश्न नहीं, कितना बुरा युग जा रहा है। तुम उसे मनाह कर दो हमारे यहां न आया करे।'

'अच्छा।'

साधना भीतर सुन कर जल रही थी। पिता जी क्या सोचते होंगे ? मां को क्या हो जाता है। व्यर्थ ही सन्देह शील स्वभाव बनाये जा रही है। इन्होंने तो श्रीकान्त को एक दम अवारा समझ रखा है। उसका मन खिन्न था। वह गीता ले बैठी। इसी प्रकार समय असमय जब भी वह अपने को अस्त व्यस्त पाती है यही ग्रन्थ उसका सम्बल बन पाता है। गीता पढ़ने की आदत मां ने बचपन में ही डाल

दी थी उसे पर उसने अनुभव किया था कि इस प्रकार मां ने उसे एक अमृत दे दिया था जो उसके कटु-जगत में सदा रस संचार करता था।

'साधना !' सावित्री ने बुलाया।

'मां दीदी गीता पढ़ रही है।'

'गीता, यह भी कोई समय है। मैं कहती हूं इस लड़की का मस्तिष्क फिर गया है। गीता पढ़ने का भी समय होता है कि जब चाहा गीता ले बैठे।'

'मां तुम दीदी के पीछे व्यर्थ ही पड़ी रहती हो।'

'तू भी बोलने लगी, लो यही तो आज की शिक्षा का फल है। फिर पति की ओर उलाहने से देख कर कहा, 'सुनते हो कल की छोकरियां मेरे सम्मुख ज़बान खोलती हैं।'

मां के स्वभाव में दिन-प्रतिदिन चिड़चिड़ापन आता जा रहा है किन्तु क्यों ? सरिता समझ नहीं पाती। राम नाथ मौन बैठे रहे किसी को भला-बुरा कहना उनका स्वभाव नहीं था। पत्नी कभी-कभार विक्षिप्त हो जाती थी किन्तु उन का क्रोध पानी का उबाल था शीघ्र ही शान्त हो जाता था। समय पड़ने पर वह पति और परिवार के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर सकती थी। ऐसी सहृदय पत्नी की अवहेलना करके रामनाथ घर को चख़-चख़ नहीं बनाना चाहते थे। बच्चे भी ऐसे स्वभाव को सहने के अभ्यस्त हो गये थे। साधना इस विषय में काफी बुद्धिमान है पर चरित्र पर लांछन की बात वह सह नहीं सकती।

अगले दिन 'साहित्य-निर्झर' की ओर से एक कवि गोष्ठी हो रही थी। साधना का मन जाने को नहीं था परन्तु रेखा और

माधवी आ गई। साधना ने जाने से इन्कार किया तो दोनों सिर चढ़ बैठीं।

'अभी व्याह में तो देर है साध, अभी से यह नखरे करने लगी।' माधवी ने कहा।

'दीदी, मैं देखती हूं इस के नखरे। वहां कविता पाठ का कार्यक्रम है इसका और यह महारानी जी जायेंगी नहीं, वाह! उठ तो।

विवश हो साधना उठी। तिरछी निगाहों से माँ की ओर देखा फिर तैयार होने चली। रेखा सावित्री को यात्रा की कहानियाँ सुनाने लगी। वह बात करने का ढंग जानती थी। साधना तैयार हो कर लौटी तो सावित्री ने हंस कर कहा, 'ज़रा शीघ्र लौट आना बेटी।'

'आप की बेटी खोयेगी नहीं, आप निश्चिन्त रहिये।'

तीनों सखियां खिलखिलाती चलीं।

१०

साहित्य गोष्टी में खूब हल चल थी। इस संस्था को बने अभी कुछ ही मास हुए थे पर श्रीकान्त जैसे नवयुवकों के सतत उद्योग से इस ने काफी उन्नति कर ली थी। लग भग पचास तो इस के सदस्य बन चुके थे। प्रतिमास में दो बार सभा बुलाई जाती और फिर विचारों का आदान प्रदान मुक्त भाव से चलता।

उस दिन बोलने वाले तो आठ-दस ही थे शेष श्रोतागण ही थे। साधना ने सूची देखी तो माधवी का नाम भी बोलने वालों में था। प्रसन्न हो कर साधना बोली, 'अच्छा माधवी दीदी, तुम भी बोलोगी, क्या बोलोगी ?'

'अरे भई हम न कवि हैं न लेखक यह तो श्रीकान्त की हठ पूर्ति ही है। व्यर्थ में नाम लिख डाला। तब मैं ने एक संस्मरण कहना स्वीकार कर ही लिया।'

'और रेखा तू ?'

'कोई सुनने वाला भी तो हो, सभी बोलने वाले हों तो अच्छा नहीं लगता।'

श्रीकान्त प्रबन्ध-आयोजन में जुटा था। साधना को देख कर पास आगया। साधना संकुचित हो गई। यदि कल वाले माँ के शब्द श्रीकान्त ने सुन लिये हों तो ....? वह कटी जा रही थी परन्तु श्रीकान्त को यह सब सोचने का समय न था। उसने उत्साह से पूछा, 'आप अपनी कविता लाई हैं न ?'

'जी, लाई तो हूं, पर बिल्कुल निकम्मी है।

'सो आप रहने दीजिये, लाई हैं यही पर्याप्त है।'

कह कर श्रीकान्त दूसरी ओर चला गया। साधना, माधवी और रेखा बैठ गईं।

ठीक समय पर कार्यक्रम आरम्भ हो गया। सर्वप्रथम श्रीकान्त का ही नाम था। उस ने छोटा सा गीत लिखा था। जिस का भाव निम्न था।

मेरे हृदय के शून्य नभस्थल में जब ऊषा के समान तुमने झांका तो भावों की मदु कलियां विकसित हो उठीं, आशाएं नव अंगड़ाई लेने लगीं, निराशा का गहन तम छिन्न हो गया और

ज्योति का वितान सा छा गया। जब तुम ने अपने सौम्य रूप को विकीर्ण किया प्राणों की वीणा झंकृत हो उठी, रस के प्याले छलक उठे।

श्रीकान्त भाव-निमग्न हो गा रहा था। साधना सिर झुकाये बैठी थी। माधवी ने रेखा को कन्धा मार कर कहा, 'तुम्हारे भय्या बड़े भावुक हैं रेखा।'

'कविता में तो ऐसे ही दीखते हैं किन्तु हैं बड़े नीरस।'

'क्यों ?'

'लाख बार कहा है भाबी लादो पर मानते ही नहीं।'

श्रीकान्त के पश्चात एक और कवि उठे। जिनका नाम तो शायद कुछ और रहा होगा पर अपने को लिखते थे 'निश्छल'। कहा नहीं जा सकता कि वे मन से भी दिश्छल थे या नहीं। उनका रूप कुछ स्त्रैण सा था। रेशमी सिलक का कुरता पहने थे और लम्बे २ बाल थे। इस अन्दाज़ से वे उठे मानो वे कोई मुहिम का कार्य करने जा रहे हों। उनकी कविता 'कविता' नहीं कोरी तुकबन्दी थी। विषय भी पुराना घिसा पिटा था। प्रथम पंक्ति सुनते ही तालियां बजने लगीं परन्तु निश्छल जी को इस की परवाह न थी। वह नेत्र मूंदे, भाव पूर्ण ढंग से गाये ही जा रहे थे। सभा में खूब हल्ला मच गया। इस प्रकार गुल-गपाड़े के मध्य ही निश्छल जी ने कविता समाप्त की।

उनके पश्चात मंच से वधिर जी का नाम पुकारा गया। जाने क्या सोच कर उन्हों ने यह नाम रखा था नहीं तो वधिर होना कोई गुण नहीं। किन्तु वे इसे सार्थक ही कहते थे—कवि को जगत की उथल-पुथल से बहिरा हो कर अन्तर्मुखी होना चाहिये ऐसा उनका निश्चित मत था। उन की कविता का रंग

नहीं जम सका। कविता चाहे उनकी सुन्दर थी पर स्वर माधुर्य का अभाव होने के कारण श्रोताओं पर प्रभाव शून्य के बराबर रहा। गाते थे तो पहाड़ी कौए से लगते थे।

फिर माधवी की बारी आई। उसने एक व्यंग्य चित्र लिखा था। बाढ़ के दिनों में उसने अच्छी प्रकार देखा था कि सच्चे मन से कार्य करने वाले अफसर बहुत थोड़े थे, शेष का उद्देश्य तो केवल ऊपर के अधिकारियों की दृष्टि में आ जाना था। काम थोड़ा होता प्रदर्शन अधिक। उस का प्रयास अच्छा रहा। अब साधना की पुकार हुई। वह संकुचाती हुई उठी। उसका दिल धड़क रहा था। स्कूल में वह कई बार बोली थी किन्तु यह उसका प्रथम सार्वजनिक प्रयत्न था। उसकी कविता का शीर्षक था—'चाह'

स्वप्निल जगती में रहनें की,
हम को है चाह नहीं।
जिस जीवन में संघर्ष नहीं,
उसकी परवाह नहीं
उत्थान पतन जीवन-नद के
दोनों सुरम्य हैं कूल यहां,
सुख के मंजुल कुछ फूल जहां,
दुख के तीक्ष्ण कटु शूल वहां।
जिस राह में विछलन न होवे,
है प्रिय वह राह नहीं।

कविता सरल थी तो भी भाव पूर्ण थी। साधना की वाह! वाह!

हो रही थी। साधना ने आगे गाया

उषा मुस्काती गहन तमस् के
परदों पर सुन्दर पग रख
काले मेघों में हँसती है
विद्युत-बाला जगमग जगमग
जीवन भी कैसा जीवन है
जहाँ स्मित और आह नहीं।

साधना बैठ गई पर कक्ष में तालियों की गूंज भरपूर हो रही थी। उसके पश्चात दो तीन कवि मंच पर आये पर एक को छोड़ और किसी का रंग नहीं जमा। वे हास्य रस के कवि थे, उपनाम था कलन्दर। कार्यवाही समाप्त हुई तो श्रीकान्त ने साधना के निकट आकर कहा, 'आज तो आपने कमाल कर दिया साधना जी।'

'जी' साधना की पलकें उठीं और कृतज्ञता के भार से एक दम झुक गईं।

'इतना सुन्दर लिखती हैं आप?'

'भय्या! आज तुम्हें ज्ञान हुआ, मैं कहती थी तो तुम्हें विश्वास नहीं होता था।' रेखा बीच में ही उछल पड़ी।

'आप अपनी रुचि को परिष्कृत कीजिए साधना जी।'

साधना उत्तर न दे सकी। वह सोचने लगी, क्या श्रीकान्त ने मां के उन शब्दों को नहीं सुना? यदि सुना तो—क्या वह इतना ही निर्लेप है? उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ तब तो वह वास्तव में महान है।

टांगा मंगवाया गया। श्रीकान्त साईकल पर था। तीनों, साधना, माधवी और रेखा टांगे में बैठीं। हंस कर साधना

को लक्ष्य करके माधवी बोली, 'तुम्हें तो पहले छोड़ना होगा साधना, नहीं तो मौसी जी का पारा एक दम चढ़ जायेगा।'

'क्यों ?'

'भई उनकी सुन्दर बेटी कहीं खो न जाये।' माधवी बोली

और दीदी, जब यह ससुराल चली जायेगी, तो...?

हट पगली, तब तो प्रमाण पत्र मिल जायेगा। विवाह की मोहर लग जाने पर कोई चिन्ता नहीं रहती।' साधना लाज के कारण रक्तिम हुई जा रही थी। उसकी वाणी मूक थी।

'किन्तु दीदी तुम पर तो यह मोहर नहीं लगी। यदि तुम खो गई तो......'

'तो गले में ढोल डाल कर ढिंढोरा पीटती फिरना। अरे साध ! तुम तो बोलती ही नहीं।'

अभी से बहू बनने का अभ्यास कर रही है दीदी, जितना चुप चुप मुस्करायेगी उतनी ही सुन्दर लगेगी।'

'फिर ?'

'फिर क्या जीजा जी मुग्ध हो जायेंगे।'

अब साधना नहीं रुक सकती थी। उसकी सहिष्णुता थक रही थी। उसने जोर से रेखा की पीठ ठोंक दी। रेखा हाय, हाय कर उठी।

'मन में तो लड्डू फूट रहे हैं, ऊपर से यह दिखावा।'

पीठ सहलाते हुए रेखा बोली। पक्की ढीठ थी रेखा। उसे साधना को चिढ़ाने में सदैव आनन्दानुभव होता था।

'रेखा तू बहुत तंग करेगी तो मैं तुम से कभी न बोलूंगी।'

'ओह ! अभी से यह नखरे हैं।

साधना पराभूत हो गई । वह चंचल छोकरी उसे किसी प्रकार छोड़ेगी नहीं यह वह जानती थी।

तभी घर आ गया साधना का । उतर कर स्नेह से कहा उसने, 'अच्छा दोदी कल मिलेंगे। सब को नमस्कार करके साधना भीतर चली गई।

माधवी की इच्छा थी कि वह सीधे घर जाये किन्तु श्रीकान्त और रेखा के अनुरोध से उसे बीच में ही रुकना पड़ा। उतरते ही रेखा चाय बनाने में जुट गई। बिजली के हीटर पर चाय प्रस्तुत करने में उसे दस-पन्द्रह मिनट से अधिक नहीं लगे। रेखा चाहती थी कि साथ में कुछ खाने को भी हो जाये पर माधवी नहीं मानी, वह केवल चाय लेना चाहती थी। श्रीकान्त ने चाय पीते पीते कहा, 'सुना है साधना का विवाह हो रहा है।'

'सच ही तो सुना है आपने।'

'भावी पति भी साहित्यिक रुचि रखते हैं या.........

'बीच में ही टोक कर माधवी बोली, लड़कियों की रुचि-अरुचि कौन देखता है श्रीकान्त जी।'

'किन्तु देखनी तो चाहिये।

'यह आप कहते हैं न। उसके माता-पिता को इसकी चिन्ता नहीं वे केवल अच्छा घर और वर चाहते हैं।

'घर और वर?

'जी हां घर और वर से तात्पर्य खानदानी घर और कमाऊ पति से है सो साधना को मिल गया है।'

तदुपरान्त माधवी ने अपनी एक सहपाठिका की बात सुनाई जिसको संगीत का बहुत शौक था। गाती भी सुन्दर

थी। सुन्दर स्वर का वरदार उसने पाया था परन्तु पति ऐसा मिला जो सर्वथा संगीत के प्रति अरसिक था। धीरे धीरे उसकी रुचि-सुरुचि सब मारी गई। पिछले वर्ष वह उससे मिली तो वह तीन बच्चों की मां थी और उसके वाद्य यन्त्र इत्यादि सब टूट चुके थे। सुन कर रेखा बोली, 'यह भी क्या हुआ माधवी दीदी! जैसे लड़की की कोई भावना ही नहीं।'

'प्रायः ऐसा ही होता है बहिन। देख लेना साधना की गति भी ऐसी ही होगी। वह व्यापारी मनुष्य उसकी साहित्यि-कला की क्या कीमत जानेगा?'

'ओह!' सहसा श्रीकान्त कह बैठा और साथ चौंक भी उठा। माधवी हंस पड़ी। कहा, 'सच पूछिये श्रीकान्त जी तो साहित्यिक रुचि वालों का विवाह साहित्यिक रुचि वालों से ही होना चाहिये।'

'सो तो ठीक है परन्तु ऐसा होता नहीं। मेरे एक मित्र की स्थिति भी ऐसी ही है। उनकी दशा है यह कि सारा २ दिन लेखनी लिये माथा पच्ची करते हैं और पत्नी कुपित हो कर दिनभर की कमाई को करकट कह डालती है।'

'आपके मित्र खीझते तो होंगे?'

'क्या करें, खीझते हैं बहुत। तब कई कई घन्टे घर से बाहर रहते हैं।

'वे पुरुष हैं बाहर रह लेते हैं यदि स्त्री की यह स्थिति हो तो वह जलेगी, कुढ़ेगी ही।'

कहते-कहते माधवी उठ पड़ी। रेखा द्वार तक छोड़ने आई।

'रेखा कल जल्दी आना तनिक, आगामी मास हम एक

नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं। नारी मन्दिर के लिये कुछ अर्थ संचय की आवश्यकता है। हस्त-कौशल की थोड़ी बहुत प्रदर्शनी भी हो जायेगी।'

'अच्छा दीदी।'

११

श्रीकान्त अपने कक्ष में बैठा कुछ लिख रहा था कि पारस द्वार खोल कर भीतर आया।

'भय्या जी आपका पत्र आया है।'

श्रीकान्त ने पैन छोड़ दिया। पत्र लिखते हुए स्नेह से पूछा, 'क्यों पारस तुम्हें कष्ट तो नहीं।'

'कष्ट, ऐसा स्वर्ग तो मैंने कभी नहीं देखा भय्या जी। मन ही मन आप मुझे देवता से सुन्दर लगते हैं।'

'मैं सुन्दर नहीं हूं पारस।'

'आप सुन्दर नहीं, मैं नहीं मानता भय्या जी। आप तो मुझे देवता से कम नहीं दीखते हैं।'

पारस फिर द्वार टटोलता चला गया। इस घर के एक एक कोने से वह भली प्रकार परिचित हो गया था अतः मार्ग ढूंढने में उस नेत्र हीन को तनिक भी असुविधा न होती थी। रेखा को बहिन जी कहता था और माँ को 'मां'। रेखा ने उसे कुछ ईश-भक्ति के भजन सिखा दिये थे। स्वर उसे वरदान रूप में मिला था। मीरा का एक भजन सरला देवी नित्य प्रातः उस से सुनती थीं। वह कहता, 'मां कुछ और गाऊं।'

'नहीं रे, मुझे तो वही सुनादे।' तन्मय हो पारस गाने लगता उसकी नेत्र पुतलियां शून्य भाव से स्थिर रहतीं। वह गीत था—

पायो जी मैंने राम रत्न धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, करि कृपा अपनायो।
जन्म जन्म की पूंजी पाई, जग में सभी गंवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयो।

सुनते २ मां विभोर हो जाती। तभी रेखा आकर टोक दिया करती, क्या तोता रट लगा रखता है। रोज़ एक ही गाता है। वह था भक्ति गीत—

पितु मात सहायक स्वामी सखा,
तुम ही इक नाथ हमारे हो।

'उसका स्वर अभी नहीं आता बहिन जी, उसकी धुन ही ऐसी है कि मैं पकड़ ही नहीं पाता।'

रेखा बेचारे पारस की बातों पर तरस खा जाती। उसका दुर्बल मन अपने को ही दोष देना सीख गया था।

'रेखा!' श्रीकान्त पुकार रहा था।

सरला देवी ने कहा, 'जा तो भय्या पुकार रहा है।'

रेखा चली गई। श्रीकान्त एक पत्र पढ़ रहा था। एक खुला लिफाफा और भी पड़ा था।

'क्या है भय्या?'

'यह पत्र मां को देदो, देहली से आया है।'

'क्या लिखा है?'

'तेरा सिर। दीमाग मत चाट।'

रेखा समझ गई कि पत्र किस विषय से सम्बन्ध रखता है। मां को प्राय: ऐसे पत्र आते रहते हैं। श्रीकान्त बड़ा हो गया

है इसलिए रिश्ते-नातेदार सगाई के लिये तंग करते रहते हैं। कोई लड़की के गुण और रूप का प्रलोभन देता है तो कोई आर्थिक प्रलोमन। सरला देवी यद्यपि चाहती थीं कि पुत्र का ब्याह हो जाये तो वे एक प्रकार के उत्तरदायित्व से मुक्ति पा जायें परन्तु पुत्र पर दबाव डालना भी वे उचित नहीं समझती थीं।

'भय्या ! ऐसे पत्रों का अन्त कब होगा ?'

'कान मत खा। जा भाग।

रेखा पत्र लेकर चली तो श्रीकान्त ने फिर पुकार लिया--

'और सुनो, मेरा सामान तैयार कर दो। मैं परसों जाऊंगा।

'कहां जाओगे ?'

'इस बार हरिद्वार जाऊंगा।'

'भक्त जी बनोगे ?'

भक्त-वक्त मैं नहीं हूं रेखा; तुम जानती हो। फिर भी प्रकृति सुन्दरी का मैं पुजारी हूं। गंगा की दुग्ध धवल धारा, शैल मालाओं को छिन्न करती हुई यहां सीधी मैदान में आती है। मैं तो सात सात मील उस धारा के साथ पांव-पांव चल लेता हूँ।

'मुझे भी ले चलो न ?'

'तुम्हें तथा मां को मई में ले जाऊँगा। अम्बाला से हेमन्त मेरे साथ जायेगा।'

'हेमन्त कौन ?'

'मित्र है अपना, गत वर्ष हरिद्वार में ही मैत्री हुई थी।'

'तुम्हारी भाँति ही घुमक्कड़ होगा। साहित्यिक रूचि भी है ?'

'हर बात में साहित्यिक रुचि, कभी-कभी विषम स्वभाव वालों में भी स्नेह गांठ जुड़ जाती है। ज़रा है साहस का आदमी। शरीर से एक दम पहलवान लगता है।'

'पहलवान। बाप रे!'

शरीर कसरती है, मोटा ताज़ा पहलवान नहीं।

कभी लाना उन्हें, क्या करते हैं?

ऐम. ए. प्रीवियस करके छोड़ दिया कम्बख्त ने जेनरल मर्चेन्टस की दुकान है बपौती के रूप में।'

रेखा मां को पत्र देने चली। मां सुस्ताने के लिये तनिक लेट गई थीं। वैसे ही लेटे लेटे कहा, 'तू ही पढ़ दे रेखा।'

'देहली से मामा जी की है मां।'

'क्या लिखा है?'

रेखा एक बार सारा पत्र पढ़ जाती है।

'क्या लिखा है भाई जी ने?'

मां! मामा जी लिखते हैं कि एक लड़की देखी है उन्होंने। मेट्रिक पास है किन्तु है धनी घराने की।

'मैट्रिक पास?' मां को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था।

'लिखा है दहेज़ में दस-पन्द्रह हज़ार मिल जायेगा।'

'भय्या को जाने क्या हो जाता है। अपने लड़के का मैं सौदा करूंगी। फिर इस छोटे से घर में धनी परिवार की उस लड़की के सींग कहां समायेंगे? मैं तो कोई घरेलू स्वभाव की लड़की चाहती हूं।'

'किन्तु मां लड़की असीम सुन्दर है?'

इस विषय पर माँ चुप हो रही। यद्यपि वे चाहती हैं कि उनकी बहू लक्ष्मी सी सुन्दर आये। ले देकर एक ही बेटा है तो यह साध उन्हें कैसे न हो ? किन्तु बाह्य सौंदर्य ही तो सब कुछ नहीं। वास्तविक सौंदर्य तो मन से सम्बन्ध रखता है। सरला देवी को पड़ोस में रहने वाली पारसनाथ की बहु याद हो आई। जब ब्याही आई थी तो पारसनाथ की मां को चारों ओर से बधाईयों की बौछार हुई थी। मुक्त कण्ठ से सबने कहा था कि पूर्व जन्मों के पुन्य कर्मों से ही पारस की माँ को ऐसी सोने जैसी पुत्र बधु मिली है। किन्तु छः मास मश्चात् ही सुना गया कि वही सोने सी बहू अपना बोरिया बन्धना लेकर अलग घर में चली गई है और अब पारसनाथ की मां रोती और तड़पती फिरती है। चाहे वह छोटे पुत्र के साथ भली प्रकार रहती है तो भी बड़ी पुत्र बधु के चांव तो छः मास में ही ठन्डे हो गये। निश्चय ही सरला देवी ऐसी बहू नहीं चाहती थीं, उन्हें तो वह लड़की चाहिये थी जिसे वह लड़की की भांति प्यार कर सके, जो उन्हें मां का सम्पूर्ण आदर व मान दे सके। सरला देवी के मौन को भंग करती हुई रेखा बोली, 'क्या सोच रही हो मां ?'

'कल इसका उत्तर देना होगा रेखा। मैंने तो भय्या के सम्मुख अपनी इच्छा स्पष्ट रूप से रख दी थी कि मैं क्या चाहती हूं फिर भी।'

रेखा पत्र सहेजती हुई चली गई।

आज श्रीकान्त के जाने का दिन था। उसे कुछ आवश्यक पत्रों का उत्तर देना था। रेखा अटैची केस में उसके कपड़े रख रही थी। वह भय्या को छेड़ना चाहती थी परन्तु पहल

कैसे करे ? तभी उसे जैसे बहाना मिल गया।

'भय्या, तुम्हारी दो कमीज़ों के बटन टूटे हैं।

कम्बख्त धोबी नई कमीज़ों के बटन तोड़ लाता है। अलमारी में सूई-धागा रखा है। टांकना ज़रा।'

पत्र लिखते-लिखते श्रीकान्त ने कहा। प्लास्टिक की छोटी सी डिब्बिया में सब वस्तुएं रखी थीं। रेखा बटन टाँकने लगी। कन्नखियों से भाई को देख कर कहा, 'कब तक यह बटन मुझ से टंकवाओगे ?'

श्रीकान्त को यह सुनने का अवकाश सम्भवतः न था। वह अपने कार्य में लगा रहा। रेखा पुनः चिल्लाई—

'मैं कहती हूं कब तक यह झंझट मुझ से करवाओगे ?'

'मुझसे कुछ कहा ?' श्रीकान्त ने एकाएक पूछा।

'लो, मैं दो बार चिल्ला चुकी और श्रीमान सुनते ही नहीं। ओह मेरी उंगली में सूई चुभ गई।'

'दिखा, दिखा।' श्रीकान्त शीघ्रता से उठा परन्तु सूई चुभी ही कहां थी।

'हट शैतान, झूठ-मूठ डरा देती है।'

'अरे ! इतने से डर जाते हो। यह जान कर भाबी सारा दिन डरायेगी। मन थोड़ा दृढ़ करलो अभी से।

बहिन की शरारतों से श्रीकान्त तंग तो आ जाता है परन्तु इतना निरीह सौहार्द पाकर उसका मन गर्वित हो उठता था। रेखा ने जल्दी से भाई के सारे वस्त्र देख डाले, जो कुछ भी करना था किया और निश्चित हो कर एक अंगड़ाई ली। इतने में सरिता आ गई।

'क्या है सरो ?' सरिता को बैठाते हुए रेखा ने पूछा।

'दीदी ने बुलाया है ।'

रेखा और सरिता बातें करने लगीं। श्रीकान्त भीतर मां के पास चला गया। सरिता की बातों से रेखा को ज्ञात हुआ कि साधना के ब्याह की तिथि निश्चित हो गई है। और वे लोग शीघ्र ही ब्याह चाहते हैं क्यों कि साधना का एक देवर अफ्रीका जाने वाला है। सुनकर रेखा ने कहा, 'साधना तो खूब प्रसन्न होगी सरो।'

'मैं क्या जानूं ? जिस दिन से पत्र आया है दीदी एक दम गुमसुम रहती है। कठपुतली सी चलती फिरती है बिल्कुल निष्प्राण सी।'

'क्यों ?'

तुम्हीं पूछना रेखा दीदी, मां इसी बात पर सारा दिन खीझती है। अच्छा रेखा दीदी मैं चली।'

'अरे, बैठ तो।'

'कालेज की आधी छुट्टी में आई हूं। देर हो जायेगी।'

अच्छा, साध से कहना मैं शाम को आऊंगी। समझी !

अनुमोदन में सिर हिला कर सरिता भाग गई। रेखा पुनः भाई की वस्तुएं एकत्र करने लगी जैसे कुछ सोच रही हो। श्रीकान्त लौट आया।

'क्या सोच रही हो रेखा ?'

'सरिता आई थी, साधना की बहिन।'

'कैसे ?'

'साधना का ब्याह है।'

श्रीकान्त एक दम स्तम्भित रह गया। साधना का ब्याह, रेखा के माध्यम से ही वह साधना के निकट आया था परन्तु इस सौम्य लड़की के शान्त स्वभाव ने उसे कुछ आकृष्ट कर

लिया था । साधना बहुत कम बोलती थी, आजकल की अधिक लड़कियों सा उचलापन भी उसमें न था । बाढ़ के दिनों माधवी के साथ दिन-दिन भर घूम कर साधना ने जो कर्मठता प्रदर्शित की थी उसने श्रीकान्त को अभिभूत कर लिया था । यद्यपि उस के विषय में उसने गम्भीरता से कभी चिन्तन न किया था फिर भी उस के ब्याह की बात सुन उसे धक्का सा लगा । उसी की प्रेरणा से साधना साहित्य क्षेत्र में आने लगी थी । साधना संकोची स्वभाव की थी परन्तु उसके नयनों में श्रीकान्त के प्रति एक आत्मयिता झलकती थी । श्रीकान्त झुंझला उठा । साधना उसकी कौन होती है जो वह उसके विषय में सोच रहा है । छिः ! उसका मन कितना दुर्बल है । साधना के मां—बाप हैं, वे उस का विवाह कर रहे हैं । उसे इससे क्या ?

वास्तव में उस का स्वभाव ही अद्‌भुत था । उसे बहुत कम लड़कियां पसन्द आती थीं । कोई उसे कृत्रिम लगती, कोई चंचल, कोई ओछी और कोई नादान । प्रदर्शन प्रिय और चंचल छोकरियों से वह यों भी कतराता था । जाने वह उनसे क्या चाहता था ? अपने कालेज के दिनों में एक लड़की भाई थी उसे, मंजुला । रूप उसका आकर्षक और स्वभाव शान्त था । गेहुआं रंग, छोटा सा मुख और लम्बे २ नेत्र । नासिका का अग्रभाग कुछ उभरा हुआ, अधर पतले और ठुड्डी छोटी । वह ऐम. ए. के प्रथम वर्ष में था तो मंजुला बी. ए. चतुर्थ वर्ष में थी । वह वाद—विवाद सभा की नेतृ भी थी । श्रीकान्त और। मंजुला की भेंट भी अत्यन्त नाटकीय ढंग से हुई थी ।

एक दिन वह शाम को टेनिस खेल कर लौट रहा था

टेनिस रेकिट उसके हाथ में ही था। कालेज की बड़ी ग्राउंड जब वह पार कर रहा था तो दूर से एक लड़की जाती दिखाई दी। उसके इधर-उधर दूर तक कोई भी न था। धीरे-धीरे वह एक ही राह पर चलने लगे। उस लम्बी सड़क पर वे दोनों थे और उनकी परछाइयां थीं। सहसा बायें पार्श्व से दो लड़के निकले और मंजुला के संग २ चलने लगे। उसने घूम कर जो देखा तो वे दोनों मुस्करा पड़े। उनकी इस हरकत पर मंजुला चीख उठी। त्वरा से डग बढ़ा कर वह उसके निकट पहुंच गया। मंजुला ने भोले नेत्र उठा कर जैसे रक्षा की प्रार्थना की। श्रीकान्त ने न आव देखा न ताव रैकेट वाला हाथ एक पर चला दिया। श्रीकान्त कालेज के विद्यार्थी यूनियन का प्रधान था, दोनों घबरा गये और मैदान छोड़ भाग गये। प्रिंसीपल के पास कहीं शिकायत न चली जाये इस लिये श्रीकान्त से क्षमा मांगते ही बनी। उन दोनों को चारित्रिक उच्चता के विषय में समझाते हुए श्रीकान्त ने छोड़ दिया। फिर घूम कर लड़की से कहा, इस कुसमय में आप अकेली क्यों घूम रही हैं ?

'जी।' घबरा कर लड़की बोली।

'समय-कुसमय अकेले घूमना ठीक नहीं।'

'आप क्या समझते हैं कि मैं उन से डर गई थी ?'

'यदि समझता हूं तो क्या ग़लत समझता हूं। आपका वर्ण तो विवर्ण हो गया था।'

'डरी तो मैं नहीं थी, किन्तु वे दो थे और मैं एक। आप न आते तो मैं स्वयं उन से भिड़ जाती।'

'ऐसा दुःसाहस कभी न करियेगा। शक्ति में पुरुष फिर भी पुरुष है।'

'आज के युग में भी नारी-पुरुष का भेद आप करते हैं ?'

'जी, यह तो सदैव रहेगा। प्रकृति के शाश्वत नियम को तोड़ने का साहस न आप में है न मुझ में।'

दोनों चलते २ चौ-राहे पर आ पहुंचे। नमस्कार करके मंजुला चली गई तो श्रीकान्त हंस पड़ा। नारी को अपनी शक्ति पर कितना मिथ्या गर्व है। क्यों वह अपनी स्थिति को झुठलाना चाहती है। प्रकृति का दुर्बल अंग है वह। समानाधिकारों की लाख दुहाई देने पर भी यह भेद मिटेगा नहीं।

अगले ही दिन कालेज की साहित्य सभा एक गर्मागरम विवाद प्रस्तुत कर रही थी। विषय था—'नारी के समानाधिकार' और कितना आकस्मिक था कि विपक्ष में बोलने वालों का नेता श्रीकान्त था और पक्ष में बोलने वालों की नेतृ मंजुला। श्रीकान्त के नेत्रों के सम्मुख गत संध्या घूम गई। मंजुला के मुख पर भी रहस्यमयी मुस्कान थी।

वाद-विवाद खब डट कर हुआ। दोनों पक्षों का एक-एक व्यक्ति क्रम से अपने विचार प्रकट करता था। अन्तिम बारी थी श्रीकान्त और मंजुला की। अपने २ पक्ष को प्रस्तुत करने के लिये दोनों सतर्क थे। सब के विचार प्रस्तुत हो चुके तो अध्यक्ष ने विद्रोही पक्ष के नेता श्रीकान्त के नाम की घोषणा की। श्रीकान्त ने बैठे ही बैठे कहा,

'लेडीज़ फर्स्ट प्लीज़' (स्त्रियां पहले)

'जब' स्त्रियां समानाधिकार मांगती हैं तो पहले पीछे का कोई प्रश्न नहीं मिस्टर। आप पहले बोलिये।' तुनक कर मंजुला बोली।

'जी, मैं तो समानाधिकार मानता ही नहीं, इसलिये मैं तो नारी को यह श्रेय दगा ही। आप आरम्भ, करिये।'

'किन्तु मैं पहले बोलना नहीं चाहती।'

'अच्छा, तो मैं ही बोलूंगा। मैं नारी से केवल एक ही प्रश्न करूंगा कि वह पुरुष का रक्षण चाहती है या नहीं ?'

'नहीं, वह स्वयं अपनी रक्षा कर सकती है।' मंजुला ने कहा।

'कर सकती है, रक्षा करने वाली स्वयं तो दो पुरुषों को देख कर ही संज्ञा हीन हो जाती है।'

'व्यक्तिगत कटाक्ष मत करिये, सिद्धांत की बात कीजिये।'

'सिद्धांत की ही बात करता हूं और वह सिद्धान्त यह है कि नारी को पुरुष का रक्षण चाहिये ही। निस्सन्देह मैं उस स्थिति का समर्थक नहीं कि रक्षण के नाम पर नारी को मुक्त सांस भी न लेने दिया जाये। उसके स्वच्छन्द विकास का, उस की मानसिक उन्नति का मैं पक्षपाती हूं। किन्तु यह भी नहीं मानता कि उसे पुरुष के रक्षण की आवश्यकता ही नहीं। उस की छत्रच्छाया के विना वह रह नहीं सकती। जब-जब उस की मान-प्रतिष्टा का प्रश्न आयेगा तब केवल पुरुष ही उसका सहायक हो सकता है। चाहे रुप कोई हो, भाई हो, पिता हो अथवा पति हो। उन स्त्रियों की बात मैं नहीं कहता जो आधुनिक सामाजिकता की आड में नैतिक पतन की ओर अग्रसर होती हैं। उन्हें संरक्षण नहीं चाहिये क्योंकि जिस नैतिक मर्यादा के लिये उन्हें सुरक्षा चाहिये उसकी आवश्यकता उन्हें नहीं है। किन्तु सामान्य नारी को, जो समाज का प्रतिष्टित अंग बनना चाहती हैं पुरुष का संरक्षण चाहिये ही। अतः जब एक रक्षक सिद्ध हो और दूसरा रक्षित तो समानाधिकार का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? यह निरी प्रवंचना है, कोरा धोखा है।

लड़कों की बैंचों पर तालियां पिट गईं। मंजुला का मुख तमक उठा। क्रोध में वह खड़ी हो गई। श्रीकान्त विजयी सा बैठ गया।

'पुरुष चाहता है जैसे वर्षों से वह नारी का दमन करता आया है वैसा ही करता रहे। संरक्षण की आड़ में नारी के पंख कुतर डाले, ताकि वह विवश हो कर केवल उसका मुँह ही देखा करे। किन्तु अब यह असम्भव है। अब नारी अशक्त नहीं रहना चाहती, केवल प्रजनन की वस्तु बन कर अब वह और अत्याचार नहीं सह सकती। वह अपनी निर्माणात्मक सत्ता से परिचित हो चुकी है। समाज उसके बिना निःसत्व है यह उसे ज्ञात हो गया है। वह राष्ट्र और जाति की निर्मातृ है। इस प्रकार उसकी स्थिति पुरुष से कहीं श्रेष्ट है। अबला, अबला कह कर उसे बिल्कुल ही दबा डाला गया। गृह लक्ष्मी कह २ कर उसे दुर्गा भवानी के रूप से सर्वथा अनभिज्ञ कर दिया गया। अब अपना शिकार हाथ से निकलता देख पुरुष बौखला उठा है। परन्तु नारी के लिये और सहना कठिन है। इस समस्या का एक ही समाधान है, समानाधिकार, समानाधिकार———

'समानाधिकार, समानाधिकार,' सभी लड़कियां चिल्ला पड़ीं। समय समाप्त हो चुका था। इस लिये सभा की इतिश्री कर दी गई। श्रीकान्त बाहर के प्रांगण में खड़ा था।

'बधाई श्रीकान्त जी।'

श्रीकान्त ने घूम कर देखा—मजुंला थी।

'आप प्रत्युत्तर में बधाई ही चाहती हैं न। आप बड़ा सुन्दर बोलीं आज।'

'धन्यवाद।' मंजुला ने स्वर में माधुर्य भर कर कहा।

'आपने कौन से विषय बी. ए. में ले रखे हैं ?

'हिन्दी-पोलिटीकल साईंस।'

'तभी तो, हिन्दी अच्छी है।'

'किन्तु इंगलिश तो अच्छी नहीं '

'क्यों ! जिसकी एक भाषा अच्छी हो उसकी सभी भाषाएं अच्छी होती हैं।'

'जी अभिव्यक्ति तो है किन्तु स्पैलिंगज़ में सब गड़बड़ हो जाती है।'

'तो लिखने का अभ्यास कीजिये।'

'आजकल कालेजों में लिखित कार्य कितना होता है, देखते नहीं आप ?'

'यहां होता ही क्या है ?' श्रीकान्त ने व्यंगपूर्ण वाणी में कहा।

'यहां तो जो स्वयं बन सके, बन जाये। प्रशिक्षकों का कार्य तो केवल लेक्चर देकर चले जाना है। न छात्रों का मानसिक विकास होता है न नैतिक। केवल पुस्तकों का अध्ययन ही अलम् है। अच्छा यों कीजिये, आप लिख दिया करें मैं शुद्ध कर दिया करूंगा। यों मैंने ऐम. ए. में संस्कृत ले रखी है परन्तु इंगलिश भी ऐसी बुरी नहीं।

'आपको कष्ट......।' मंजुला के स्वर में संकोच था।

'यहाँ तो हम विपक्षी नहीं हैं। किसी के काम आ सकूं यह तो सौभाग्य की बात है।'

श्रीकान्त और मंजुला की घनिष्टता द्रुतगति से बढ़ी। श्रीकान्त को मंजुला में जो चंचलता पहले दिन दीखी थी,

वह काफी कम हो गई थी । और वास्तव में वह चंचल थी ही नहीं । पुरुषों के प्रति वह सद्भावना नहीं रखती थी, उनके प्रति उसे कुछ मानसिक क्षोभ सा था । किन्तु इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। उसकी मां के प्रति पिता का व्यवहार संयत और संगत न था। उसकी मां थी सरलता की प्रतिमूर्ति और पिता एक दम उच्छड प्रकृति के पुरुष थे। बिना कारण डाटना डपटना उनका स्वभाव बन गया था । माँ बेचारी मूक भाव से सब सह जाती पर उसकी प्रतिक्रिया हुई सन्तान में। लाख यत्न करने पर भी मजुंला स्वच्छन्द प्रकृति की हो गई थी । श्रीकान्त को उसमें एक अवगुण के अतिरिक्त सभी गुण ही गुण दृष्टिगत हुए। वह प्रखर बुद्धि थी और ऐसी ग्राह्य शक्ति तो बहुत कम लड़कियों में श्रीकान्त ने देखी थी ।

जैसे ही ऐम. ए. की परीक्षा हुई श्रीकान्त बाहर चला गया। उसकी मौसी के अनुरोध पूर्ण पत्र जो आ रहे थे। मां ने भी बार बार कहा कि पढ़ते पढ़ते वह थक गया होगा सो हो आये तो परिवर्तन हो जायेगा।

दो मास पश्चात परिणाम निकला तो प्रथम निकला था प्रान्त भर में। उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी । एक अनुपम उत्साह लेकर वह घर लौटा किन्तु आते ही रेखा ने मजुला के ब्याह की सूचना दे दी। वह एक दम स्तब्ध रह गया चाहे उसने मंजुला के साथ कभी ऐसे नाते की कल्पना तक न की थी फिर भी इस आकस्मिक सूचना से उसका मुख कुछ क्षणों के लिये अपनी स्वभाविक ताजगी खो बैठा था।

उसी सन्ध्या को वह मंजुला के यहाँ जा पहुंचा। मंजुला मां के निकट बैठी थी । एकाएक श्रीकान्त को देख वह कुछ

सकपका गई। माथे में बिन्दी थी, मांग मैं सौभाग्य सिन्दूर। मुख पर पाउडर का घना प्रलेप और अंधरों पर लिपस्टिक का गहरा रंग। बिल्कुल अलंकत पुतलिकासी सजी थी।

'अरे श्रीकान्त जी हैं ! नमस्ते।'

श्रीकान्त ने तनिक झिझक से मंजुला की नमस्ते का उत्तर दिया। फिर माँ को नमस्कार कर कहा—'आपने तो सूचना तक नहीं दी माताजी, बधाई हो बहुत बहुत।'

'अरे बेटा, बधाई तो तुमको ही मिलनी चाहिये।'

मंजुला ने नत-वक्र पलकें उठाईं जो पूछ रही थीं इसमें बधाई कैसी ? निरीह पक्षी को स्वर्ण पिंजरे में बंद देख कर बधाई देना उपहास नहीं तो क्या है। एक विवश सी मुस्कान उसके उदास चेहरे पर खेल गई। श्रीकान्त इस भाव को पढ़ने का प्रयास करने लगा। मंजुला की मां ने उठते हुए कहा, 'जमाई राजा आये हैं, चाय को व्यवस्था करलूं। तुम बहिन के पास बैठो।'

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि पति पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री-पुरुषों में भाई-बहिन का नाता जुड़ने में बिलम्ब नहीं होता। एकाएक श्रीकान्त ने पूछा, क्या नाम है उनका ?

'विश्व मोहन।'

'सुन्दर नाम है।' अब मां वहां न थी, सो श्रीकान्त खुला—'समानाधिकार की रक्षा तो होती ही होगी।

'अजी कहां, यहां तो एकाधिकार भी छिन गये।' मंजुला खिल खिला कर हँस पड़ी। श्रीकान्त ने भी योग दिया और पूछा, वाह ! क्यों ?'

'आप उन्हें देखियेगा श्रीकान्त भय्या, एक दम साहबी ठाठ है ।

'तो तुम सौभाग्य शालिनी हो ।'

'हां बहुत, पन्द्रह सौ वेतन है ।'

'एकदम ।'

'पिता जी के मित्र के पुत्र हैं । शिक्षा तो ऐफ. ए तक ही है किन्तु बाद में अमेरिका में दो वर्ष के लिये प्रशिक्षण लिया । अब किसी इंगलिश फर्म में हैं । यों यहीं के वासी हैं पर अब तो बम्बई ही स्थायी निवास स्थान है । कभी आइयेगा वहां ?'

निमन्त्रण सुरक्षित रहेगा । किन्तु इतना कुछ पाकर भी तुम प्रसन्न क्यों नहीं दीख रही ।'

'कैसे ?' सतर्क हो मंजुला ने कहा ।

'मनो विज्ञान मेरा विषय रहा है, मंजुला दीदी और अब यदि कोई ऐम. ए. करूंगा तो इसी विषय का ।'

'ओह ।'

'बताओ न ।'

'आप ठीक ही समझे हैं, वहां सब है धन ऐश्वर्य, मान आदर, तो भी सोचती हूं मन को स्वच्छन्द उड़ान न मिलेगी । देखते हो, यह भड़कीलापन, यह रंग पाउडर सभी जो मैंने सजा रखे हैं यह मेरी इच्छा नहीं, उनकी इच्छा है । इन्हीं दो सप्ताहों में जीवन की धारा ही बदल गई है । हमारा परिवार वैष्णव है । वहां जाते ही मुझे अण्डे खाने को बाध्य होना पड़ा ।'

'अन्डे खाना क्या बुरा है ? संसार का दो-तिहाई मांसाहारी है ।'

'आप भी तो नहीं खाते। यह भी संस्कार का प्रश्न है। किन्तु उनके घर में यह मुक्त रूप से चलता है। वहां तो जीवन ही क्लब और होटल का है।'

तभी बाहर कार का हार्न हुआ। मंजुला जैसे सम्भल गई। विश्व मोहन मंजुला के छोटे भाई के साथ भीतर आये। वास्तव में ही साहबी ठाठ था। कीमती सूट था, नवीनतम फैशन के जूते, हाथ में दमकते हीरे की अंगूठी। नाम विश्वमोहन था पर रूप वैसा न था यों करूप भी न था। ठिगना कद ज़रा थल-थल शरीर, आंखों पर मोटे शीशों वाला चश्मा। थोड़ा घूर कर देखते थे। सिगरेट का धुआं बराबर उड़ा रहे थे। बोलते थे तो दो शब्द हिन्दी के दो शब्द इंगलिश के। साथ ही साथ अनुवाद भी करते जाते थे।

'मंजुला डियर, कल रात के लिये फ्रंटियर में सीटस रिज़र्व करवा ली हैं।' फिर प्रश्नात्मक दृष्टि से घूर कर श्रीकान्त को देखा। मंजुला परिचय करवाते हुए बोली, 'यह मिस्टर श्रीकान्त हैं। हिन्दी और संस्कृत के ऐम. ए. हैं। इंगलिश में मेरी मास्टरी भी की है।'

आश्चर्य है, आई वन्डर, आप संस्कृत-हिन्दी पढ़ कर भी इंगलिश की मास्टरी कर सकते हैं। मैंने तो सुना है हिन्दी संस्कृत वाले केवल पण्डित होते हैं।'

सुना है देखा [illegible] तो नहीं मि० विश्व मोहन।'

श्रीकान्त बोलने में पर्याप्त शालीन था। विश्वमोहन पर कुछ प्रभाव जमा फिर भी जैसे अवहेलना से बोला, 'न जाने लोग हज़ारों वर्ष पूर्व की इस मुर्दा भाषा से क्यों चिपटे हैं?'

'यही तो ग़ल्त है जो भाषा सहस्रों वर्षों से अनेक भाषाओं

की प्रेरणा स्त्रोत रहे वह मुर्दा कैसी ? नदी तो इसी में गौरव रखती है कि अनवरत रूप से प्रवाह शील रहे और अपने आश्रय वर्ती नहर-नालों को जल राशि प्रदान करती रहे, यही स्थिति संस्कृत की है।'

विश्व मोहन उपेक्षा से बोला, 'होती रहे, हम तो नित नवीन के उपासिक हैं श्रीकान्त जी। प्राचीन के प्रति कोई रुचि नहीं।'

श्रीकान्त को दुख हुआ था। जिस भाषा के महत्व को वाह्य- जगत मुक्त कण्ठ से स्वीकार कर रहा है उसे अपने ही देश में अनादृत किया जा रहा है। भीतर से चाय का आमन्त्रण आने पर श्रीकान्त ने जाने की आज्ञा चाही परन्तु विश्व मोहन ने टोक कर कहा, 'अजी आप हमारी श्रीमती जी के मास्टर साहब हैं। चाय पिये बिना नहीं जा सकेंगे।'

विवश-भाव से श्रीकान्त को बैठना पड़ा। चाय की मेज पर विश्व मोहन बराबर गप्पें हांकता रहा। कभी बम्बई के सरस जीवन की, कभी क्लबों के मनोरंजन की, और श्रीकान्त देखता रहा। मंजुला बहुत कम बोलती थी। कभी खाने-खिलाने की बात सलीके से पूछती थी।

दूसरे दिन मंजुला चली गई। श्रीकान्त का जीवन पुनः निश्चित ढर्रे पर चलने लगा। उसने सोचा, अच्छा है मंजुला का ब्याह विश्व मोहन से हुआ। उसके पास धन है, बंगला है, कारें हैं, यही तो स्त्रियाँ चाहती हैं! मंजुला की स्मृति धीरे-धीरे धूमिल से धूमिलतर होती गई और अब केवल श्रीकान्त के मन पर कभी-कभार वह चित्र हल्का सा उभरता है।

अब यह साधना जीवन में आ गई और उसका भी ब्याह होने जा रहा है। उसने मन को डांटा, वह क्या थाली के बैंगन

की भान्ति कभी इस लड़की की ओर कभी उस लड़की की ओर लुढ़कता जा रहा है ।

'भय्या, एक स्वैटर भी रख दूं ?'

रेखा ने उसे बुलाकर फिर कठोर भूमि पर ला पटका । वह सतर्क हो गया ।

'एक रख दो, सितम्बर में उधर शीत हो जाता है।

१२

हेमन्त अम्बाला स्टेशन पर मिल गया । हेमन्त ने सूटकेस ऊपर टिकाते हुए पूछा, 'मैं ने तो सोचा था तुम सो रहे होंगे ।'

'नहीं सो नहीं सका हेम । भीड़ बहुत रही ।'

'तो अब सोओ । मैं पहरा दे लूंगा ।'

हेमन्त हृदय का बड़ा सरल था और स्वभाव का प्रेमी । श्रीकान्त उसके हाथों में अपना और सामान का उत्तरदायित्व सौंप सो गया । हेमन्त भी सोया तो सही किन्तु सजग हो कर । ज़रा सी आहट से उसके नेत्र खुल जाते ।

अभी पो फटी ही थी कि गाड़ी हरिद्वार स्टेशन पर पहुंच गई । उतरते ही आपको समूचे भारत की झलक मिल जायेगी । यदि कोई भी एक साथ अपने देश के विभिन्न वेश भूषाधारी और विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को देखना चाहे तो इन तीर्थ स्थानों से बढ़ कर और स्थान नहीं मिल सकता । श्रीकान्त और हेमन्त भी उतरे तो ऐसी कई टोलियाँ उन्हें दीखी । सभी

लोग भक्ति भाव से 'हर हर गंगे' की साधु ध्वनि करते जा रहे थे। श्रीकान्त चाहे भिन्न दृष्टिकोण रखता था परन्तु प्रभात के शान्त सुहावने वातावरण में उसके भावुक हृदय को यह दृश्य बहुत भाया। हेमन्त के घर का वातावरण तनिक प्राचीनता की पुट लिये था सो वह हर की पौड़ी पर स्नान करना चाहता था। उतरते ही पूछा, 'दादा कितने दिन यहां ठहरेंगे ?'

'क्यों, ठहरने की बात तो नहीं है।'

'जरा स्नान करेंगे हर की पौड़ी पर।' हेमन्त ने मचल कर कहा।

'अरे, सभी स्थान तो गंगा है यहां।'

'नहीं भय्या, हर की पौड़ी का महात्म्य ही और है। भगवान की कसम तुम निरे नास्तिक हो।'

आत्म समर्पण करते हुए श्रीकान्त ने कहा, 'तो चलो तुम्हारी ही हो जाये। कहीं आस्तिकों की सूची में से तुम्हारा नाम न कट जाये।

दोनों सखा हर की पौड़ी की ओर चल पड़े। घाट पर पहुंचते ही गंगा की अद्‌भुत लहराती छवि ने शीतलता प्रदान की।

श्रीकान्त का मन और मस्तिष्क शान्ति सी अनुभव करने लगा। गंगा का जल अत्यन्त स्वच्छ और उज्जवल था क्योंकि वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी और जल का गहरापन धीरे २ घटता जा रहा था। श्रीकान्त को एक दम भारतेन्दु की पंक्तियाँ स्मरण हो आईं—

नव उज्जवल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरती बूंद मध्य मुक्तामणि पोहति।

किन्तु वहां चुभने वाली बात जो श्रीकान्त को लगती थी वह थी, ढेर के ढेर भिखमंगों का अस्तित्व। ठीक तो है हिन्दु धर्म दान प्रधान है। भिखमंगे न होंगे तो दानियों के दान का गौरव कहां रहेगा ? सो तीर्थ स्थान वाले धर्मात्माओं को व्यर्थ की उलझन में नहीं डालना चाहते। दुकानदारों के लिये तो बड़े बड़े किराये रखे गये हैं परन्तु भिखारियों को खुली छूट है। श्रद्धालुओं के प्रवेश करते ही मक्खियों की भांति भिन भिन्नाने लगते हैं।

उस दिन घाट पर विशेष रौनक थी। हेमन्त की जान पहचान का एक ब्राह्मण घाट पर तख्त लगाये था, सामान उसे सौंप निक्कर तौलिया ले दोनों मित्र आगे चले। एक स्थान पर खूब बाजे बज रहे थे। एक से पूछा, 'यह कैसा समारोह है भाई ?'

'देहली से कोई सेठ आये हैं, लड़के की बारात लेकर। प्रसन्नता के उपलक्ष्य में एक सौ एक ब्राह्मणों को भोजन करवाएंगे और प्रतिमाओं का नव श्रृंगार........।

श्रीकान्त को जैसे ग्लानि सी हो आई। सामने ही एक जीर्ण शीर्ण वस्त्रा स्त्री कोढ़ी पति को लकड़ी की गड्डी में बैठाये भीख मांग रही थी। थोड़ी दूर पर एक अन्धा कटोरा फैला कर बैठा था। शरारत से किसी बच्चे ने उसके कटोरे में पत्थर का टुकड़ा डाल दिया था और वह टटोल रहा था। यही है क्या धर्म का रूप ? हरकी पौड़ी पर जा कर श्रीकान्त ने हेमन्त को कहा, 'हेमन्त तुम यहाँ नहाओ, मैं उधर नहाऊंगा।'

'कसम से तुम खूब तंग करते हो दादा। यहीं गोता लगा लो न। आओ।' हेमन्त श्रीकान्त को कभी दादा, कभी भय्या कहता। जाने क्या स्वभाव था उस का। अनमने भाव से श्रीकान्त नहाने उतरा।

अगले दिन श्रीकान्त स्वामी ईश्वरा नन्द के आश्रम में जा टिका। स्वामी ईश्वरा नन्द कोई साधारण या बने हुये सन्यासी नहीं सच्चे कर्मयोगी हैं। लग भग पन्द्रह वर्ष पूर्व उन्हों ने सन्यास लिया था। जैसे ही पत्नी परलोक गामिनी हुई उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ था किन्तु दो पुत्रों के मोह ने उन्हें संसार में आबद्ध रखा। फिर जब एकाएक हैज़े की महामारी में दोनों पुत्र भी उन का मोह छोड़ गये तो उनके मोह बन्धन पूर्ण वेग से छिन्न हो गये। बाप दादा से प्राप्त सम्पत्ति बहुत थी पर व्यर्थ। घर बार छोड़ कर निकल पड़े। गेरुए वस्त्र भी रंगवा कर पहिन लिये परन्तु शान्ति नहीं मिली। जंगल-जंगल भटके, योगियों सन्यासियों की सेवा की किन्तु मन स्थिर न हो सका। तब स्वयं ही मनन करने लगे। बार बार नेत्रों के सन्मुख पुत्रों के भोले-भोले, प्यारे प्यारे मुख घूम जाते थे। वे परेशान थे क्या करें? अन्त में मन ने स्वयं ही शान्ति पाई। सर्वात्म वाद का चिन्तन करने से उन्हें लगा कि उनके पुत्र भिन्न रूप और भिन्नात्मा नहीं थे वे सब का रूप थे। यह प्रकाश होते ही वे सेवा व्रती हो गये हां वस्त्र गेरुए ही रहे क्यों कि वस्त्रों का उनके लिये कोई महत्व था ही नहीं। स्थावर सम्पत्ति को भाई-भतीजों में बांट कर चल सम्पत्ति का ट्रस्ट बना दिया। अतः इस आश्रम में अनाथालय, विद्यालय, औषधालय सभी थे। स्वामी ईश्वरा-नन्द की ख्याति दूर २ तक फैली थी।

इस आश्रम में आकर श्रीकान्त बहुत प्रसन्नता अनुभव करता था। स्वामी ईश्वरा नन्द को श्रीकान्त के आने का पत्र मिल गया था। उन्होंने आश्रम वासियों सहित उसका स्वागत किया। आश्रम यों तो ऊँचाई पर बना था किन्तु

वहां भी गंगा अपनी अभिराम घटा सदैव दिखाती रहती थी। श्रीकान्त को प्रातः और सांय घूमने में खूब आनन्द आता था। हेमन्त भी घूमने का शौकीन था। दोनों मित्र प्रातः सांय प्राकृतिक दृष्यों का आनन्द लूटते। शेष समय श्रीकान्त लिखने में या स्वामी ईश्वरा नन्द के साथ वार्तालाप में बिताता। बात ही बात में स्वामी जी ने पूछा, 'आजकल क्या करते हो श्रीकान्त ?'

'विशेष तो कुछ नहीं। लिखना और पढ़ना ही चलता है। मुझे लगता है कि आपके चरण चिह्नों पर चलना ही श्रेयस्कर होगा।

'क्या कहते हो, सन्यासी हो जाओगे ?'

'और कोई राह भी नहीं दीखती।'

'क्यों ?'

'आपका सेवा मार्ग ही मुझे जंचता है स्वामी जी। संसार की उलझनों से तो मन घबराता है।'

'पलायन कर रहे हो। घर ग्रहस्थी बसाओ श्रीकान्त। जीवन को अधिक से अधिक व्यस्त बनाओ।'

'आपने स्वयं तो सब छोड़ दिया' श्रीकान्त हंस कर बोला।

'मेरी बात और थी। तुम जैसे युवक वैराग्य ले लेंगे तो काम कौन करेगा समाज का। समझे, समाज में रहो और अपने व्यक्तित्व का सदुपयोग करो।

स्वामी जी की आराधना का समय हो गया था, वे चले गये तभी हेमन्त ने आकर कहा, 'दादा नौका विहार को चलोगे, आश्रम की डोंगी आज मुरम्मत हो गई है।

'चल हेमन्त।'

नौका विहार श्रीकान्त को विशेष रूप से प्रिय है। वह

चल पड़ा। सहसा स्मरण हो आया, ओह! कापी तो रह ही गई। वह सवेग भीतर गया और कापी ले कर लौट आया। कुछ ही क्षणों में उनकी नौका गंगा की लहरों पर राजहंसिनी सी नृत्य कर रही थी। हेमन्त डांडे चला रहा था। श्रीकान्त भाव मग्न उस स्थान पर बिखरे अनन्त सौंदर्य को निहार रहा था जिसे देख कर नेत्र तृप्त ही नहीं होते। अन्तरिक्ष की मंजिल तय करती हुई सान्ध्य सुन्दरी चुपके-चुपके हौले पृथ्वी के पर्यंक पर विश्राम करने को उतर रही थी। उसकी धूमिल छाया वातावरण को सुर्मई रंग में सराबोर कर रही थी। दूर—बहुत दूर क्षितिज की अछूती रेखा अस्ताचल की ओर जाते सूर्य की लालिमा से आंख-मिचौली खेल रही थी और श्रीकान्त की पेन्सिल कापी पर चल रही थी।

हेमन्त इस निस्तब्धता से अब उठा था। यदि ऐसे सुन्दर वातावरण में वह पाषाण सा मूक बना रहे तो क्या लाभ है इस नौका विहार का। खीझ कर वह बोला, 'श्रीकान्त भय्या यह दण्ड विहार है या नौका बिहार?'

चौंक कर श्रीकान्त बोला 'हेमन्त क्या है भाई?'

'दादा तुम तो हो कवि किन्तु मैं तो मनुष्य हूं। तुम पास बैठे रहो और मैं मूक पाषाण की भांति बैठा रहूं। तुम्हारी अन्तरात्मा इन वृक्षों, लहरों और पत्थरों से बातें कर सकती है किन्तु मैं तो जीते जागते साथियों से बात करना चाहता हूं।

श्रीकान्त सम्भल कर बोला, 'तो एक बात कहूं हेम?'

हेमन्त ने चप्पू चलाते हुए सिर हिला कर मानो आज्ञा दे दी। श्रीकान्त का मुख खिल गया था, उसके नयनों में शरारत थी। कहा, तो मेरे जैसे साथी से तुम्हारा काम पटेगा नहीं।

तुम्हें तो ऐसा साथी चाहिये जो मृदुल हो, सरस हो। ठीक है न ?'

निरीह भाव से हेमन्त बोला, 'ठीक तो है।'

'तो मैं कल से ही किसी ऐसे साथी की खोज करता हूं।'

अब हेमन्त ने समझा। वह भी ठहाका मार कर हंस पड़ा। शून्य वातावरण में उसकी हंसी गूंज कर नदी के स्वर में समा गई। हेमन्त बोला, 'बड़ी दूर की कौड़ी लाये हो दादा। किन्तु अभी तो मेरा बड़ा भाई है और तुम हो। मुझ से दो वर्ष बड़े। अपने राम को कौन पूछेगा।'

कह कर हेमन्त ने एक दीर्घ निश्वास सचमुच ही ली। श्रीकान्त देख कर खूब हंसा। फिर कापी खोल कर कहा, 'कुछ यों ही लिखा है, सुनोगे ?'

'सुनाओ, किन्तु ठहरो अन्धकार बढ़ रहा है नौका को घुमा लेने दो।'

नौका घुमा दी गई। अब धारा विरुद्ध थी और हेमन्त को खूब ज़ोर लगाना पड़ रहा था। श्रीकान्त ने हाथ बटाना चाहा तो कहा, अरे रहने दो मैं अकेला ही काफी हूं। कालेज में नौका विहार क्लब का तो मैं प्रधान था और विजेता भी। तुम अपनी कविता सुनाओ। हां इतना विश्वास रखना कि सुनने वाला एक दम पशु नहीं है।'

श्रीकान्त कविता गाने लगा। स्वर मधुर था। मन्द-मन्द समीर के साथ उसकी स्वर लहरी थिरकने लगी—गीत का भाव कुछ इस प्रकार था—तेरे इस, असीम, अनन्त, विकीर्ण सौंदर्य को लख मैं सोचता हूं तू कौन है ..कौन ? जो अदृष्य नील नभावरण से असंख्य रूप दिखा मुझे लुभाते हो। कौन हो जो क्षितिज की सीमाओं से झांक कर मुझे आमन्त्रण देते हो। कैसी सौरभ

बिखराते हो, कैसी श्यामलता, कैसी शोभा जो अनिवर्चनीय है प्रकृति के आंचल में भर देते हो कि वह सम्भाल नहीं सकती कभी नक्षत्रों के त्रिस बरसती है शोभा, कभी वर्षा की भीनी फुहार बन छलकती है ! मेरे मानस की हर धड़कन में आन्दोलन मचाने वाले कौन हो......कौन हो ?

श्रीकान्त का अन्तर्मन जैसे बार बार यही ध्वनि करने लगा......कौन हो......कौन हो ? गीत लहरी जैसे ही रुकी कि नौका घाट से आ टकराई। अब तक अन्धकार पूर्ण अधिकार उस वनाली पर जमा चुका था और चांदनो बिखर रही थी। तट पर स्थित वृक्ष श्रेणी मूक साधिका बन अपने लम्बे साये जल में डाल रही थी।

श्रीकान्त और हेमन्त को आश्रम में रहते लगभग एक सप्ताह हो गया। श्रीकान्त को उस वातावरण में आत्म चिन्तन का अच्छा अवसर था। आश्रम के पुस्तकालय में दर्शन एवं भक्ति सम्बन्धी प्रचुर साहित्य था। मध्याह्न के भोजन के उपरान्त कुछ विश्राम करके श्रीकान्त दो घन्टे वहां अध्ययन करने लगा। कभी-कभी स्वामी ईश्वरानन्द से भी इस विषय में बात चीत होती थी। जीवन कर्म क्षेत्र है, कर्म ही लक्ष्य प्राप्ति के साधन हैं किन्तु कर्म निस्वार्थ-भाव के सूचक होने चाहियें। स्वामी ईश्वरानन्द का कथन था कि आधुनिक युग के कर्म सत्व की अपेक्षा तमस् की ओर उन्मुख हैं इसी से असन्तोष और वैषम्य की स्थिति बढ़ती जा रही है । श्रीकान्त भी लगभग इसी ढर्रे पर सोचता था।

स्वामी जी का कार्यक्रम दक्षिण जाने का था सो उन्हों ने श्रीकान्त से पूछा, 'कितने दिन और ठहरोगे ?'

'जी, अभी तो एक पक्ष और ठहरुंगा ।'

'मैं तो परसों चला जाऊंगा । किन्तु तुम्हें कोई कष्ट न होगा। मैं कह जाऊंगा ।'

'आप चिन्ता न करें मैं स्वयं व्यवस्था कर लूंगा।'

हेमन्त कोलाहल शून्य उस वातावरण में रहते ऊब गया था। श्रीकान्त भी क्या है एक दम साधू तपस्वी। जंगल में लाकर डाल रखा है। तैयार हो कर श्रीकान्त के सिर पर आ धमका—

'भय्या !'

'क्या है।'

'मैं कहता हूं तुम मुझे इन्सान समझते हो या नहीं।'

'पशु तो नहीं समझता हेम ।'

'इन्सान समझते तो क्या यों जगल में पटक रखते। स्वयं तो वैरागी बने घूमते हो। बाबा यदि यों ही रहना है तो मुझे छुट्टी दो। घर वाले सोचते होंगे सैर कर रहा हूं। यह नहीं जानते कि वैरागी बाबा के साथ झख मार रहा हूं।'

श्रीकान्त पुस्तक पढ़ रहा था पटक कर बोला, 'चल बाबा चल। व्यर्थ कोप मत कर। चल कहां ले चलता है ?'

'आज हरिद्वार जायेंगे किन्तु शाम को लौट नहीं सकेंगे। आज वहीं रहेंगे।'

'क्यों।'

'हर बात में क्यों। सांझ को दीप दान का दृश्य मुझे खूब अच्छा लगता है।'

दीप दान का दृश्य तो श्रीकान्त को भी अच्छा लगता था। फूलों के बड़े २ दोनों में काफूर की बत्तियां धर कर जला दी जातीं और उन दोनों को लहरों के समर्पित कर दिया जाता। कुछ दूरी तक नन्हें २ दीप लहरों के ऊपर अठखेलियां करते और फिर लहरों में विलीन हो जाते थे। उस सांझ को श्रीकान्त

और हेमन्त ने मन भर कर दीप बहाये। अगले दिवस आश्रम में लौटने का कार्यक्रम था सो न हो सका। प्रातः काल जैसे ही श्रीकान्त स्नान के पश्चात चलने को हुआ कि भीड़ के रेले में एक भिखारी बालक कुचला गया। मां उसकी अन्धी थी और वह उसकी लाठी थामे चलता था। बच्चा मूर्छित पड़ा था। हाय, हाय सब मचा रहे थे किन्तु आगे आने को कोई प्रस्तुत न था। अन्धी मां बिलख रही थी। नेत्र न होने का जितना दुख आज उसे था उतना शायद कभी न था। श्रीकान्त ने लपक कर बच्चे को उठा लिया और हेमन्त को अन्धी के निकट छोड़ स्वयं अस्पताल ले गया। बच्चे के सिर पर चोट थी। डाक्टर ने देख कर कहा, 'ठीक तो हो जायेगा। किन्तु देख भाल की आवश्यकता होगी।'

'जी मैं इसकी देख भाल करूंगा।'

'आप ?'

'जी, आप मुझे इसका अभिभावक लिख दीजिये।'

श्रीकान्त बच्चे की शुश्रुषा में लगा। हेमन्त वापिस अम्बाला लौट गया। घर से पत्र आया था दुकान को नुक्सान हो रहा था। दोनों समय श्रीकान्त अन्धी को देख आता और पुनः बच्चे की देख भाल करता। अन्धी अपनी बन्द आंखों की पुतलियों को घुमाती फिराती जैसे अपने उपकर्त्ता की मुखावृति देखना चाहती हो फिर आशीर्वादों की झड़ी लगा देती

यह श्रीकान्त की परिचर्या का फल था कि बच्चा पन्द्रह दिन में स्वस्थ हो गया। अस्पताल से छुट्टी मिलते ही वह उसे माँ के पास छोड़ने गया। बच्चा उससे हिल गया था। उससे विलग होते समय रो पड़ा। शायद इस विचार से कि अब पुनः भीख मांगनी पड़ेगी। फिर वही दुत्कार और फटकार।

श्रीकान्त का प्यार पाकर वह अपनी पूर्वस्थिति भूल गया था। उसके रुदन से श्रीकान्त द्रवित हो उठा। उसने सोच लिया कि उन दोनों मां पुत्र को साथ ले जाये गा। एक आश्रम खोलने की योजना उसके मन में पहले ही थी अब वह सुदृढ़ हो गई। रहा धन का प्रश्न उसने सोचा वह हो ही जायेगा। भविष्य की राहें स्वयं बनती जाती हैं यदि वर्तमान को सम्भाल लिया जाये तो। कहा, रो मत, मैं कल लौट कर तुम दोनों को साथ ले जाऊंगा।'

बालक मन में सुनहरी आशा के घरौंदे सजाने लगा।

आश्रम में पहुंचते ही श्रीकान्त को तार मिली। मां सख्त बीमार थी। चिन्ताग्रस्त मन से वह सामान बांधने लगा। व्यवस्थापक ने आकर पूछा कि वह इतने दिन कहां रहा। श्रीकान्त ने सम्पूर्ण घटना सुना कर लौटने की बात कही। व्यवस्थापक बोला, 'जैसी आपकी इच्छा। मैं स्वामी जी को सूचना दे दूंगा।'

दूसरे दिन श्रीकान्त अपने दोनों संगियों को ले कर अमृतसर के लिये चल पड़ा।

१३

सरला देवी की अवस्था कुछ अधिक बिगड़ गई थी। दुर्बलता बढ़ गई थी और दिन में कई बार मूर्च्छना के दौरे पड़जाते थे। जैसे ही चेतना लौटती वे बार २ पूछती, कान्त नहीं आया

अभी । बार २ उनके नेत्र द्वार की ओर उठते और निराश से लौट आते । रेखा चिन्ता के मारे आधी रह गई थी । इस संकट में यदि माधवी का सहयोग उसे न मिलता तो न जाने क्या होता । अकेली लड़की कैसे सम्भालती ? परन्तु अब दोनों मिल कर मां की सेवा में व्यस्त रहती थीं । माधवी का स्नेह इन दिनों रेखा का रक्षा कवच सिद्ध हुआ । रेखा सोचती भाग्य अदृष्य में रह कर भी मानव जीवन की व्यवस्था कर रखता है । पड़ोस के डाक्टर साहब भी वरदान सिद्ध हुए थे । नहीं तो आजकल डाक्टरों के नखरे ही कम नहीं । जैसे ही डाक्टर गुप्ता को पता लगा था कि उनके घर कोई पुरुष नहीं है, वह स्वयेंव दोनों समय सरला देवी को देखने आते थे । रेखा के यह कहने पर कि भय्या होते तो......उन्होंने टोक कर कहा था, 'आप तनिक भी चिन्तित न हों मैं स्वयं देख जाया करूंगा ।

'मां को कोई भय तो नहीं डाक्टर साहब ?'

यद्यपि माँ की अवस्था 'शोचनीय थी पर रेखा के पीले मुख को देख कर डा० गुप्ता ने मुस्करा कर कहा, 'नहीं' ऐसी कोई बात नहीं आप शुश्रुषा करेंगी तो फल अवश्य मिलेगा । आपके भाई कहां हैं ?

'वे आजकल हरिद्वार की ओर हैं मैंने सूचना भिजवादी है ।'

श्रीकान्त को तार दिये पांच दिन हो गये किन्तु न श्रीकान्त और न उसका उत्तर । क्या करे रेखा ।

दोपहर का समय था । मां सो रही थी और रेखा मां के लिये सागूदाना तैयार कर रही थी । हाथ सागूदाने में चम्मच चला रहे थे और मन कहीं और था । भगवान न करे यदि मां को......चम्मच रेखा के हाथ से छूट गया । इस कल्पना

ने ही उसे सिहरा दिया। उसके नेत्र अश्रुकणों से पूरित हो गये। फिर जैसे मन को झटक दिया, नहीं, यह नहीं हो सकता। भगवान इतना अन्यायी न होगा। भक्तों ने उसे करुणानिधि, दीनाबन्धु कह कर पुकारा है सो क्या व्यर्थ है। वह सजग हो कर चम्मच हिलाने लगी उसका अन्तर्मन बार बार उसे पुकारने लगा।

'रेखा।' अरे यह तो मां हैं। सागूदाना उतारा और भागी। एक दम से अपने को माँ के बिस्तर पर डाल कर प्रेम मय स्वर से पुकारा, 'मां।'

'रेखा।' मां का रक्त हीन पीला झुर्रियों भरा हाथ रेखा की पीठ पर घूम रहा था। कितनी अनुपम शान्ति थी मां को उस शरण में। रेखा को लग रहा था जैसे प्यार को शतशः धाराएं उसके मन प्राणों को प्लावित कर रही हों। लम्बी निस्तब्धता के पश्चात मां ने रेखा के मुख को निकट खींच कर चूम लिया। वात्सल्य विह्वल भाव से वे बार २ उसका सिर सहलाने लगी।

'मां।'

'रेखा, मैं चली जाऊं तो तू रोना मत बच्ची।'

'रेखा पर जैसे सैकड़ों हथोड़ों की चोट पड़ी। चीख कर वह बोली—'मां! ऐसा मत कहो मां।'

'कान्त नहीं आया।'

'मैं आ गया मां।' श्रीकान्त प्रवेश करते ही बोला और दौड़ कर मां के चरणों से लिपट गया। न जाने दोनों भाई बहिन कितना समय मां से लिपटे रहे। मां यद्यपि दुर्बल थी परन्तु असीम शान्ति थी उनके हृदय में।

आहट पाकर रेखा ने सिर उठाया तो डाक्टर गुप्ता खड़े थे।

'भय्या, डाक्टर साहब ?'

श्रीकान्त उठ बैठा। उसके नेत्र कुछ जानने को उत्सुक थे। डाक्टर उसके नेत्रों की मूक वाणी समझ गये और सांत्वना पूर्ण स्वर में कहा, 'घबराने की बात नहीं है श्रीकान्त जी।'

श्रीकान्त के नेत्रों में कृतज्ञता थी डाक्टर के प्रति। वह सम्भल गया था, आवेग शान्त हो चुका था। आज सरला देवी के अधरों पर मुस्कान थी। डाक्टर बोले, 'आज तो आप अच्छी दीख रही हैं।'

'हां डाक्टर साहब।' रेखा आश्चर्य चकित रह गई अभी तो माँ उसे जाने की बात कह रही थी। भय्या के आने में क्या चमत्कार था वह समझ न सकी। श्रीकान्त डाक्टर साहब से मां के विषय में बात करने लगा। रेखा इन्जैक्शन की सूई गरम करने भीतर चली गई। श्रीकान्त को डाक्टर गुप्ता का परिचय यद्यपि पहले भी था किन्तु आज उसकी कृतज्ञता किसी भी प्रकार मन में नहीं समा पा रही थी। इन्जैक्शन देकर डाक्टर गुप्ता चलने लने तो वह भी साथ हो लिया। राह चलते-चलते डाक्टर बोले, 'आपकी बहिन में सेवा करने की भावना देख कर मैं चकित रह गया हूं श्रीकान्त जी।'

'जी वह बड़ी स्नेह मयी है फिर मां के लिये तो प्राण देती है।

'सच जानिये यह उसी की सेवा है जिसने मां को बचा लिया है।

थोड़ी दूर छोड़ कर श्रीकान्त लौट आया। रेखा मां को दबा रही थी। श्रीकान्त के आते ही मां ने कहा, 'अब

छोड़ भी दे रेखा अब दबाने की आवश्यकता नहीं।'

'हां छोड़ दे बहिन और यह कार्य अब मुझे सौंप दे।'

'यह कौन सा बड़ा कार्य है भय्या ?' रेखा चहक कर बोली। इतने दिन में भाई के बिना वह आधी हो गई थी।

'डा० गुप्ता तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रहे थे।'

श्रीकान्त ने ध्यान नहीं दिया किन्तु यह शब्द सुनते ही रेखा के कर्णमूल रक्तिम हो उठे थे। वह बहाने से उठ गई। श्रीकान्त ने मां को सारी बात बताई कि तार जब पहुंची तो वहां वह था ही नहीं। हरिद्वार में भिखारी बालक के साथ अस्पताल में था। जैसे तार मिली वह एक दम आ गया।

तब तक टटोलता-टटोलता पारस भी आ गया। स्वर पहचान कर बोला, 'अहा भय्या जी, आ गये। मैं कब से याद कर रहा था। मां जी को बहुत कष्ट हुआ आपके पीछे।'

'हट रे व्यर्थ ही मेरे कान्त को मत डरा।'

वातावरण में से विषाद के बादल छट गये थे। रेखा आ कर बोली, 'पारस तू दोपहर को किधर चला गया था ?'

'बहिन जी, मां के लिये प्रार्थना कर रहा था। यह पास के मन्दिर में।

मां गद गद हो कर बोली 'पारस इन बूढ़ी हड्डियों को कब तक जिलाना चाहता है ?'

'मां, ऐसा न कहो, तुम्हारे स्नेह जल के बिना हम सब पौधे सूख जाएंगे।'

'आ मेरे पास बैठ।' मां ने पुकार कर उसे निकट बैठा लिया।

'भय्या चलो तो मुंह हाथ धो कर कपड़े बदल डालो। मैं चाय बना दूं।'

श्रीकान्त रेखा के साथ दूसरे कक्ष में चला गया। पारस मां को उनका प्रिय भजन सुनाने लगा ।

रेखा झटपट चाय बना लाई जब तक श्रीकान्त गुसलखाने से लौटा, सब तैयार था। चाय पीते-पीते श्रीकान्त अपनी यात्रा की बातें सुनाता रहा और रेखा सुनती रही ध्यान मग्न। फिर रेखा ने साधना के ब्याह की कहानी सुनाई। श्रीकान्त निरन्तर अनमनस्यक रहा किन्तु जब रेखा ने कहा,

'वे लोग तो बहुत ख़राब निकले भय्या ।'

'क्या ?' श्रीकान्त चौकन्ना हो गया।

'हां, यदि माधवी दीदी समय न सम्भालती तो साधना का ब्याह ही रह जाता।'

तब रेखा ने संक्षिप्त रूप से बताया कि वे दहेज़ के लिए अड़ गए थे और सिद्धान्त का तो जैसे एक दम दीवाला निकाल चुके थे। लिखा था पचास बाराती लायेंगे और ले आये अस्सी। तिस पर चालीस तो स्त्रियाँ थीं। मिलनी के रुपये देते देते बेचारों का कचूमर निकल गया। कितने कमीने थे गिन गिन कर ऐरे गैरे नत्थू खैरे सब की मिलनी ली और फिर लड़के की घड़ी नहीं है, रेडियो नहीं है। एक दम वावेला सा मचा दिया। माधवी ने सहायता की तो काम बना ।

'साधना चुप-चाप सह गई।' आश्चर्य से श्रीकान्त बोला ।

'क्या करती, रक्त के घूंट पी रही थी। वह तो मण्डप से उठ जाने को तैयार थी पर उसकी मां, न जाने इन स्त्रियों के दिमाग पर पत्थर पड़ जाते हैं भय्या। जानबूझ कर लड़की को ऐसे कसाईयों के हाथ में सौंप दिया।'

श्रीकान्त चुप हो रहा उसके नेत्रों के सन्मुख दुल्हन रूप में अलंकृत साधना का चित्र नाच रहा था। गोरे वर्ण पर लाल

चूनरी खूब खिली होगी। तभी ध्यान भंग करते हुये रेखा फिर बोल उठी, 'माधवी दीदी को बहुत बुरा लगता है। साधना जैसी सुन्दर गुणवान लड़की का भविष्य क्या होगा ? वे कई बार कह चुकी है।'

'हमारे समाज में एक नहीं अनेक साधनाएं ऐसे ही परिस्थितियों का शिकार हो जाती हैं रेखा। अभी इस समाज को जागने में शताब्दियां पड़ी हैं।'

हरिद्वार से जिस अन्धी और बच्चे को वह लाया था उसे माधवी के नारी मन्दिर में भेज दिया गया। बालक वहां पढ़ने लगा। कुछ दिन पश्चात श्रीकान्त नारी मन्दिर गया तो बालक में परिवर्तन पाया। माधवी ने कहा, 'बालक मेधावी है श्रीकान्त जी। आप तो कीचड़ में से कमल ले आये हैं।'

'ऐसे हज़ारों बच्चे राह गलियों में भटक रहे हैं माधवी दीदी। मैं तो सोच रहा हूं कि नारी मन्दिर के साथ ही बच्चों का आश्रम भी सम्बन्धित कर दिय जायें।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं श्रीकान्त भाई।

फिर बात ही बात में पूछा, 'मां कैसी हैं अब ?'

'ठीक हैं आप को याद कर रही थी कल।'

'मैं आऊगी, आपकी मां सचमुच वात्सल्य की अनुपम निर्झरा है। वहां मुझे शान्ति मिलती है।'

१४

इतवार का दिन था। माधवी के पिता कार्य वश देहली गये हुए थे। माधवी ने नारी मन्दिर का निरीक्षण किया और

लौट चली। राह में विचार आया कि साधना के ब्याह के पश्चात कभी उसकी मां बहिनों को नहीं देखा। वह घूम पड़ी और रिक्शा लेकर वहां जा पहुंची। बाबू रामनाथ बाहर ही बैठे नई अखबार देख रहे थे। चौंक कर बोले, 'अरे माधवी बेटी है। साधना के जाने के पश्चात तो तू हमें एकदम भूल गई।'

'यह कैसे हो सकता है। काम ही कुछ अधिक रहा फिर रेखा की मां बीमार थी। साधना का पत्र आता है क्या? मुझे तो एक बारगी ही भूल गई।'

ला० राम नाथ के नेत्र कोर भीग गये। साधना उनकी बड़ी लड़की थी। उसे वे खूब प्यार करते थे। लड़की की विदा ने तो कण्व जैसे तपस्वी को भी द्रवित कर डाला था फिर राम नाथ तो साधारण सामाजिक मनुष्य थे।

माधवी भीतर चली गई। सरिता पढ़ रही थी और सावित्री देवी परितोष की जुराब बुन रही थीं।

'अभी से बुनाई शुरु कर दी मासी जी।'

'क्या करूं सर्दियां आ रही हैं साधना तो है नहीं इस बार।

सावित्री देवी भी रो पड़ी। माधवी सोचने लगी कैसा विधान है यह। ब्याह न हो तो मुसीबत, हो जाये तो मुसीबत।

'साधना का पत्र आया मासी जी?'

'एक ही लिखा है जाकर। सच कहूं माधवी ऐसे लोभियों से नाता जोड़कर मुझे सुख नहीं मिला। रिश्ते सम्बन्ध इसलिये नहीं होते कि जोंक बन कर दूसरों का रक्त तक चूस जायें।'

'यह तो आपको पहले देखना चाहिये था। साधना तो कदम उठा रही थी विद्रोह का आपने उठाने नहीं दिया।'

'तुम तो निरी बच्ची हो बेटी। समाज में रहना है हमें। अभी दो बेटियों के विवाह और करने हैं।

'तो क्या है, आप लोग स्वयं रुग्ण समाज को प्रश्रय दिये जा रहे हैं। इसकी एक ही दवा है परिवर्तन किन्तु है यह कड़वी दवा।'

'मैं तो इन बातों को समझती नहीं, साधना को जाने तूने क्या पढ़ा दिया था सो वह भी ऐसी बातें करने लगी थी। मैं तो इतना जानती हूं कि लड़कियाँ पराई धरोहर होती हैं।'

माधवी चुप हो रही। इन लोगों को समझाना अन्धे के आगे मोती बिखराना है। फिर सरिता के पास चली गई। वह इन दिनों कालेज के प्रथम वर्ष में थी। सौभाग्य से उसको स्थान मिल गया था कालेज में। माधवी ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा, 'खूब पढ़ती है सरो, साधना की याद नहीं आती।'

'खूब आती है दीदी।' और वह भी रो पड़ी।

वहां से माधवी रेखा के घर आई। श्रीकान्त कहीं बाहर जाने को तैयार हो रहा था। उस को देख कर रुक गया। रेखा की परीक्षा निकट थी वह पुस्तकों में उलझी हुई थी। माधवी को देखकर पुस्तक पटक दी और बांह पकड़ कर बोली, 'कितने दिन पश्चात आई हो दीदी?'

'तो तू रूठी रही है, दीदी को एकाध काम हो तो तब तो...'

माँ पूजागृह से निकल आई थी। माधवी को देखा तो खिल उठीं।

'माधवी बेटी आज खाना खाये बगैर न जा सकोगी।'

'सो तो पहले ही सोच चकी हूं मां।'

सुन कर सरला देवी आनन्द से भरपूर हो गईं। दूसरों को खिला कर उन्हें परम सन्तोष मिलता था। रेखा मां के साथ हाथ बटाने रसोई में चली गई।

'आप जा रहे थे कहीं शायद ?'

'अब न जाऊंगा ऐसा कोई आवश्यक नहीं है।'

'आज कल टयूशनें तो कम होती होंगी।'

'जी हां, मेरे दो एक मित्र पीछे लगे हैं एक प्राइवेट कालेज खोलेंगे। क्यों कि जीवन के साथ रोटी की समस्या तो जुड़ी ही रहेगी। आपकी तरह मेरे पास पैतृक सम्पत्ति तो है नहीं।'

माधवी हंस पड़ी। श्रीकान्त की बात ठीक ही थी। माधवी के पिता जी का व्यापार अभी भी शिखर पर था। और कोई लड़की होती तो उसका जीवन ही और होता परन्तु माधवी का जीवन सर्वथा त्याग और तप का प्रतिरूप था। अब उसके पिता उसे कुछ नहीं कहते थे। वे जान गये थे कि उनकी बेटी किसी प्रकार भी विचलित नहीं हो सकती। सो उसकी खुशी ही उनकी खुशी थी और अब तो माधवी की कीर्ति भी सर्वत्र फैल गई थी। बड़ी बड़ी महिला सभाओं में उसे आमन्त्रित किया जाता था। उसके काम की सराहना होती थी। नारी मन्दिर उसके स्वप्नों का मन्दिर था।

'डाक जी।'

यह डाकिये की पुकार थी। रविवार होने के कारण डाक की कोई आशा न थी इस लिये सब उत्सुक हो उठे। श्रीकान्त पत्र लेने गया किन्तु तुरन्त लौट कर कहा, 'तुम्हारा पत्र है रेखा, हस्ताक्षर करके लेलो।'

रेखा जा कर पत्र ले आई। चहक कर बोली, 'साधना का है दीदी।'

साधना का पत्र है सब उत्कंठित हो गये थे क्योंकि ब्याह के पश्चात पहला पत्र उसने लिखा था। जब रेखा को लिखा है तो माधवी को भी अवश्य आया होगा परन्तु माधवी तो यहां है। रेखा ने पत्र पढ़ा तो असन्तोष की कुछ रेखाएं उसके मुख पर उभर आईं।

'क्या लिखती है साध ?'

पत्र आगे बढ़ा कर रेखा बोली, 'स्वयं ही पढ़ कर देख लो दीदी कुछ भी गोपनीय नहीं है।'

माधवी ने पत्र लेलिया और पढ़ने लगी। लिखा था–

प्रिय रेखा,

प्यार।

जब से आई हूं पत्र ही नहीं डाल सकी। जीवन के इस परिवर्तन को मन सहसा स्वीकार नहीं कर सका। नहीं जानती क्यों ? अभी यहां के लोग कुछ अनजाने से लगते हैं। दैहिक रूप से सभी साधारण सम्बन्धियों जैसे ही हैं परन्तु मानसिक रूप से सर्वथा दूर दीखते हैं। यहां का वातावरण हमारे घर से भी कहीं अधिक रूढ़िग्रस्त है। सच, आज जबकि पूर्णरूपेण मैं ने परिस्थितियों को आत्मसमर्पण कर दिया है तब भी मन शंकित सा क्यों है ? यों लगता है कि जीवन का यथार्थ हमारे चिन्तन से कहीं अधिक कठोर एवं कटु है।

तुम्हारा स्नेह, माधवी दीदी का प्यार हृदय को कचोटता है रेखा। तुम सब से सदा के लिये विलग हो गई हूं किन्तु मन की दूरी न हो तो शरीर की दूरी कुछ महत्व नहीं रखती।

शेष फिर कभी......मां को प्रणाम। श्रीकान्त भाई को नमस्ते। प्यार से,

तुम्हारी

साधना

माधवी ने यह पत्र ऊंचे स्वर में पढ़ा था । श्रीकान्त ने भी सुना किन्तु बोला नहीं। माधवी ने पत्र की तह लगाते हुए कहा, 'साधना नये सम्बन्धों से खुश नहीं दीखती ।'

'खुश हो भी कैसे सकती है। दीदी, देखा तो था कैसे लालची थे कम्बख्त। मैं तो कहती हूं साधना को अब भी तंग करेंगे।' 'लड़कियों के जीवन की यही समस्या तो उत्कट है । अच्छा घर वर मिल जाये तो जीवन स्वर्ग हो जाता है नहीं तो नरक।' पीछे से आकर सरला देवी ने कहा और भोजन तैयार होने की सूचना दी। तीनों जने हाथ धो कर रसोई में जा बैठे। माधवी देखकर हैरान रह गई कि थोड़ी ही अवधि के भीतर कैसे यह सब प्रस्तुत हो गया और फिर उसके मन भावने पदार्थ। मटर वाले नमकीन चावल, दही बड़े तो थे हां दो तीन सब्जियां भी बनी थीं।

'मां आपने फिर वही तकल्लुफ किया।'

'नहीं बेटी, यह कार्यक्रम तो कान्त ने कल से बना रखा था। इतवार को दोनों भाई बहिन विशेष भोजन पसन्द करते हैं।'

मां साथ खाने नहीं बैठीं। माधवी ने अनुरोध किया तो बोलीं, 'मैं तो बेटी इन दोनों को खिला कर ही खाती हूं।'

वे तीनों खाते रहे और सरला देवी सरस बातें करती रहीं, उन्हें हंसाती रही। अपने अतीत की बातें, अपनी सुखद स्मृतियां जिन्हें सुना सुना कर उन्हें आज भी पुलक सी अनुभव हो रही थी। बात ही बात में सरला देवी ने अपने युग की बात छेड़ दी। जब नासमझ लड़कियों के ब्याह होते थे अब तो युग एक दम आगे छलाँग लगा गया था। उन्हों ने अपनी बात तो नहीं सुनाई परन्तु अपने ही गांव की एक लड़की के विषय में बताया कि जब उसका ब्याह हुआ तो वह छः वर्ष की थी। उसे ब्याह

के विषय में क्या ज्ञान हो सकता था। हां! गहनों और कपड़ों को देख कर उसका मन खूब प्रसन्न था किन्तु सब से अधिक उलझन तो तब आई जब पालकी में बैठाने का अवसर आया। वह हठ कर बैठी कि पालकी में ससुराल नहीं जायेगी, जायेगी तो ससुर के घोड़े पर बैठ कर। बच्ची थी, हर प्रकार के प्रलोभन दिये गये किन्तु व्यर्थ। ससुर बेचारे भलेमानस थे। हठ को स्वीकार कर लिया। अब सुसराल का गांव निकट आया तो फिर चिन्ता हुई परन्तु बच्ची का हठ पूर्ण हो चुका था। अब वह रुपयों के प्रलोभन में आगई और चुपचाप पालकी में जा बैठी।

रेखा और माधवी खिलखिला कर हंस पड़ीं। श्रीकान्त भी धीमे धीमे मुस्करा उठा। माधवी ने कहा, 'बड़ी मनोरंजक कहानी है।'

'अरी बेटी तब तो ऐसी घटनाएं होती थीं। बच्चों के ब्याह क्या थे गुड्डे-गुड्डियों के ब्याह थे।'

'आपकी शादी कितनी आयु में हुई थी?'

मैं तो फिर भी बारह वर्ष की हो गई थी पर लोगों की न जाने कितनी कटूक्तियों का सामना मेरे माता-पिता को करना पड़ा था। कान्त के पिता तो तब आठवीं में पढ़ते थे।'

माधवी हंसते हंसते लोट पोट हुई जा रही थी। बातों में मग्न रहने से कुछ अधिक भी खा गई थी इस लिये जब फिरनी का प्रश्न उठा तो एक दम चौंक कर बोली, 'बस रेखा, अब और नहीं खाया जायेगा।'

'दीदी अब खानी पड़ेगी। हां बीच में दस पन्द्रह मिनट का अवकाश ले लो।'

माधवी समझ गई कि इस अनुरोध से छुटकारा पाना सहल नहीं होगा सो कहा, 'अच्छा भई यही सही किन्तु फिर यहीं ढेर हो जाऊंगी।'

'माधवी दीदी इतवार का पूरा लाभ उठाना चाहिये।' श्रीकान्त भी बोल पड़ा। सरला देवी जब खाने बैठीं तो माधवी ने देखा उन्हों ने कोई भी वस्तु न ली थी। मूंग की दाल और अदरक की सब्जी।

'मां यह क्या हमें तो सब खिला दिया और स्वयं।'

'तुम्हारी तो खाने की आयु है बेटी।'

उस दिन माधवी शाम तक वहां डटी रही। श्रीकान्त दूसरे कमरे में लेटा। दोनों सखियां खूब प्रसन्न रहीं। माधवी का जीवन एकाकी चल रहा था। इस परिवार में आकर वह एकाकी पन अधिक अनुभव करने लगी थी। सोचती थी कि उसके जीवन में भी क्या कभी ऐसे सरस क्षण आ सकेंगे। किन्तु ......तत्क्षण ... मकरन्द का सुन्दर मुख उसके नेत्रों के सम्मुख घूम गया और हृदय की गहराईयों में कड़वाहट सा भर गया। नहीं, उसका जीवन कभी प्यार की निर्मल स्त्रोत्स्विनी से प्लावित नहीं होगा। वह निर्निमेष भाव से छत की ओर देखने लगी। उसके नेत्रों में जलकण लहरा आये। रेखा कहीं उसकी भावुकता को भांप न ले उसने मुख दूसरी ओर फेर लिया।

श्रीकान्त और रेखा माधवी को कोठी तक छोड़ने गये परन्तु मार्ग भर वह गम्भोर ही बनी रही। उनकी बातें सुन कर केवल हां, न, कर छोड़ती थी। माधवी की प्रफुल्लता न जाने कहां चली गई थी। रेखा ने पूछने का प्रयत्न भी किया तो माधवी ने टाल दिया।

१५

बाहर बरामदे में बैठ कर सावित्री देवी पति की प्रतीक्षा कर रही थी। वे परसों साधना को लेने गये थे। दूसरे ही दिन आने को कह गये थे किन्तु आये नहीं इसी लिये सावित्री के मुख पर चिन्ता की रेखाएं थीं। साधारण प्रथा यह है कि प्रथम बार भाई ही बहिन को लिवाने जाये परन्तु परितोष बहुत छोटा था वह अभी रीति व्यवहारों को तनिक भी समझता न था सो बाबू राम नाथ को स्वयं जाना पड़ा। कल रात को आने को कहा था इस लिये अन्तिम गाड़ी तक सावित्री ने प्रतीक्षा की। भाई बहिन भी दीदी के आगमन की बाट जोह रहे थे परन्तु जब निद्रा देवी ने अधिक शक्ति-परीक्षण किया तो सरिता के अतिरिक्त दोनों ने पतवार छोड़ दिये और स्वयं को बह जाने दिया। दस-ग्यारह बजे तक तो मां-बेटी वैसे ही जागती रहीं फिर सरिता सो गई किन्तु सावित्री देवी मां थीं उन्हें चिन्ता के मारे नींद ही नहीं थी, वे भगवान से मंगल मनाने लगीं। आ जा कर वही सबका अन्तिम अवलम्ब है और सावित्री देवी स्वभाव से ही श्रद्धालु भक्त थीं। ज्यों त्यों करके रात व्यतीत हुई। न जाने वे एकाध घन्टा सोई भी या नहीं। प्रातः उठ कर स्नान इत्यादि किया और मन्दिर गईं। वहां से लौटीं तो कुछ शान्ति थी हृदय में किन्तु फिर वही चिन्ता। बार-बार बरामदे में आतीं और आशा पूर्ण दृष्टि से सड़क की ओर

देखतीं । कदाचित कोई टांगा या रिक्शा आ जाये । तभी सरिता ने आकर कहा, 'मां चिन्ता करने से क्या होगा ? पिता जी गये हैं वे दीदी को लेकर आयेंगे । रात को भी तुमने कुछ खाया नहीं अब तो खालो ।'

सरिता अब समझ दार होने लगी थी । विशेषतः साधना के जाने के पश्चात वह अपना उत्तरदायित्व समझने लगी थी । घर में अब वही तो थी बड़ी । उसका चापल्य दूर होता जा रहा था, वह गम्भीर होती जा रही थी । बाल्यकाल अपनी सीमाएं बांध रहा था और यौवन उघाम वेग से आ रहा था । बचपन में वह साधना से काली लगती थी पर अब यौवन की लुनाई फूट रही थी । सरिता के नयन-नक्श तो साधना से भी सुन्दर थे । सावित्री ने सरिता की ओर देखा, वह टाल नहीं सकी । भीतर चली गई । बच्चों को खिला कर फिर स्वयं खाया । खाने से कुछ ढारस सा हुआ । उन्हें लगा जो शक्ति शिथिल हो रही थी वह पुनः लौट आई है ।

बाहर रिक्शा ठहरने की ध्वनि हुई और तीनों भाई बहिन भागे । साधना रिक्शा से उतर रही थी । उतरते ही भाई बहिन 'दीदी' 'दीदी' कहते जा लिपटे । साधना रो रही थी । राम नाथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ से इस मिलन को देख रहे थे । इसके पश्चात साधना दौड़ कर मां के गले से लिपट गई । मां-बेटी दोनों ही जी भर कर रोईं । राम नाथ खीझ कर बोले, 'यह क्या तमाशा है रोने रूलाने का । साधना इतनी समझ दार हो कर—— ।'

साधना सम्भल कर अलग हो गई । किनारीदार साड़ी और आभूषण पहने वह बड़ी सुन्दर लग रही थी । परन्तु

मां ने ध्यान से देखा उसकी बेटी कुछ कमजोर हो गई है । शरीर तो वैसा ही है परन्तु मुख पर वह रक्ताभा नहीं है ।

'दोदी क्या सास ने खाने को नहीं दिया ।' सरिता ने मज़ाक करते हुए कहा

'जा री लेजा दीदी को भीतर । कपड़े इत्यादि बदलवा ।'

सरिता दीदी के साथ भीतर चली गई तो सावित्री देवी राम नाथ से साधना की ससुराल की बातें पूछने लगी । राम नाथ बोले, 'बिटिया कुछ खुश नहीं दीखती । इसका ससुर है तो अच्छा परन्तु है जोरु का दास । घर भर की घुन्डी इसकी सास घुमाती है ।'

'अभी इतनी शीघ्र परिचय भी क्या मिल सकता है ।' सावित्री देवी को जैसे विश्वास नहीं आ रहा था । हां उनके प्रलोभन की बानगी तो ब्याह में देख चुकी थी फिर भी सोचती थी कि स्थायी सम्बन्ध जुड़ जाने पर नातेदार एक दूसरे के सुख-दुख के संगी हो जाते हैं । साधना व्यवहार में इतनी चतुर और मीठी थी कि सास को अवश्य वश में कर लेगी । वस्त्र इत्यादि बदल कर साधना मां के निकट आ बैठी । हालांकि बेटी उसी घर से जाती है परन्तु ब्याह होते ही एक अद्भुत सा विलगाव सा हो जाता है । बेटी समझती है कि इस घर में अब वह पराई है, मां समझती है बेटी कुछ दिन की पराहुनी बन कर आई है । सरिता को मां ने रसोई में भेज दिया और स्वयं उससे पूछताछ करने लगी । यदि लड़की ससुराल से सन्तुष्ट हो कर आये तो मां के लिये इससे अधिक सुख की बात ही नहीं होती । उसके हृदय में जैसे शीतलता का निर्झर बह उठता है ।

'कितने दिन रहोगी साध ?'

साधना अभी भी ससुराल के नाम से लज्जाती थी। उसके कर्णमूल लाल हो उठे। फिर भी उत्तर तो देना ही था कहा, "आठ दिन।'

आठ दिन, इन दिनों में तो हमारी तैयारी भी न होगी। तेरी सास तो समझदार होगी क्या वह नहीं जानती कि लड़कियों की विदा इतने दिनों में किस प्रकार हो सकती है।

'मां उसने अभी कोई लड़की विदा नहीं की, एक ही लड़की है सो भाइयों से छोटी है।'

अच्छा, वह कला बारात में भी तो आई थी। रंजीत कैसा है ?

नवविवाहिता साधना पति के विषय में क्या कहे। वह कुछ भी बोल न सकी। इतने थोड़े समय में केवल इतना ही जान सकी थी कि उसकी सास एक दम घर की डिक्टेटर है। पति से लेकर पुत्रों तक उसकी धाक चलती थी और किसी में साहस न था कि उसके सामने चूं तक कर सके। उसने तो यहाँ तक देखा था कि उसका पति मां से पूछे बिना सिनेमा तक नहीं जा सकता था। दबम इतनी कि कौड़ी-कौड़ी, पाई-पाई का हिसाब रखती थी। यों साधना आज्ञा पालन के पक्ष में थी। बच्चों को मां का आज्ञाकारी होना ही चाहिये किन्तु यह तो दब्बूपन है कि बच्चे मां के सम्मुख मूक बकरी के बच्चे से बने रहें।

सांझ को साधना रेखा से मिलने गई। ब्याह का प्रमाण पत्र मिल गया था अतः मां को चिन्ता नहीं थी केवल सरिता ही साथ गई। रेखा भाग कर गले से जा लिपटी।

'हाय साध, तू कैसी प्यारी लग रही है।'

'हिश् ।' साधना ने झटक दिया । साधना वास्तव में सुन्दर लग रही थी । औरंगाबादी तिल्लई बार्डर की साड़ी में वह अप्सरा सी दीखती थी । तिस पर ब्याह की लाल चूड़ियां, विशाल मस्तक पर सौभाग्य बिन्दु और मांग में सिन्दूर सभी उपकरण साधना के नैसर्गिक सौंदर्य को द्विगुणित कर रहे थे । श्रीकान्त बाहर से आया तो ठिठक कर रह गया फिर आगे बढ़ कर कहा,

'साधना जी हैं, मैंने पहचाना ही नहीं, कहिये कैसी हैं ?'

साधना लाज से सिकुड़ गई । लम्बी २ बरौनियों ने झुक कर विशाल नयनों को आवरण में ले लिया । मुख पर मृदु मुस्कान स्वभाविक रूप से खेल रही थी । तनिक स्वस्थ हो कर उसने नमस्कार किया परन्तु फिर गम्भीर निस्तब्धता । श्रीकान्त भी सकपका सा गया फिर पूछा, 'अब भी लिखती हैं कभी ?'

'जी अब क्या लिखना, यों लगता है कि लिखना तो सदा के लिये छूट गया ।'

'यह कैसे हो सकता है साधना । यह रंगीन दिन व्यतीत हो जायेंगे तब बेचारी लेखनी का भाग्य जगेगा ।

प्रत्युत्तर में साधना ने रेखा का कान उमेठ दिया ।

'तू शरारत से बाज़ नहीं आयेगी ।'

श्रीकान्त वहां से उठ गया था । वह समझ गया कि उसी के कारण वातावरण नीरस हुआ जा रहा है । जाते-जाते अचानक फिर उसकी दृष्टि साधना पर जा पड़ी । साधना जैसे लाज के गर्त में डूबी जा रही थी । उसका रम्य रूप श्रीकान्त के नयनों में समा गया । उपेक्षा से मन ने कहा

छि : ! अब वह विवाहिता है । उसके प्रति तुम्हारे यह भाव क्यों छि : ! वह त्वरा से दूसरे कक्ष में चला गया ।

'माधवी दीदी से मिल ली ।' रेखा ने पूछा

'नहीं कल जाऊंगी ।'

'कितने दिन की छुट्टी मिली है जीजा जी से । सच साधना ऐसी सुन्दर पत्नी को वे कैसे अलग कर सके होंगे ? रात दिन अब तुम्हारे स्वप्न देखते होंगे ।'

'हां ! रेखा दीदी तुमने मन की बात कही' । बेचारे.......

साधना को यह छेड़ छाड़ अधिक अच्छी नहीं लग रही थी पर यह लड़कियां थीं कि उन्हें कुछ और सूझता ही न था बात टालने के लिये साधना ने पूछा, 'मां कहां हैं उन्हें देखा ही नहीं ।'

'पूजा गृह में हैं । अच्छा साध सास की खातिरों से तू मोटी तो होकर नहीं आई ।

रेखा बात पुन: वहीं ले आई थी । साधना चिढ़ सी गई ।

'तुझे कुछ और नहीं सूझता रेखा । यह लड्डू दूर से ही सुहावने लगते हैं बहिन ।'

'हैं हैं क्या कह दिया ।'

'सच कहती हूं रेखा बहिन, सामाजिक प्रथा पूर्ति के अतिरिक्त मुझे ब्याह में कोई सौंदर्य नहीं दीखा ।'

'क्यों ?'

'जहां व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न न हो वहां तो यह केवल प्रथा पालन ही हो जाता है ।'

साधना सत्य कह रही थी । उसके लिये यह ब्याह केवल प्रथा पालन था । यों तो कथा-कहानियों में उसने भी जीवन

के उन पुलकमय क्षणों के विषय में पढ़ा था जिन्हें यौवन और प्रेम के क्षण कहा गया है । उसने भी सुनहले स्वप्नों को मन में संजोया था किन्तु कटु यथार्थ ने एक ही ठोकर में सब को भूमिसात कर डाला था। उसकी उमंगों के भव्य भवन निर्मित होने से पूर्व ही अस्तित्व शून्य हो गये थे। ब्याह में ही लेन-देन का जो प्रश्न उठा था वह एक दम जीवन में कटुता के बीज बो गया। फिर ससुराल में जाते ही सास की कटूक्तियों ने तो उसे झटपट अंकुर का रूप दे दिया था। लड़की सब सुन सकती है, नहीं सुन सकती केवल अपने जन्म दाताओं की निन्दा। एक दिन पति से कहा था तो वह बोला, 'मां स्वभाव की तनिक कठोर हैं। अब जैसी हैं सो तो सहना ही पड़ेगा।'

साधना प्रत्युत्तर में मूक हो गई थी। साधना यही सब सोच रही थी कि सरला देवी आ गईं। अंक में भर कर साधना का मुख चूम लिया उन्होंने, 'ससुराल होके आई है मेरी बेटी, भगवान करे तुम्हारा सुख-सोहाग अखण्ड रहे।'

साधना ने नत-शीश हो इस आशीर्वाद को स्वीकार कर लिया।

अगले दिन साधना तैयार हो ही रही थी कि माधवी आ धमकी। उसे प्रातःकाल ही सूचना मिल गई थी। नारी मन्दिर जाते-जाते वह इधर घूम आई थी। साधना को साथ लेकर जायेगी। साधना कंघी कर रही थी कंघी हाथ से छूट गई और दौड़कर माधवी से जा मिली।

'माधवी बेटी चाय पीकर जाना।' सावित्री देवी ने भीतर से पुकारा।

'मैं पी आई मासी जी। साध तू झटपट तैयार हो जा फिर चलें। अब तो इसे छूट है न मासी जी।'

साधना तैयार होने लगी। बालों को समेट कर जूड़ा बाँध लिया। माधवी ने स्वयं उसके लिये साड़ी निकाल दी। साड़ी ज़रा गाढ़े रंग का थी साधना ने ठुनक कर कहा, 'दीदी कोई और निकाल दो।'

'कब पहनेगी री यह सब, अभी तो ब्याह के दिन हैं। पहन ले।'

साधना को वही पहननी पड़ी। माधवी उसे देख यों पुलकित हो रही थी जैसे अपनी ही छोटी बहिन हो। फिर उसने उसे गहने पहिनाये और अंक में भर लिया। साधना ने आरम्भ से माधवी का खूब प्यार पाया था उसका हृदय माधवी के प्रति श्रद्धा और स्नेह से भरपूर हो उठा। जब दोनों सखियां चलीं तो धूप सिर पर आ गई थी। सावित्री देवी बाहर आकर बोली, 'धूप तो खूब चढ़ आई है माधवी। इसे जल्दी भेज देना।'

'आप चिन्ता न कीजिये, यह खाना मेरे साथ ही खायेगी। फिर शाम को मैं स्वयं आकर छोड़ जाऊँगी।'

साधना को खींचती हुई माधवी ले गई। नारी मन्दिर में साधना के पहुंचते ही सभी स्त्रियां एकत्रित हो गईं और उसका हार्दिक स्वागत हुआ। माधवी और साधना ने मिल कर निरीक्षण किया। अब स्त्रियों की संख्या बढ़ गई थी और दो एक शाखाएं और खोल दी गई थीं। देसी साबुन का उद्योग और मोम बत्ती का उद्योग भी आरम्भ कर दिया गया था। माधवी बड़े पैमाने पर एक समारोह करने की सोच रही थी।

जिसमें वह नारी मन्दिर का पूर्ण उद्योग प्रदर्शित करना चाहती थी। एक पन्थ दो काज हो जायेंगे। ख्याति भी होगी और कुछ लाभ भी होगा उसका उद्देश्य आर्थिक न था पर यदि इस प्रकार कुछ धन-लाभ हो जाये तो दोष भी क्या है।

साधना के मुख से एक दीर्घ श्वास निकल गई। वह अब अपनी इच्छा की स्वामिनी नहीं रही थी। यदि आज्ञा मिल जायेगी तो आ सकेगी नहीं तो मन मार कर रह जाना होगा। तब उसने सोचा—क्या है सभी लड़कियों को तो बदलना पड़ता है। परिस्थिति जैसी भी हो स्वीकार करने में ही भलाई है। यही मानव के लिये श्रेयस्कर है। साधना ने मुख पर प्रसन्नता लाने का यत्न किया। माधवी साधना की मुद्रा को लक्ष्य कर रही थी।

'क्या बात है साध?'

'नहीं दीदी यों ही ध्यान चला गया था जीवन धारा के परिवर्तन पर।'

'अच्छा एक बात बता?'

'पूछो।'

'रंजीत तो तुझे खूब प्यारे होंगे।'

साधना हंस पड़ी। बोली, 'बड़ा विकट प्रश्न है दीदी, ब्याह के पहले दिनों में तो सभी पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति अगाध प्रेम प्रदर्शित करते हैं। वास्तविक परिचय तो तब मिलता है जब भावावेग और यौवन की उद्दामता में उतार आ जाये।'

साधना की बात तो शत प्रति शत सत्य थी। प्रायः ऐसा ही तो होता है। यौवन और सौंदर्य के आकर्षण से अभिभूत पुरुष प्रारम्भ में तो खूब प्रेम प्रदर्शित करते हैं किन्तु चार-पांच

वर्ष पश्चात ही अवस्था और हो जाती है। घर में वह आकर्षण ही उन्हें नहीं मिलता।

नारी मन्दिर में घूमते-घुमाते ग्यारह बज गये थे और धूप खूब बढ़ गई थी। रिक्शा लेकर दोनों माधवी के घर पहुंचीं। आज माधवी साधना को अपने भीतरी कक्ष में ले गई। यों तो बहुत बार साधना इस घर में आई थी परन्तु इस कक्ष में आने का सुयोग दो एक बार ही हुआ था। कक्ष के एक कोने की मेज़ पर पूरे साईज का एक छायाचित्र रखा था उसके सम्मुख कुछ ताजे फूल चढ़ाये गये थे। साधना ध्यान से उस चित्र को देखने लगी। कौन हो सकता है यह? फिर माधवी की कहानी उसके मस्तिष्क में कौंध गई। तो यही मकरन्द है उसने और ध्यान से देखा मकरन्द का छायाचित्र मन्द-मन्द स्मित प्रसारित कर रहा था। नेत्र जैसे कुछ चाह रहे थे। माधवी उसे दूसरी ओर खींच कर ले गई।

अभी शाम की चाय समाप्त ही हो पाई थी कि सरिता और परितोष दीदी को लेने आ गये। कोई सम्बन्धी साधना को मिलने आये थे। चलते समय माधवी ने साधना को एक सिल्क की कीमती साड़ी भेंट स्वरूप दी। साधना लेने में हिचकिचा रही थी।

'माधवी दीदी यह नहीं लूंगी मैं। ब्याह में तुमने क्या कम किया था?

'ऐसी बात करेगी तो तेरे मुंह नहीं लगूंगी साध। मैं बन्धन से नहीं स्वेच्छा से तुम्हें दे रही हूं। तू तो मेरी छोटी बहिन है।'

इस महत् प्यार के सम्मुख साधना को एक दम पराभूत हो जाना पड़ा। माधवी किस जन्म के बदले चुका रही है।

उसने चुप-चाप उस उपहार को स्वीकार कर लिया। उनके जाने के पश्चात माधवी एकाएक उदास हो गई। अपना कहने के लिये उसका कौन है पिता जी के अतिरिक्त। भाई बहिनों का सरल स्नेह पाने के लिये उसका मन तरसने लगा। उसे अपना जीवन नितान्त एकाकी लग रहा था। वह अनुभव कर रही थी कि पिता जी की बात न मान कर उसने एक भूल की थी। वैवाहिक जीवन में कुछ सरसता तो होती, कुछ संघर्ष और द्वन्द होते यह निष्प्राण शुष्कता और नीरसता तो न होती किन्तु तभी मकरन्द की भोली मुस्कान उसके नयनों के सम्मुख आ गई। वह भागकर भीतर चली गई। मकरन्द के चित्र ने उसे एक नवीन प्रेरणा से भर दिया। उसके मन ने कहा—नहीं, नहीं जिसने तुम्हारे लिये जीवन का सब खो दिया तुम्हें उसी के लिये जीना और मरना होगा माधवी।

किन्तु वह है कहां ? कुछ भी पता नहीं। उसका अन्तंमन पुकारने लगा—तुम कहां हो ? कहां हो ? आओ मैं तुम्हें सर्व प्रकारेण स्वीकार करने को प्रस्तुत हूं एक बार आओ तो सही।

१६

पलकों ही पलकों में सप्ताह समाप्त हो गया। रंजीत का पत्र आ गया था कि वह साधना को लिवाने के लिये आ रहा है। सावित्री देवी तो उसी दिन से व्यस्त थी जिस दिन से साधना आई थी। बाबू रामनाथ का नाकोंदम आ चुका था।

एक मांग के पश्चात दूसरी उपस्थित हो जाती थी। लड़की को विदा कोई सरल कार्य नहीं, फिर 'इन रूढ़िग्रस्त परिवारों में। जब सभी वस्तुएं प्रस्तुत हो गईं तो सावित्री देवी को स्मरण आया कि अगले मास करवा चौथ आ रहा है। लड़कियों के सुख- सौभाग्य का त्योहार और पंजाब में इस का महत्व भी खूब है इस लिये लगते हाथ यह भी निबट जाये फिर कौन भेजेगा। कुछ ग्लास चाहिये, कोई बड़ा वर्तन, सास का जोड़ा और कई छोटे मोटे पदार्थ।

कल ही तो साधना चली जायेगी अतः आज सवेरे से ही सावित्री देवी मट्ठियां बना रही थी क्यों कि दोपहर को जब रंजीत पहुंच जायेगा फिर तो कुछ भी करना कठिन होगा उसी की खातिरदारी कठिनाई से निभेगी। साधना कल से ही कुछ गम्भीर और उदास थी। नयन जैसे रोने रोने और भाव मुद्रा शून्य-शून्य। जिस घर के साथ जीवन के प्रथम बीस वर्ष की मधुर स्मृतियाँ गुम्फित हुई हों उसे छोड़ते हृदय को कष्ट की अनुभूति होगी ही, फिर लड़कियां तो चाहे बूढ़ी भी हो जायें मां-बाप से बिछुड़ने के समय अवश्य उदास हो जाती हैं। सरिता जीजा जी की स्वागत की तैयारी में लगी थी। साधना के पश्चात घर में उसकी स्थिति का स्तर उच्चतर हो गया था। वह इधर से उधर भटकती घूम रही थी। सावित्री ने रसोई में से निकल कर राम नाथ से कहा, 'गाड़ी का समय हो रहा है क्या स्टेशन नहीं जाओगे?'

घबरा कर घड़ी देखते हुए वे बोले, 'तुमने तो एक दम दहला दिया। अभी तो घन्टा है।'

'भूल न जाना कहीं।'

ऐसा भुलक्कड़ नहीं हूं जी!'

एक घन्टे पश्चात रंजीत साले सालियों से घिरा बैठा था। हंसी विनोद की बातें हो रही थीं। परन्तु उसके नेत्र किसी को खोज रहे थे। सरिता ने उसका यह भाव पहचान लिया और उपहास भरे स्वर में बोली, 'किसे ढूंढ रहे हैं जीजा जी ?'

'मैं .....किसी को नहीं।'

'हम से मत उड़िये अब, किन्तु पहले कुछ भेंट चढ़ाइये तो देवी जी के दर्शन हो सकते हैं।'

'भेंट तो मैं कुछ भी नहीं लाया सरो।'

'वाह ससुराल में खाली हाथ चले आये! यहां श्रीमती साधना का नहीं सरिता देवी का राज्य है, समझे! बिना सलाम किये हज़ूर खाने में प्रवेश की आज्ञा नहीं मिल सकती। हां कोई पेन वेन उपहार दीजिये तो अभी नाटक का पर्दा उठता है।'

सरिता ने कह कर चुटकी बजाई। रंजीत उसकी इस मुद्रा पर हंस पड़ा। तभी राम नाथ आकर बोले—तंग कर रही है न यह शैतान। सरो........उसके नेत्रों में कोप की रेखा थी।

'जाने भी दीजिये, इसका अधिकार ठहरा।'

भोजन के पश्चात रंजीत ने आराम किया किन्तु सोने कहां दिया साले सालियों ने। सभी तो छोटे थे और रंजीत था बड़ा जीजा। मिल कर शाम की सैर का कार्यक्रम बना। अन्त में कम्पनी बाग की सैर का निश्चय हुआ। कम्पनी बाग था तो वही पर सैर का आनन्द तो संग में आता है। सरिता अब भी पीछे नहीं रही, 'दीदी तो नहीं जायेगी जीजा जी।'

विवश नेत्रों से रंजीत ने सरिता की ओर देखा। मूक नयनों से प्रार्थना की कि इतना क्रूर अत्याचार उनके साथ न हो। सरिता हँस पड़ी, 'घबराईये मत जीजा जी, हम आपकी सैर का आनन्द नहीं छीनेंगे।'

शाम को सभी बन ठन कर निकले । साधना भी सरिता के साथ सकुचाती हुई आई ।

अमृतसर के कम्पनी बाग में उस समय विशेष रौनक थी। भ्रमण के शौकीन पुरुष-नारियां, बच्चे टोलियों के रूप में चले आ रहे थे। खोंचे वाले और छाबड़ियों वाले अपने भाग्य को परीक्षा कर रहे थे । कहीं रंग बिरंगे गुब्बारों की बहार थी, कहीं पिपनियों का स्वर गूंज रहा था । वैसे भी अब कम्पनी बाग की शोभा दर्शनीय हो गई थी । पेड़ पौधे सभी का अलंकरण आकर्षक रूप में किया गया था। मखमली हरी घास और थोड़ी थोड़ी दूरी पर बनी पक्की सीमेंट की चौकियां लोगों को बैठने का आमन्त्रण देती थीं। कहीं गोल मटोल कटे छटे सरु वृक्ष, कहीं वृक्षों से लिपटी सुमन गुच्छों से लदी लहराती लतिकाएं, बड़ा ही सुरभ्य वातावरण था। रंजीत मुग्ध हो गया। सरिता सब की मार्ग दर्शिका थी। साधना अब रंजीत से बोल रही थी। घर जैसी लज्जा की भावना वहां न थी । उछलते कूदते परितोष तथा उसकी छोटी बहिन कभी यहां बैठ जाते कभी वहां । जल की छिट पुट बूंदें बरसाते फौव्वारों के निकट से तो वे उठना ही न चाहते थे। तभी लाल मछलियों का हौज़ आ गया । नन्ही नन्ही चमकीली मछलियां कितनी त्वरा से इधर-उधर घूम रही थीं। न जाने कितनी देर वे उस क्रीड़ा को देखते रहे। रंजीत बार बार रूप लोलुप दृष्टि साधना के मुख पर डालता, साधना आँखे झुका लेती। यह सलज्ज भावना उसके रूप को द्विगुणित कर देती । सहसा सरिता उघड़ पड़ी, 'जीजा जी अपने ब्याह की खुशी में गोलगप्पों की दावत तो दे दीजिये।'

'क्यों नहीं सरो। यह ले पैसे।' किन्तु जब तक रंजीत

जेब से पैसे तिकाले सरिता, भाई-बहिन के साथ भाग गई थी ! साधना और रंजीत एकाकी रह गये । अब रंजीत ने साधना का हाथ पकड़ लिया । पीछे सूर्यास्त हो रहा था । उसकी लालिमा साधना के बाईं ओर पड़ कर उसे और भी सुन्दर बना रही थी । साधना का गोरा मुख राग रंजित हो रहा था । 'तुम कितनी सुन्दर लग रही हो ।'

कहते तो सभी यही हैं पर रंजीत के यह शब्द साधना के हृदय में सिहरन उत्पन्न कर देते हैं । उसने भोले नेत्रों से पति को निहारा, फिर पलकें झुका लीं । रँजीत जैसे उस रूप को पी जाना चाहता था ।

साधना चली जायेगी इसलिये सावित्री देवी ने सन्देश भेज कर रेखा और माधवी को बुला भेजा था और भोजन भी वहीं करने का अनुरोध किया था । रेखा रंजीत से हास उपहास कर रही थी । माधवी स्वभावतया गम्भीर थी, वह केवल कभी कभी सहयोग दे देती थी । और सरिता तो सूत्र धार थी, परन्तु सब से अधिक उदासी साधना की थी जो वातावरण को अत्यन्त नीरस बना रही थी ।

रेखा ने हंसते हंसते रंजीत से कहा, 'आपने पूर्व जन्म में मोती दान किये लगते हैं । और कनखियों से साधना की ओर देखा । और साधना ने ? रंजीत अपनी प्रशंसा सुनना चाहता था । 'कोयले ।' यह सरिता का स्वर था किन्तु वह अपने ही कथन पर सकुचा गई क्यों कि रंजीत कृष्ण वर्ण था । कहीं बुरा न मान जाये । फिर जैसे क्षमा मांगते हुए कहा, 'जीजा जी बुरा न मानियेगा । मैं तो आपकी छोटी साली हूं न रंजीत अपने पान से रंगे दांत निकाल हंसने लगा । माधवी सोच रही थी कि सौंदर्य की दृष्टि से साधना और रंजीत में

कितना अधिक अन्तर है पर पुरुष के सौंदर्य को कौन देखता है ? किन्तु यदि यही स्थिति नारी की हो तो उसे कितनी कठिनाईयां भुगतनी पड़ती हैं। प्रतिदिन ही तो ऐसे घटना चक्र सुने जाते हैं। स्त्री की कुरुपता उसके लिये अभिशाप बन सकती है किन्तु पुरुष के विषय में जैसे उसका अस्तित्व ही नहीं।

भोजन तैयार हो गया था। सबने इकट्ठे बैठ कर खाया। रंजीत के जाने का समय हो रहा था। सावित्री देवी भी जल्दी से निबटली और वहीं आ बैठी।

जाने के समय साधना मां बहिनों और सखियों से लिपट कर खूब रोई। इस बार तो एक मासोपरान्त ही आने का सुयोग मिल गया किन्तु अब न जाने कब वह मिलेगी अपने भाई बहिनों से, फिर कब इन परिचित सड़कों, दीवारों और द्वारों को देखेगी। क्योंकि लड़की का आना रोज रोज तो हो नहीं सकता।

रोते हुए सावित्री देवी ने कहा, 'रंजीत बेटा, साधना उदास हो तो जल्दी भेज देना।'

'आप चिन्ता न करिये माता जी।'

रेखा को आलिंगन में लेकर साधना ने कहा, 'अब तेरे ब्याह में आऊँगी रेखा।' रेखा भी खिन्न-मना थी, कदाचित वह भी मां और भय्या से बिछड़ने की कल्पना कर रही थी। माधवी ने भी साधना को प्यार दिया और बोली, 'तू समझदार होकर भी कैसी भावुकता प्रदर्शित कर रही है। सभी तो ससुराल जाती हैं।'

साधना के जाने के पश्चात माधवी और रेखा लौट आईं। माधवी की इच्छा थी कि रेखा दोपहर को विश्राम करके

शाम को घर चली जाये पर रेखा नहीं मानी। मां और भय्या को चिन्ता होगी और भय्या तो दोपहरी में भी उसे खोजने निकल पड़ेंगे सो जाना ही ठीक रहेगा।

सरला देवी को पुनः दर्द का आक्रमण हो गया था। श्रीकान्त डा. गुप्ता को ले आया था। वह घबरा गया था। एक ही मास पश्चात आक्रमण हो जाना वास्तव में चिन्ता का कारण था। आगे तो कभी इतनी शीघ्र नहीं होता था। उसने चिन्तित भाव से डाक्टर को कहा, 'मां को पहले तो कभी इतनी जल्दी आक्रमण नहीं होता था डाक्टर साहब।'

'आयु का प्रश्न भी है श्रीकान्त जी। फिर भी मेरा विचार है कि वे शीघ्र ही ठीक हो जायेंगीं।'

रेखा ने जैसे ही दहलीज़ पर पांव रखा कि डा. गुप्ता को देखकर हृदय धक् से रह गया। फिर भी कंपित-करों से उसने नमस्कार किया। प्रतिनमस्कार करते हुए डाक्टर ने उसकी दृष्टि की प्रश्नात्मक भाषा को पढ़ लिया और कहा 'माँ आज पुनः अस्वस्थ हो गई थीं किन्तु घबराने की बात नहीं। मैंने इन्जेक्शन दे दिया है।'

'धन्यवाद।' विक्षिप्त सी रेखा भीतर चली गई। एक उड़ती नजर उस भावुक युवती पर फेंक डा. गुप्त चले गये।

इन्जेक्शन ने भीतर जाते ही अपना प्रभाव दिखाया था और पीड़ा का प्रकोप कुछ धीमा हो गया। अतः सरला देवी के मुख पर पुनः चिर-प्रिय मुस्कान क्रीड़ा करने लगी थी। रेखा अभी २ एक उदास वातावरण में से आ रही थी। वह सिसक कर मां से लिपट गई। सरला देवी धीरे धीरे उसके सिर को सहलाने लगीं। ओह! कितनी अभय शक्ति थी उन दुर्बल हाथों में। रेखा को लगा कि यह अमूल्य छाया उसके लिये

वरदान है मां का वरद हस्त मानव क्या प्राणी मात्र के लिये भगवान के वरद हस्त के पश्चात एक मात्र रक्षक है।

'रेखा मेरे विचार में कार्याधिक्य के कारण ही मां को यह आक्रमण होता है।'

'मैं तो लाख कहती हूं मां मुझे हाथ भी लगाने दे?'

'काम करेगी तो पढ़ेगा कौन बेटी?' मां ने प्रेमपूर्ण स्वर में कहा।

'न, न, मां अब तुम्हें बिल्कुल काम नहीं करना होगा। मैं आज ही नौकर या नौकरानी की खोज करता हूं।'

नौकरानी का शब्द सुन कर रेखा का मन और हो गया, वह भय्या से चुहल करने को मचल पड़ी।

'भय्या अस्थायी नौकरानी लाओगे। मां को नौकरानी नहीं बहू-रानी चाहिये। फिर देखो उनका दुख कहां जायेगा।'

'हट पहले तेरा ब्याह तो कर लूँ।'

सरला देवी बोली 'सच बेटा, तेरा और इसका ब्याह हो जाये तो मेरा गंगा स्नान हो जाये।'

'गंगा स्नान क्या दूर की वस्तु है मां। रेखा की बी. ए. की परीक्षा हो जाये तो तुम दोनों को गंगा स्नान करवा लाऊंगा।' बात पलट कर मां ने कहा—'तू तो खा आई होगी बेटी, अब शीघ्रता से भाई के लिये दो परांठे बना दे। मैं तो आज कुछ भी कर नहीं पाई।'

रेखा भीतर वस्त्र बदलने चली गई। श्रीकान्त मां के निकट ही बैठ कर समाचार पत्र देखने लगा। आज की डाक से उसके नाम एक मासिक पत्र आया था। श्रीकान्त की अपनी इच्छा एक मासिक निकालने की थी परन्तु दो-तीन वर्ष से कोई युक्ति ही नहीं मिल रही थी। आरम्भ में कुछ धन राशि तो अत्याव-

श्यक है। उसने देखा था कि दो चार मास चलने के उपरान्त ही पत्रों की स्थिति दयनीय हो जाती है और फिर बन्द। दो-चार वर्ष पत्र को इस स्थिति में होना चाहिये कि वह अपना बोझ स्वयं सम्भाल लें। तत्पश्चात ग्राहकों को विश्वास हो जाता है कि पत्र का आधार सुदृढ़ है इसलिये वे उसके प्रशंसक बन जाते हैं और धीरे धीरे पत्र की नींव अचल हो जाती है। श्रीकान्त भी आर्थिक व्यवस्था ठीक करके ही पत्र प्रारम्भ करना चाहता था।

'भय्या खाना कहां खाओगे ?'

'यहीं ले आ, मां के पास ही खाऊंगा। क्या बनाया है ?'

'परांठे और आलू।'

इतनी जल्दी और बन भी क्या सकता था। पहला कौर मुंह में डाला ही था कि श्रीकान्त सी. सी. कर उठा।

'क्या बात है ?' मां ने पूछा। श्रीकान्त को खांसी सी लग गई। पानी पीकर कहा, यह आलु की सब्ज़ी है या मिर्चों की ?'

'मैंने तो थोड़ी डाली थी भय्या।'

'हे राम, यह थोड़ी डाली है !'

'इसको अन्दाज़ ही नहीं आया होगा।'

'मां, पढ़ाई-वढ़ाई रही पीछे। पहले इसे खाना बनाना सिखाओ नहीं तो अगले घर में............

रेखा किवाड़ की ओट में थी, वहीं से भाई को धमकी दी। श्रीकान्त ने दूसरा कौर मुँह में डाला और फिर कहा, हां! हां! मां यह एक दम तुम्हें अपयश का भागी बनायेगी।'

'अपयश' शब्द ने रेखा को चिढ़ा दिया। सामने आकर निहोरे बोली, 'भय्या बोलने के समय कुछ भी ध्यान में नहीं

रखते, मां को अपयश का भागी बनना पड़े इससे तो मैं मृत्यु को श्रेयस्कर समझूंगी ।'

बात हंसी में कही गई थी परन्तु शब्द कुछ कड़ा था यह अनुभव किया कान्त ने। रेखा के नयन कोर छल छला रहे थे। नासिका का अग्रभाग रक्तिम हो उठा था। श्रीकान्त समझ गया कि यह अब रोने ही वाली है।

'रेखा सचमुच ही रूठ गई क्या ?'

रेखा के अश्रु टप, टप गिरने लगे। उसका मन पहले ही उदास था, जरा सी ठोकर से छलक उठा था। वह सम्भलने का प्रयास कर रही थी परन्तु सकल प्रयास असफल सिद्ध हो रहा था। श्रीकान्त को भोजन विष हो गया। थाली परे सरका दी और खिन्न भाव से कहा, 'तू क्या मुझे खाने नहीं देगी।'

'बेटी आज तुझे क्या हो गया है।'

रेखा का मन अब हल्का हो गया। आँचल से अश्रु पोंछ लिये। स्नेह सिक्त स्वर में कहा, 'मुझे क्षमा कर दो भय्या, मैं संयत नहीं रह सकी। पहले साधना को विदा किया, फिर मां का कष्ट देखा। मैं सम्भल नहीं सकी। ईश्वर के लिये खाना खाओ।'

'तो तू मुस्करा दे एक बार।'

रेखा रोते नयनों से मुस्करा दी। उस मुस्कान में स्निग्धता थी, सरलता थी। वातावरण शान्त हो गया था। श्रीकान्त भोजन खाने लगा। अब वह जान बूझ कर सी सी करता जाता था और रेखा हंस रही थी।

१७

नारी मन्दिर नव-वधु के समान अलंकृत था। रंग विरंगी झंडियाँ लहरा रही थीं। मुख्य द्वार रम्य तोरणों से सजाया गया था। वातावरण में एक अद्‌भुत प्रफुल्लता एवं सरसता थी। आज उसका प्रथम समारोह था। माधवी ने निश्चय किया था कि आज से ऐसा ही समारोह प्रतिवर्ष वह मनाया करेगी। और न सही इन समारोहों से सामाजिक संस्थाओं में नव चेतना का संचार अवश्य होता है। नवीन जीवन की उद्‌भावना होती है। माधवी रेखा के साथ चहकती हुई इधर उधर निरीक्षण कर रही थी। कहीं कोई त्रुटि न रह जाये। इस महत्वपूर्ण दिवस के लिये उसने एक विशेष राष्ट्रीय नेता श्री रत्नाकर को आमन्त्रित किया था।

निरीक्षण के पश्चात माधवी को एक प्रकार की सन्तुष्टि सी अनुभव हुई। शहर के गण्य-मान्य कुछ नारी पुरुष भी आमन्त्रित थे। उनके स्वागत का भार श्रीकान्त एवं उसके मित्रों ने ले रखा था। शामियाने के नीचे कुर्सियों पर बैठने का प्रबन्ध था किन्तु इससे पूर्व यह कार्यक्रम था कि अतिथि महोदय को कार्यरत केन्द्र का निरीक्षण करवाया जाये। तदुपरान्त पंडाल के नीचे सभा का आयोजन हो। नारी मन्दिर में रहने वाले बच्चों और स्त्रियों का कार्यक्रम और फिर माधवी की रिर्पोट और अन्त में रत्नाकर जी का भाषण।

नवम्बर का अन्तिम सप्ताह था। ऋतु सुहानी और मीठा

मीठा शीत। न ठिठुराने वाली सर्दी न सिहराने वाली गरमी। दस बजते बजते लोग पर्याप्त मात्रा में पहुंच चुके थे। सभी हल्के गरम वस्त्र पहने थे। ठीक साढ़े दस बजे रत्नाकर जी समारोह में पहुंचे। श्रीकान्त और माधवी ने मुख्य द्वार पर उनका स्वागत किया और फिर केन्द्र का निरीक्षण। स्त्रियों के आठ कक्ष थे। नं: एक में चरखे की कताई और दरियों की बुनाई चल रही थीं। यहां काम करने वाली स्त्रियां कुछ प्रौढ़ वयस् की थीं। कक्ष नं: दो में स्त्रियां कढ़ाई का कार्य कर रही थी। रेखा ने बताया कि यहां अधिकतर बाहर की वस्तुएं बनती हैं परन्तु मन्दिर अपनी वस्तुएं भी प्रस्तुत करवाता है और बाज़ार में विक्रयार्थ भेजता है। तीसरे कक्ष में साबुन का उद्योग था। चौथे में बेंत की टोकरियां और कुर्सियां बन रहीं थीं। रत्नाकर जी माधवी की कार्य कुशलता पर मुग्ध हो रहे थे और साथ ही साथ प्रशंसा भी करते जा रहे थे। पांचवें कक्ष में कपड़ों की सिलाई और छटे में चारपाइयां बुनने का कार्य था। सातवें में प्रौढ़ शिक्षा और आठवें में स्त्रियों को रेशम के कीड़ों को तैयार करने की शिक्षा मिल रही थी। इन कक्षों से हट कर भी कुछ कक्ष थे। रत्नाकर जी ने समझा शायद निरीक्षण समाप्त हो गया-पूछा, 'अब कहां चलना होगा?'

'जी अभी तो और भी है देखने को।'

वास्तव में यह नया विभाग था जिसे माधवी ने श्रीकान्त की प्रेरणा से आरम्भ किया था। यह था भिखारियों के बच्चों का प्रशिक्षण। दस वर्ष से ऊपर के बच्चे यहाँ लाकर रखे गये थे। इस विभाग में आकर देखा कि बच्चों को लकड़ी के छोटे छोटे खिलौने बनाने कीशिक्षा दी जा रही है। कुछ बच्चे अत्यन्त

सुसभ्य एवं स्वच्छ थे। वे बड़े मनोयोग से कार्य कर रहे थे।

'क्या यह सब भिखारियों के बच्चे हैं?'

'जी हां, और इन्होंने हमें यह समझने को वाध्य किया है कि सुचारू ढंग से प्रशिक्षण मिलने पर यह देश के सुनागरिक प्रमाणित हो सकते हैं।'

'आप तो वास्तव में सुकार्य कर रहे हैं। देश के युवकों में ऐसी भावना स्वर्णिल भविष्य की परिचायक है।'

रत्नाकर जी ने श्रीकान्त की ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा।

इसके पश्चात कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम बच्चों ने 'बन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गान गाकर जननी जन्म भूमि को वन्दना की। फिर एक छोटा सा रूपक जो देश-भक्ति की भावनाओं से भरपूर था प्रदर्शित किया गया। फिर कुछ मूक दृश्य भारत की सामाजिक रूढ़ियों का व्यक्त करते हुए प्रस्तुत किये गये जिन्हें दर्शकों ने बहुत पसन्द किया। इस कार्यक्रम का निर्देशन रेखा कर रही थी। जैसे ही प्रशंसा में तालियां बजतीं उसका उत्साह बढ़ जाता। फिर माधवी ने रिपोर्ट पढ़ी। यह संक्षिप्त रिपोर्ट थी जिसमें नारी मन्दिर की स्थापना, उद्देष्य और कार्य का परिचय दिया गया था। तनिक भी अतिरंजना नहीं थी। सभी के चेहरों पर प्रशंसा के भाव थे। तत्पश्चात् माधवी ने मान्य सभापति से प्रार्थना की कि वे अपने सुन्दर शब्दों से सभी को कृतार्थ करें।

सभापति का भाषण क्या था नारी मन्दिर और माधवी की महत्ता का प्रमाण पत्र था। उन्होंने उसके कार्य की भूरि भूरि सराहना करते हुए कहा कि देवि माधवी और उनके

सहायक श्रीकान्त की जितनी भी सराहना की जाये थोड़ी है। देश के निर्माण काल में यदि युवक एवं युवतियां विलासिता के मार्ग को छोड़ कर अपना उत्तरदायित्व समझें तो यह देश के सौभाग्य की बात है। पर खेद से कहना पड़ता है ऐसे युवक और युवतियां हज़ारों क्या लाखों में से कोई एक हैं। आज विलासिता और वैभव की चाह अधिक है, सेवा और त्याग की बहुत कम। भौतिक प्रगति जीवन में स्थान रखती है इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह लक्ष्य नहीं हो सकता। मनुष्य का लक्ष्य अधिक उत्कृष्ट होना चाहिए, केवल खाना पीना और सोना ही जीवन नहीं, जीवन की चेतनता तो कुछ और ही वस्तु है। हमारे देश के लोग पाश्चात्य देशों की वाह्य तड़क भड़क से चौंधिया जाते हैं और उनका अन्धानुकरण करते हैं। यह उचित नहीं, हमारा स्वतन्त्र विकास होना चाहिये। हमारे पूर्वजों की परम्परा अत्यन्त स्वस्थ एवं समुन्नत है। सच कहा जाये तो हमारे अतीत ने ही हमें पुनः जीवित होने की प्रेरणा दी है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने मां भारती के द्वार पर खड़े होकर जैसे ही पुकार लगाई—

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ?

वैसे ही सुप्त देश के कण कण ने इन शब्दों की प्रतिध्वनि की, भारत के सोये सपूतों ने चौंक कर अपने अतीत की ओर निहारा, जो गौरवमय था।

हमारी महान संस्कृति यों ही भुला देने की वस्तु नहीं। उसकी महानता उसकी स्थिरता में निहित है। आंधियां और तूफ़ान भी हमारी संस्कृति के इस प्रचण्ड सूर्य को प्रकाशहीन नहीं कर सके। आज आवश्यकता है कि अपनी संस्कृति की

मुख्य विशेषता 'स्वीकरण शक्ति' का पुनःआह्वान करें और जो कुछ भी मंगलमय है उसे अपने में ग्रहण करें तथा जो 'कु' का द्योतक अशिव हैं उसको त्याग । हमने सदा दूसरों के गुणों को ग्रहण किया है जैसे जलधारा के वेगमय अंश को विद्युत शक्ति में परिणत करके उसे जन-उपयोगी रूप दे दिया है वैसे ही हमें अन्य संस्कृतियों के विद्युत अंश को ग्रहण करना चाहिये और अमंगल का बाहिष्कार कर देना चाहिये।

यह प्रयास भारत के त्याग एवं सेवा का प्रत्यक्ष रूप हमारे सम्मुख रखता है। जनता का कर्तव्य है कि ऐसे प्रयत्नों को प्रोत्साहन दे।

करतल ध्वनि के मध्य रत्नाकर जी का भाषण समाप्त हुआ। इसके बाद प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। उसमें कुछ वस्तुएं विक्रयार्थ रखी गई थीं। वस्तुएं सभी प्रकार की थीं। कुछ खिलौने लकड़ी के और कपड़े के, कुछ सिलाई थीं, कुछ नारी मन्दिर में निर्मित उद्योग की। दर्शकों में उत्साह था लोग लेने को उमड़ पड़े। वस्तुएं हाथों-हाथ बिक गईं। और आगे के लिए बहुत से आदेश भी मिल गये। जाते समय रत्नाकर जी ने वहां के स्थायी निवासियों में मिठाई बांटने के लिये पचास रुपये दिये।

समारोह आवश्यकता से अधिक सफल था। भीड़ घटते ही माधवी ने रेखा को गले से लगा लिया।

'देखा कैसी सफलता मिली।'

'दीदी यह सब तुम्हारी तपस्या का परिणाम है।'

'तुम और श्रीकान्त जी क्या कम करते हो रेखा। यह संस्था हम सब की है।'

'सूत्रधार तो तुम्हीं हो दीदी।'

रात्रि का कार्य क्रम भी था किन्तु वह केवल नारी मन्दिर से सम्बन्धित स्त्रियों के लिये ही था। इस विषय में वहां काम करने वाली स्त्रियों ने विशेष अनुरोध किया था कि अब तक जो हुआ वह केवल प्रदर्शन था अब सत्य रूप में वहाँ स्थिर रूप से काम करने वालों का मनोरंजन होना चाहिये। माधवो और रेखा को यह स्वीकार करना ही पड़ा था और इसकी तैयारी भी कई दिनों से हो रही थी। केवल कुछ गण्य-मान्य महिलाएं आमंत्रित थीं शेष समस्त वातावरण सर्वांग रूप आत्मीयता से पूरित था। इस कार्यक्रम में कुछ ढोलक के गीत थे। कुछ पंजाबी गिद्धा और बोलिया और एक दृश्य भंगड़े का। साथ ही कुछ ग्रामीण झाकियां थी जिन्हें हम लोक नाट्य पुकारते हैं। गिद्धे और बोलियों का खूब रंग जमा। उन्होंने न केवल मुक्त भाव से नृत्य ही किया वेशभूषा भी पंजाब की ग्रामीण जाटनियों की पहनी थी। रंग बिरंगे कपड़े, गोटे किनारी से जड़े दुपट्टे और नाक में बड़ी बड़ी नथें। एक आध ने तो पुराने ढंग के चौंक भी पहने थे। अत्यन्त रंगीन और प्राणवान दृश्य था। एक गोल आवृत में दो स्त्रियां बारी-बारी से नृत्य करती शेष तालियां बजातीं और गीत गाती थीं वे फिर दायरे में चली जाती तो दो और निकल आतीं। उनमें न जाने कहां से इतना आवेश आ गया था कि नाचते हुए थकती ही न थीं और स्वर इतना मुखरित कि संकोच का नाम तक नहीं। संगीत उनके मुक्त स्वभाव का अंग था। शहर की आधुनिक लड़कियों की भाँति उनमें नखरे की जकड़ का अभाव था। रेखा को कई बोलियां बड़ी पसन्द थी। उनमें जीवन के सांकेतिक तथ्य थे चाहे उनमें ग्राम्य दोष पाया जाये। एक को उसने बार-बार दोहरवाया—

होला, होलाँ, होलाँ कि गड्डी विच वीर मिलया
मैं ते इक दी हो गई सोलहां कि गड्डी विच वीर मिलया।

होलाँ हरे चने की भुनी हुई फली को कहते हैं इसका प्रयोग तुकबन्दी के लिये हुआ था। गाड़ी में अचानक बहिन को भाई मिल गया तो उसके आनन्द की सीमा ही न रही। वह मानों एक की सोलह हो गई।

इसी लिये कहा गया है कि लोक गीतो में लोक जीवन की सत्य झलक मिलती है। सास–बहु, भाई–बहिन, मां–बेटी के सम्बन्ध के तथ्य जाने किसने इन बोलियां और गीतों में गूंथ कर रख दिये थे। जो स्त्रियां आमन्त्रित थीं वे अपिजात्य वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली थीं—ऊंची-ऊंची सभा-सोसायटियों में कार्य करने वालीं, बड़ी बड़ी संगीत सभाओं की व्यवस्था में रुचि रखने वालीं। उनको भी इस ग्रामीण कार्यक्रम में आनन्द आ रहा था। वे सोच रही थीं कि यह सब भी आधुनिक क्लब जीवन से कम मुखिरित करने वाला नहीं। साधारण विषय दृष्टि से देखा जाये तो यह अधिक प्राणवान और स्फूर्तिदायक है। इसमें जीवन की निकटता अधिक है। कुछ ग्रामीण स्त्रियां थी तनिक पुराने ढर्रे की उन्हें पुराने लम्बे गीत गाने की फरमाइश हुई। कोई समय था जब पंजाब के गाँव और खेत रात्रि में इन गीतों की लम्बी स्वर लहरों से गुंजरित हो उठते थे। स्त्रियां रात को जाग जाग कर तिरंजन का खेल खेलती थीं अर्थात चर्खा कातती थीं और इन गीतों को ध्वनि चर्खे की घुमर घुमर के साथ गूंज उठती थी। वे स्त्रियां बहुत सुन्दर गाती थी। कुछ तो गाने का ढंग, कुछ स्वर-माधुर्य दोनों के सहयोग से उनका संगीत अत्यन्त हृदय स्पर्शी हो गया था। गीत में पति और पत्नी

के प्रश्नोत्तर थे और वे स्त्रियां भी दो टोलियों में विभक्त थीं। पहली टोली ने गाया—

'ऐसक वेलड़े नी तू पानी नू क्यों गइयें नी मेरिये नाजुके नारे'
यह पति का प्रश्न था –

(ओ मेरी सुन्दर पत्नी ! इस अन्धकार में और अटपटे समय में तू पानी के लिये क्यों गई है ?)

पत्नी का उत्तर था—

ऐसक वेलड़े वे पानी दी लोड़ सी वे मेरे वहमिया ढोला।'

(ओ मेरे सन्देह करने वाले पति, इस समय पानी की आवश्यकता है। पति ने कहा कि वह पानी वाला कुआं उसे बतला दे तो वह स्वयं यह कार्य कर लेगा किन्तु पत्नी ने कहा कि उसका घड़ा टूट गया है और जिस कुएं से वह पानी लेने जाती है वह सात समुद्रों से पार स्थित है किन्तु पति को किसी प्रकार भी विश्वास नहीं आता और वह बार-बार पत्नी पर सन्देह करता ही रहता है।

गीत के स्वरों में पुरुष की सन्देह शील प्रकृति का चित्रण था। गीत अत्यन्त सुन्दर रहा और प्रशंसा में खूब तालियां बजी। आमन्त्रित महिलाओं ने सोचा अगामी किसी सामाजिक समारोह में लोक नृत्य और गीतों को भी प्रस्तुत करवायेंगी। एक मधुर पहाड़ी गीत के साथ इस कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

रात के दस बज गये थे। माधवी की इच्छा थी कि वहीं पर रात्रि-यापन कर लिया जायें तो अच्छा है किन्तु रेखा किसी भी मूल्य पर मां को अकेला नहीं छोड़ना चाहती थी। विवश होकर माधवी को मानना ही पड़ा। सड़क पर पहुंचते

ही रिक्शा मिल गई किन्तु माधवी ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। रेखा ने आश्चर्य से पूछा, 'यह क्यों दीदी ?'

'युग बड़ा खराब जा रहा है रेखा। देखा नहीं वह कैसे घूर घूर कर देख रहा था। रात्रि के समय इन जवान रिक्शा वालों से बच कर ही रहना चाहिये।'

तभी एक अधेड़ आयू का रिक्शा वाला आ गया। रेखा और माधवी ने इस समय किराये का निश्चय करना अच्छा न समझा चलो चार आने न सही छः आने सही। बेचारा इतनी रात तक रिक्शा का बोझा ढो रहा है पेट के लिये ही न।

रेखा को छेड़ते हुए माधवी ने कहा, 'कल को ब्याह हो जायेगा तब भी तो मां को छोड़ना पड़ेगा।'

'कल की चिन्ता मैं आज क्यों करुं दीदी। मुझे केवल आज का परिचय है।'

जैसे ही उनकी रिक्शा गली के मोड़ पर पहुंची कि श्रीकान्त साईकल पर आ रहा था।

'कहां चले श्रीकान्त जी ?'

'रेखा को लाने ही जा रहा था।'

'क्यों ?'

'मां तो बहुत घबरा रही थी। आप जानती ही हैं इन बड़े लोगों की बातें। फिर आज उन्होंने समाचार पत्र में देहली की एक घटना पढ़ ली थी मुझ ही डांटने लगीं कि मैं रेखा का ध्यान नहीं रखता।'

हंस कर माधवी बोली, 'भगवान के विधान पर मुझे कभी क्रोध नहीं आया केवल एक ही स्थान पर आता है।'

'कहां ?'

'मुझे कोई भाई-बहिन तो दे देता जो मेरे सुख-दुख का साझी होता ।'

'तो आप इस कोप का उत्तर दायित्व मेरे ऊपर डाल दें।'

'मुझे इसमें गौरव का अनुभव ही होगा ।'

रेखा को छोड़ कर माधवी जाने लगी तो श्रीकान्त भी जाने लगा। माधवी ने रोकना चाहा तो अधिकारपूर्ण स्वर में बोला, 'अब मेरा उत्तर दायित्व बहुत गम्भीर हो गया है माधवी दीदी ।'

माधवी आज अपनी गणना सौभाग्य शाली लड़कियों में कर रही थी। उसके जीवन का एक अभाव जो पूर्ण हो गया था ।

१८

रेखा ने ठीक ही कहा था कि कल का ज्ञान किसी को नहीं होता। आज जो आल्हाद-समुद्र की तरंगों से खेल रहे होते हैं उनका कल अवसाद की कालिमा से परिपूर्ण हो सकता है और जिनका आज दुख के क्षणों से भरपूर होता है उनका कल सुख और प्रसन्नता की रश्मियों से दीप्त हो सकता है। 'कल' का सब कुछ उस सुन्दरी ने अपने प्रगाढ़ आवरण में छुपा रखा है जिसे 'नियति' के नाम से अभिहित किया जाता है। जिसकी लिपियां अदृश्य होती है और बड़े से बड़े ज्ञानी भी जिन्हें समझने में असमर्थ सिद्ध होते हैं ।

माधवी आनन्द और आल्हाद से भरपूर घर लौटी थी किन्तु उसका 'कल' क्या सन्देश लेकर आयेगा इस से सर्वथा अनभिज्ञ थी । नित्य की भाँति ही शाम को उसके पिता जी क्लब गये थे । वह कहीं नहीं गई क्योंकि कुछ थकान थी वह विश्राम चाहती थी । इसी लिये कोठी के बाहर उद्यान में कुर्सी डलवा कर पढ़ रही थी कि सहसा एक चारपाई उठाये कुछ व्यक्तियों ने फाटक के भीतर प्रवेश किया । उसका हृदय धक् से रह गया । चारपाई पर उसी के पिता जी थे । माधवी पहले तो घबरा गई फिर सम्भल गई । बिस्तर इत्यादि ठीक करवाया और पिता जी को लेटा दिया : वे मूर्च्छितावस्था में थे । भाग कर सिविल अस्पताल के बड़े डाक्टर को फ़ोन किया । एक पुरुष को श्रीकान्त के यहां दौड़ाया और स्वयं अपने ज्ञान के अनुसार उपचार करने लगी । दस मिनट के भीतर ही डाक्टर की कार पहुंचने का स्वर सुनाई दिया । वह भाग कर डाक्टर के निकट गई और संक्षेप में सारी घटना बता दी । डाक्टर त्वरा से उनकी चारपाई के निकट पहुंचा और स्टेथ-स्कोप लगा कर अच्छी प्रकार से निरीक्षण किया । उसके मुख पर कुछ निराशा के भाव थे । करुण स्वर में माधवी ने कहा,

'पिता जी को बचा लीजिये डाक्टर साहब ।'

'यदि बचा सकुंगा तो आप पर कोई एहसान नहीं करुंगा । यह मेरा कर्त्तव्य होगा । किन्तु हृद रोग का अत्यन्त जबरदस्त आक्रमण है । क्या इससे पूर्व भी कभी आक्रमण हुआ है ?'

'जी नहीं ।'

उन्हें लाने वालों ने बताया था कि उनकी जेब में यदि उनका परिचय-पत्र न मिलता तो वे शायद सड़क पर ही

पड़े रहते । किन्तु उनकी भीतर की जेब में यह परिचय पत्र सदैव रहता था । इसके अतिरिक्त जेब में दो सौ चालीस रुपये भी थे और यह लाने वालों की भलमनसाहत ही थी कि उन्होंने रुपयों को हाथ तक नहीं लगाया ।

उसी दिन रात के दस बजे माधवी पितृहीन हो गई । इतने बड़े संसार में वह एक दम अकेली और आश्रय-हीन थी। इतनी देर माधवी के हृदय का बाँध जो रुका रहा था वह टूट गया और वह पिता की मृत देह से लिपट कर फूट-फूट कर रोने लगी । श्रीकान्त और रेखा पहुंच गये थे। रेखा भी वैसी ही विह्वलता से रो रहा थी और श्रीकान्त———वह भी रो रहा था और समझ नहीं पाता था कि माधवी को ढारस कैसे दे । माधवी की स्थिति में कोई भी लड़की होती तो वह भी ऐसा ही करती। किन्तु प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है। आखिर मनुष्य कहां तक रो सकता है। अश्रुकण भी बह बह कर शुष्क हो जाते हैं। माधवी जब जी भर रो चुकी तो उठी। हृदय को थामा और दूसरे दिन का कार्यक्रम सोचने लगी। आखिर इस घर में पुत्र एवं पुत्री दोनों का कार्य उसे ही करना होगा। साधारण लड़कियों की भांति यदि रोती ही रहेगी तो उसके भविष्य का क्या होगा । निःसन्देह भाग्य ने उसके साथ एक क्रूर खिलवाड़ किया था जिसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। पिता के अवलम्ब से वह उड़ती फिरती थी। अब जैसे किसी ने तीक्ष्ण छुरी से उसके पंख काट दिये हों।

श्रीकान्त ने अन्तिम यात्रा का सम्पूर्ण प्रबन्ध किया और लगभग ग्यारह बजे यह यात्रा प्रारम्भ हुई। घर में चाहे बड़ी बूढ़ी स्त्री न थी परन्तु कुछ माधवी के मेल-मिलाप के कारण और कुछ पिता जी की वाकफ़ी के कारण काफ़ी पुरुष स्त्रियां एकत्रित हो गये

पुरुष मौन और शान्त थे। कभी कभी मृतात्मा के प्रति कोई बात करते। परन्तु स्त्रियों का जैसा स्वभाव होता है, वे खूब बातें कर रही थीं। माघवी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने का उन का ढंग ऐसा था कि उसका दुख हल्का होने की अपेक्षा और भी गहन होता जा रहा था। यद्यपि वह स्वयं ही अत्यन्त दुख अनुभव कर रही थी तो भी स्त्रियों की बातों ने उसके मातृ स्नेह के अभाव को पुनर्जीवित कर दिया था।

चिन्ता में अग्नि देने का दृश्य और भी शोकमय था। अग्नि देने का अधिकारी प्रायः पुत्र को स्वीकार किया जाता है किन्तु माधवी का कोई भाई न था। लोगों में कानाफूसी अवश्य हुई पर कोई बोला नहीं। माधवी ने यह काम भी स्वयं किया। अन्तिम बार पितृचरणों में प्रणाम करके माधवी शोकाकुल घर लौट आई। सोलह दिन बैठने का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि पुरुषों का शोकभाव तो केवल चौथे तक चलता है और शेष सब स्त्रियों का काम होता है। दो-चार नातेदार आने वाले थे इसलिये चार दिन तक तो बैठना पड़ा माधवी को। जो नातेदार आये भी वे कोई शान्ति का वातावरण नहीं लाये थे। माधवी के चचेरे भाई तो एकदम नवीन आशा और नव आकांक्षा लेकर आये थे। उनका विचार था कि मृतक की मृत्यु हृदय रोग से अकस्मात होने के कारण वह कोई भी इच्छा-पत्र नहीं बना सका होगा किन्तु मृतक शायद उनकी आशा से अधिक भविष्य-प्रष्टा थे। उनके ट्रंक की छानबीन करने में माधवी को पिता की वसीयत छोटी सी लकड़ी की डिबिया में बन्द मिल गई। श्रीकान्त की सलाह से माधवी ने शहर के एक नामी अभिवक्ता को बुला कर उनकी सम्मति ली। वसीयत नामा दो वर्ष पूर्व लिखा गया था। चल सम्पत्ति का दो

बटा तीन भाग नारी मन्दिर के नाम था और एक हिस्सा माधवी के नाम, अचल सम्पत्ति के रूप में केवल वही कोठी थी सो माधवी के नाम थी। वकील महोदय ने सारी व्यवस्था उचित ढंग से कर दी और वे धन-लोलुप भेड़िये अपना सा मुह लेकर रह गये। उनके ठहरने को जो दो दिन का कार्यक्रम था वह सहसा शाम तक बदल गया और वे रात की गाड़ी से ही रवाना हो गये। उस अवसादमय स्थिति में भी माधवी को हंसी आ गई। यह रिश्तेदार हैं जो उसके सुख दुख के साथी सिद्ध होंगे ? उसके अन्तर्मन ने पिता के पावन रूप को पुनः प्रणाम किया जिन्होंने बेटी के भविष्य को दो वर्ष पूर्व ही अपने दिव्य चक्षुओं से भांप लिया था।

अब केवल अस्थि-प्रवाह की प्रथा रह गई थी। माधवी यद्यपि कुमारी थी और वयस की भी प्रौढ़ न थी फिर भी लोक ज्ञान से कोरी न थी। उसे ज्ञान था कि हिन्दुओं की यह प्रथा हरिद्वार में पूर्ण होती है। इसलिये श्रीकान्त को बुला कर कहा, 'एक दिन के लिये हरिद्वार चलना होगा अस्थिप्रवाह के लिये।'

'किन्तु ?'

किन्तु विन्तु नहीं श्रीकान्त जी। अब आप मेरे भाई हैं। आपने यह उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार किया है।'

'तो मैं अस्वीकार नहीं करता। कब चलेंगी ?

'कल।'

दो दिन में ही हरिद्वार होकर वे लोग लौट आये। क्रिया कर्म का कोई विशेष अनुष्ठान नहीं हुआ। पिता के नाम पर माधवी ने नकद रुपये ही असहाय और पंगु लोगों में वितरण किये।

घर में अब केवल माधवी और उसकी बूढ़ी नौकरानी माया ही रह गई थी। उसके साथ रह कर माधवी को किसी प्रकार का भय नहीं था। तो भी किसी चौकीदार को नियुक्त करना माधवी ने श्रेयस्कर समझा। यों तो माधवो का रहन-सहन भी सादा था और घर में कुछ वह रखतो भी न थो, सब कुछ बैंक में जमा था। दो चार सौ रुपये जो पिता जो के ट्रंक इत्यादि में से प्राप्त हुए थे वे सब इधर-उधर व्यय हो गये थे फिर भी सतर्क रहना सदा अच्छा होता है।

माधवी सारा दिन अपने को कार्य व्यस्त रखती थो किन्तु घर में प्रविष्ठ होते ही पिता की प्रेममयी प्रतिमा नेत्रों के सम्मुख झूम जाती थी। वही सौम्य रूप घर के किसी कोने से झांकता प्रतीत होता। माधवो आकुल होकर जैसे ही उस प्रतिमा के निकट पहुंचना चाहती कि वह लुप्त हो जाती। तब एक ही साधन उसके पास रहता, वह नेत्र मूंद कर अपने को ईश्वर के चरणों में डाल देती और मुक्त भाव से अश्रु-कणों को बहने की छूट दे देती। इस प्रकार उसके हृदय को शान्ति भी मिलती और आत्मा को आश्रय भी मिलता।

जब से समारोह हुआ था माधवी अमृतसर में पर्याप्त प्रसिद्धि पा गई थी। कोई भी उत्सव या सभा सम्मेलन हो उसे अवश्य आमन्त्रित किया जाता था। वह मानों स्त्री जाति की अनिवार्य अंक हो गई थी। जालन्धर में पंजाब की प्रतिनिधि महिलाओं का सम्मेलन हो रहा था इसलिये अमृतसर से भी दो महिला प्रतिनिधि आमन्त्रित की गई थीं। सर्व सम्मति से एक माधवी का नाम चुना गया। माधवी ने जैसे संकोच अनुभव किया किन्तु माया ने कह-कहला कर उसकी तैयारी कर ही डाली। ओह! जालन्धर

में साधना भी है। उसी के पास वह ठहरेगी। उसका पता तो उसे ज्ञात था किन्तु उसके घर से सन्देश भी ले जाना चाहिये। इसलिये माधवी साधना के यहां गई। सांझ का झुटपुटा छा रहा था। प्रकाश अभी था किन्तु सड़क की बत्तियां जल चुकी थीं और वे अत्यन्त निष्प्रभ लग रही थीं। माधवी को लगा वह भी दिन के दीपक ऐसी ही ज्योतिहीन इन दिनों हो रही है। यह नन्हे नन्हे विद्युत दीप अभी प्रकाश हीन दीखते हैं। किन्तु जैसे ही अंधकार बढ़ेगा यह वे दीप्तिमान होते जायेंगे। अन्धकार ही दीपक के अस्तित्व की परीक्षा है सो क्या दुख ही मानव जीवन की परीक्षा नहीं। अवसम्द के तम में यह जीवन दीप दीप्तिमान हो यही उसकी महत्ता है।

घर पर बाबू रामनाथ के अतिरिक्त कोई भी न था और वे भी चारपाई पर थे। बहुत दुर्बल हो गये थे। दाढ़ी मूंछ बढ़ी हुई, आंखे धंसी हुई और मुख रक्त हीन। माधवी को देख कर उन्होंने उठने का प्रयत्न किया। माधवी ने हाथ से उन्हें लेटे रहने का संकेत किया और स्वयं कुर्सी लेकर बैठ गई। पूछा, 'क्या हुआ आपको ? शेष सब कहां है ?'

'सभी मन्दिर गये हैं। आज मंगल है न सावित्री ने हनुमान की मनौती मानी थी। मुझे टायफायड हो गया था। अभी परसों ही तापमान से मुक्त हुआ हूं।'

'मुझे बिलकुल पता नहीं चला, पिता जी की मृत्यु के पश्चात् मैं घर से बहुत कम निकली हूं।'

माधवी का कण्ठ स्वर भारी हो गया। तभी सावित्री देवी आ गई बच्चों सहित। सरिता तो माधवी देवी को देख कर एक दम खिल उठी।

'अहा ! दीदी तुम हो। मेरा मन बहुत दिनों से तुम्हें देखने को कर रहा था। '

'तू भी तो नहीं आई सरो ।'

'निगोडी परीक्षा तो सिर पर भूत की भांति चढ़ी है दीदी ।'

सावित्री देवी भी अतीव स्नेह से माधवी को मिली। सम्वेदना प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कहा, 'तू पहचानी नहीं जाती । बेटी । बहुत दुबली हो गई हो।'

'ठीक हो जाऊंगी मासी जी ।'

इसके पश्चात माधवी ने साधना के पास जाने की बात कहीं । सावित्री देवी पहले तो चहकी फिर एकाएक गम्भीर हो गई । भुख की प्रसन्नता उड़ गई । जाने उनके हृदय में क्या आ गया था । वे मां थी । कौन मां है जो बेटी को कोई सन्देश न भेजना चाहे किन्तु पति की बीमारी में इतना व्यय हो गया था कि ऐसी स्थिति में कुछ भी भेज सकना असम्भव था । फिर बेटी को एक दो रुपयों की वस्तु जायेगी सो इतनी तो होनी ही चाहिये कि बेटी को लज्जित न होना पड़े । वे कुछ नहीं बोली तब रामनाथ बोले, 'तुम जाओगी बिटिया के पास । फिर फीकी मुस्कान से बोले, 'बिटिया मेरी तो पत्र भी नियम से नहीं लिखती, शायद रूठ गई है'

सावित्री देवी अभी तक गम्भीर बनी बैठी थीं, उनकी वाणी कुन्ठित हो गई थी । स्त्रियों को घर की मर्यादा का ध्यान भी अधिक होता है । बाहर से सफेद पोशी की धाक जमी रहे भीतर चाहे फाका मस्ती ही हो परन्तु पुरुष अधिक मुक्त स्वभाव का होता है । वह मन में अधिक छुपा नहीं सकता ।

राम नाथ बोले 'सावित्री कहीं पास-पड़ोस से ही दस रुपये ले आओ। माधवी क्या साधना के पास खाली जायेगी ?

सावित्री को यद्यपि ज्ञान था कि माधवी उनकी गृह-स्थिति से भली प्रकार परिचित है फिर भी इस समय बा. रामनाथ के शब्द उसे अखर गये । उसने एक चुपती दृष्टि पति पर डाली जिसे माधवी ने परख लिया। कहा, आप रहने दीजिये मैं स्वयं कर लूंगी ।'

'माधवी ।'

'आप अधिक न कहिये मौसी जी । साधना को मैं छोटी बहिन कह चुकी हूं ।'

सावित्री तथा बा. रामनाथ दोनों ने माधवी की ओर कृतज्ञता से देखा। साधना को गये चार मास होने को आये थे और एक अधेले की वस्तु भी वे न भेज सके । करते भी क्या एक महंगाई, दूसरे बीमरी । सावित्री देवी ने मनौतियां मान-मान कर पति के जीवन को बचाया था । उसके लिये वही सर्वस्व थे । दवाइयां तो चलती ही थीं । परन्तु बा॰ रामनाथ अच्छी प्रकार समझते थे कि सावित्री देवी की प्रार्थनाओं का प्रभाव ही अधिक रहा । प्रभाव नहीं, चमत्कार ही कहना चाहिये । ऐसी त्याग एवं तपस्या केवल हिन्दु नारी में ही मिल सकती है । सावित्री देवी नयनों में जल बिन्दु झलका कर बोली 'साधना से कहना, पत्र तो नियम से लिखा करे । हम उसके अपराधी अवश्य हैं बेटी किन्तु कह देना कि जैसे भी सुविधा हुई मैं उसे बुलवा भेजूंगी ।'

इन शब्दों के साथ ही टप-टप अश्रु सावित्री देवी के नयनों से बरसने लगे ।

'सावित्री तू पागल हो गई है क्या ? मन इतना छोटा नहीं करते ।'

सावित्री देवी ने अश्रु कण पोंछे और अपने मन को धिक्कारा-छि सन्ध्या के समय रो कर अपशकुन करते हीं । फिर मन ही मन नत-मस्तक होकर उन्होंने अपने घट वासी भगवान से क्षमा याचना की । अन्धेरा बढ़ रहा था अतः माधवी उठ पड़ी । रामनाथ पुनः बोले, 'मेरी साध को मेरा बहुत-बहुत प्यार देना माधवी बिटिया ।'

'जी अच्छा । सरो चलु अब ?'

'दीदी, मेरी दीदी को कहना कि सरि नित्य तेरी कविताओं को रो-रो कर पढ़ती है ।'

सरिता सचमुच रो पड़ी । विषाद् मय वातावरण छोड़ माधवी चली गई ।

१९

माधवी की गाड़ी साढ़े दस के लगभग जालन्धर पहुंच गई । सीधी रिक्शा करके वह विक्रम पुरा में साधना के घर पहुंचीं । गली और मकान का नं० याद होने से माधवी को घर ढूंढने में विशेष दिक्कत नहीं हुई । द्वार खट-खटाने पर साधना की ननद ने किवाड़ खोल दिये ।

'साधना है ?'

'जी, आइये।' और कला माधवी का अटैची उठा कर भीतर ले चली। बिस्तर वहीं पड़ा रहा। साधना की ननद कला एक हंसमुख और शोख़ लड़की थी। वह माधवी के साथ एक दम आत्मीय हो गई। आंगन में जाकर कला ने पुकारा, 'साधना भाबी, बाहर आओ तो।'

साधना रसोई में थी। एकाएक बाहर निकली तो माधवी को खड़े पाया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। रसोई में काम करने से साधना की धोती लाल-पीले दाग़ों से अलंकृत थी। गोरे मुख पर कुछ कालिमा लग कर चिन्ह से बना रही थी। वह कुछ हिचकिचाई फिर भागकर माधवी से लिपट गई। कहते हैं ससुराल में मायके का कोई पक्षी भी मिले तो लड़की को प्रसन्नता होती है और यह तो माधवी थी, साधना को बहिन सदृश स्नेह-दान करने वाली।

'मैं भी कहूं कौआ क्यों मुंडेर पर बोल रहा है। दीदी घर में सब अच्छे तो हैं। मुझे तो उन्होंने एक बारगी ही विस्मृत कर दिया।'

साधना कई बातें पूछ गई पर माधवी को जाने क्या हो गया था। वह स्तब्ध सी साधना की ओर देख रही थी। क्या यह वही साधना है? जो उस अभाव भय वातावरण में रह कर भी कितनी स्वस्थ कितनी पुष्ट थी। चार मास में ही उसे क्या हो गया है। न वह रंग न लालिमा। कितनी दुबली हो गई है। उसने पूछना चाहा किन्तु कला जो सामने थी माधवी सकुंचित हो गई। शान्त भाव से कहा, 'घर में ठीक है साधना। हां, मेरे पिता जी नहीं रहे।'

'चाचा जी नहीं रहे!' साधना के नेत्रों में आंसु आ गये। बांह पकड़ कर वह माधवी को अपने कक्ष में ले गई और गले

लग कर रोने लगी। माधवी भी रो रही थी। जब दोनों सखियां रो चुकीं तो मन का ज्वार शान्त हो गया। अब माधवी ने ध्यान से देखा तो समझी कि साधना क्यों सूनी-सूनी दीख रही थी। उसके शरीर पर कोई आभूषण न था सिवाय एक एक चूड़ी के या कानों में बिल्कुल हलकी बालियां थीं।

'साधना तेरे गहने कहां गये?'

'अभी नहीं आराम से सब सुनाऊंगी दीदी।'

तो इसके पीछे एक लम्बी दास्तां है। माधवी चुप हो गई। कला खाने के लिये बुलाने आई थी। खाना खाते-खाते माधवी ने अनुभव किया किया कि साधना की सास तनिक रूखे स्वभाव की है क्योंकि वह जब भी बात करती तो त्योड़ो चढ़ी रहती किन्तु उसकी कसर उसकी बेटी ने निकाल दी थी। कला बात-बात पर हंसने हसाने वाली युवती थी।

शाम को पांच बजे महिला सभा का अधिवेशन आरम्भ होने वाला था। साधना की सास को सम्बोधित कर माधवी ने कहा, 'आप शाम को साधना को मेरे साथ भेज देंगे न?'

'कहां?'

'स्त्रियों का जलसा है मां। और मैं भी जाऊंगी।' झट से वह बोली 'मैं तो यह जलसे-वलसे जानती नहीं। हमें तो घर से मतलब रहा उम्र भर।' कथन में स्पष्ट अस्वीकारोक्ति थी। परन्तु कला ने साधना को संकेत किया कि वह मां को मना लेगी। वह इसी वर्ष कालेज में गई थी। वह भी अपने श्रम की कृपा से। अपनी श्रेणी में प्रथम आने के कारण। उसकी मुख्याध्यापिका जो स्वयं चल कर उसके घर आई थीं और उसकी मां को पढ़ने का महत्व बतला कर उसे आगे पढ़ाने की सिफारिश कर दी थी। नहीं तो मां की इच्छा तो घर बैठा

कर सिलाई सिखाने की थी। अधिक पढ़ कर क्या करेंगी यह लड़कियां, अन्त में तो चूल्हा ही फूकना है। बच्चे ही पालने हैं, सो उनकी समझ में अधिक पढ़ना लिखना बेकार ही था।

भीतर जाकर माधवी बोली, 'तुम्हारी सास तो एकदम जबरदस्त औरत है।'

'बताया तो था न मैंने! सारे परिवार पर हकूमत करती है। यह कला छोटी होने से कुछ मुंह लगी हो गई है।
'किन्तु है अच्छी।' 'घर भर में मुझे केवल इसी का अवलम्ब है दीदी।'

'और रंजीत?' प्रत्युत्तर में साधना के नयन छलक आये। वह कुछ कह न सकी। माधवी को लगा कि साधना के भीतर व्यथा को ज्वालामुखी उबल रहा है जो कभी भी फट सकता है और उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है। तब सब धीरे-धीरे पूछना होगा।

कह कहला कर कला ने मां को मना ही लिया जाने के लिये और कह दिया कि वे तनिक विलम्ब से आयेंगी अतः भोजनादि की तैयारी कर रखें। मां जरा भुनभुनाई तो क्योंकि साधना जब से आई थी रसोई का सम्पूण बोझ उसी पर था किन्तु बोली नहीं, एक तो कला का आग्रह दूसरे सम्बन्धियों की लड़की आई हुई थी। हां! माधवी साधना के मायके से फलों का एक बड़ा टोकरा भी लाई थी। सो श्रीमती सास जी किसी प्रकार मुंह बन्द रख सकी।

महिला सम्मेलन काफ़ी जोर शोर से हो रहा था। माधवी ने जाते ही कार्यालय में अपनी पहुंच की सूचना दी। पंजाब से प्रायः सभी शहरों की प्रतिनिधि महिलाएं आई थीं। प्रधाना जी ने सभी का परिचय एक दूसरी से करवाया। वातावरण

पर्याप्त सदभावना मय एक मैत्री पूर्ण था। माधवी का परिचय 'अमृतसर नारी मन्दिर' की संस्थापिका के रूप में करवाया जाता था। पहले दिवस के अधिवेशन में तीन महिलाओं के भाषण रखे गये थे। माधवी ने कहा कि यदि उसे कल समय दिया जाये तो आभारी रहेगी क्योंकि उस दिन वह कुछ श्रान्त सी थी। इसलिये एक स्थानीय महिला ने बोलना स्वीकार कर लिया। तीन महिलाएं जो प्रथम दिवस बोली उसके विषय भिन्न भिन्न थे। एक ने बच्चों के विकास में महिलाओं का सहयोग' पर भाषण दिया। भाषण अच्छा लिखा हुआ था परन्तु बोलने वाली मंच पर आते ही घबरा गई थी इसलिये भाषण में वह प्रभावशालिता नहीं आ पाई जो एक भाषण में होनी चाहिए। दूसरी महिला का भाषण नारी की अन्य देशा में प्रगति' के विषय में था। यह महिला करनाल से आई थीं और बोलने का अच्छा आभ्यास रखती थी। तीसरी महिला का भाषण अत्यन्त संक्षिप्त और प्रभावशाली था। उनका विषय था 'नारी के उत्तर दायित्व'। विचार बड़े ठोस और रचनात्मक थे।

तत्पश्चात प्रथम दिवस की कार्य वाही समाप्त हो गई। माधवी की इच्छा थी कि थोड़ा सा पैदल सैर कर ली जाये तो शरीर में स्फूर्ति आ जाये परन्तु कला ने मुस्करा कर कहा,

'दीदी क्या पहले दिन ही मार्शल-ला करवाना चाहती हो।'

'क्यों कला ?' माधवी ने उसके उपहास का आनंद उठाते हुए कहा।

मां तो पूर्ण डिक्टेटर हैं दीदी, वह भी साधारण नहीं, सैनिक।

दो रिक्शाएं ले ली गईं और वे घर जा पहुंचीं । साधना ने जाते ही साड़ी बदली और रसोई में चली गई। सास जी का पारा सचमुच ऊपर था किन्तु साधना ने शान्त भाव से कहा, 'मैं आ गई हूं माता जी, अब आप कष्ट न करें।'

बहुत ही संयत रह कर सास जी ने उत्तर दिया, 'इतनी देर तक भी कहीं घर की बहु बेटियां बाहर रहती हैं ? आज मेरी पूजा की बेला भी अनियमित हो गई।'

साधना जब तक कुछ कहे कि कला भी ठुमकती आ पहुंची।

'मां आज तुम्हें हमने बड़ा कष्ट दिया। अब पूजा पर जाओ ।'

इसके पश्चात सास जी ने जो कहा वह इतना धीमा था कि कोई भी न सुन सकी।

रात के भोजन को समाप्त होते होते दस बज गये। रंजीत अभी तक नहीं आया था। चारपाई पर लेटते हुए माधवी ने प्रश्न किया, 'रंजीत क्या सदा ऐसे ही आते हैं ?'

'हां दीदी प्राय: ।'

साधना और माधवी की चारपाईयां उस दिन एक ही कक्ष में थी । रंजीत का विस्तर आज दूसरे कमरे में लगा दिया गया था। माधवी ने जब देखा कि सर्व–प्रकारेण एकान्त है तो पूछा, 'मुझे तो तुम्हारा जीवन एक पहेली सा दिखाई दे रहा है साध बताती क्यों नहीं।'

'दीदी यह मेरे लिये भी तो पहेली बन गया है।'

'साधना मुझे सब बता दे बहिन।'

'एक शर्त पर बताऊंगी दीदी ।'

'कहो ।'

'पिता जी को किसी बात का पता न लगे। मेरे भाग्य में जो है उसे मैं स्वयं क्यों न झेलूं दीदी। माता-पिता का कर्त्तव्य और उत्तर-दायित्व तो ब्याह के उपरान्त समाप्त हो गया।'

'मैं वचन देती हूं साध कि जब तक तू न कहेगी मैं तेरा रहस्य किसी के सम्मुख प्रकट न करूंगी।'

विवाह के दो मास पश्चात तक तो साधना को रंजोत का प्रेम मिलता रहा किन्तु साधना अनुभव करती कि इस प्रेम में गहराई नहीं। रंजोत उसके लिए मधुर कर्णप्रिय शब्दों का प्रयोग करता उसके लावण्य को प्रशसा करता, उसके कोमल स्वभाव की सराहना करता था। ऐसे व्यवहार से वह गदगद् हो जाती। वह साधारण हिन्दु बालिका थी जिसे अपने घर से पति ही सर्वस्व मानने की शिक्षा मिली थी। उसकी मां सर्व प्राणेंन पति की सेवा में रत रहती थी। सीता सावित्री का आदर्श सदा उसके सम्मुख रहा। इसलिये साधना ने पूर्ण रूपेण अपने को पति के अर्पित कर दिया और हाथ जोड़ कर अर्न्तवासी से प्रार्थना की कि वह उसकी यह श्रद्धा जीवन पर्यन्त अटल रखे।

'किन्तु तुम्हारे गहने?' माधवी ने बीच में ही टोक दिया।

'सुनो तो, एक दिन मेरे पास आकर बोले कि पिता जी को सट्टे में एकाएक घाटा पड़ गया है इसलिए अभूषणों को गिरवी रखना पड़ेगा। तुम जानती हो कि गहनों से मुझे कभी विशेष लगाव नहीं रहा। मैंने सारे अभूषण उनके सम्मुख रख दिये किन्तु वे बोले, अपने मायके के आभूषण तुम रखे रहो। मैं तो यह भी न लेता यदि आवश्यकता न होती।'

'जैसा उन्होंने कहा मैंने कर लिया। मैं तो केवल उनके

प्यार का वरदान चाहती थी वह मिलता रहे तो यह आभूषण क्या महत्व रखते हैं। पीछे मुझे पता चला कि वे अभूषण गिरवी नहीं सास जी की तिजौरी में रखे गये हैं। शायद यह भी पता न चलता यदि कला अपनी सहेली के ब्याह पर जाने के लिये मेरी चेन न पहनती। मां ने बहुत इशारे किये पर कला समझ ही न सकी। मैंने तब भी मौन रहना ही उचित समझा। बचपन में सुनी बातें स्पष्ट हो आईं। कभी कभी सुना था कि ब्याह में दिखाने के लिये बहु को आभूषण पहना फिर उन से छीन लिये जाते हैं। परन्तु जिस चालाकी से आभूषण लिये गये उसका रंज मुझे था विशेष कर अपने पति पर। पत्नी जब पति पर पूर्ण विश्वास रखे तो पति प्रवंचना क्यों करे? लौट कर कला ने वह चेन मेरे गले में डाल दी। लौटते हुए मैंने कहा, 'कला बहिन यह चेन तुम माँ जी को ही दे दो।'

'भाबी यह तो तुम्हारी ही है।'

'मेरी नहीं है। मुझसे तो ले ली गई है।' मैंने कहा। कला लज्जित सी चली गई। मेरे भाग्य की क्रीड़ा यहीं नहीं रुकी, पतिदेव अब घर में मेरी उतनी परवाह न करते। रात को भी देर देर से आते। एक दिन हार कर मैंने सीधा उनसे प्रश्न किया तो जो उत्तर उन्होंने दिया उससे मेरे पांवों के नीचे भूमि खिसकती दिखाई दी। मुझे लगा कि जिस अधार पर खडी हूं वह भयंकर लावा है जहां अग्निकण बरस रहे हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनका प्रेम केवल अभिनय है। घर वाले सभी जानते हैं। यह ब्याह केवल मां के हठ से हुआ है वर्ना वे तो इसके हित उद्यत न थे। क्षमा-याचना सी करते हुए उन्होंने कहा—तुम समझ सकोगी

साध कि ऐसी स्थिति में एक पुरुष की क्या अवस्था हो सकती है। मैंने तुम्हें स्पष्ट रूप से सब बता दिया है। ऐसी अवस्था में भी तुम मुझे स्वीकार कर सको तो मैं तुम्हारी प्रशंसा किये बिना रह सकुंगा।'

मैंने उनकी बात का कोई उत्तर न दिया दीदी किन्तु हृदय पर जैसे हज़ारों पत्थरों का बोझ पड़ गया था। मन को कसक ने नयनों में मिर्चें सी भर दी थीं। न रो सकती थी न हंस सकती थी।

इस रहस्य के प्रकट हो जाने पर तो वे और भी निडर हो गये। प्रेम के खेल जो पहले गुप्त रूप से खेलते अब खुल कर खेलने लगे। इधर मैं दुबली होने लगी। कला ही मेरी सुख दुख की संगिनी थी। वह अब समझदार थी और मेरी व्यथा को समझ सकती थी। कभी कभी मैं मन की थोड़ी सी झलक उसे दे देती इस प्रकार मेरा मन भी तनिक शान्ति-लाभ करता था। किन्तु सर्वाधिक टीस पहुंचाने वाला मेरा दीवाली का उत्सव था। मैंने उन्हें कह दिया था कि भीतर से चाहे जीवन कैसा रहे बाहर से किसी को विदित तक न हो। दीवाली का पहला त्योहार है इसलिये लक्ष्मी पूजा साथ-साथ ही करेंगे। मेरे साथ वायदा करके गये थे कि वे समय पर आ जायेंगे। किन्तु दीपक जलने का समय आ गया और वे नहीं आये थे। माता जी बार-बार पूछतीं—'बहु रंजीत नहीं आया?'

मैं क्या उत्तर देती रेखा जानती थी पर मां के कोपभय स्वभाव के सम्मुख उसने भी चुप रहना उचित समझा। तब बिना इनके ही पूजा की गई। मेरा मन बुझा-बुझा रहा। बाद में कला पीछे पड़ गई कि शहर की दीप माला देखने

जायेगी । अनिच्छा होते हुए भी मैं गई दीदी, परन्तु मैं तो ठिठक कर रह गई एक स्थान पर । किसी सांवली सी लड़की के साथ पति देवता विधुत प्रकाश की शोभा निरख रहे थे । मेरा तो मानों खून जम गया । मैंने संकेत से कला को दिखाया । एक बात और भी आश्चर्य में डालने वाली थी उनकी संगिनी ने मेरे कर्ण फूल पहन रखे थे ।

'भाबी तुम्हारे कर्ण फूल ।'

'हां कला ।'

इससे पूर्व कि हम पर उन लोगों की नज़र पड़े हम वहां से हट गई थीं । घर आकर मैंने अपना ट्रंक देखा तो आभूषणों का डिब्बा ही उड़ चुका था । कला ने यह सब घटना माँ को बताई तो बेटे की करतूत पर लज्जित हो कर बोली, 'तो यहां तक बढ़ गया कपूत । मैंने सोचा था लच्छमी सी बहु पाकर कम्बख्त के लक्षण सुधर जायँगा । अभागा है और क्या कहुं ।'

भावा वेश में वे भीतर गईं और वे सब आभूषण ले आईं जो मुझसे छीन लिये गये थे । मुझे सौपंते हुए कहा,

'बहु अन्याय से हमने तुम्हारा अधिकार छीना था उसे पुन: लो ।'

'किन्तु मां जी यह आभूषण मैं अब न लूंगी । झूठ सच बात बना कर जो आभूषण ले लिये गये वे मेरे लिये विष सदर्श है ।'

'मां को क्षमा नहीं करेगी बेटी ? इतना क्रोध अच्छा नहीं होता ।' मां जी बोलीं किन्तु मैं अपनी बात पर स्थिर थी । मैंने स्पष्ट कह दिया कि मैंने आभूषण न लेने की कसम खा

ली है। तब मां जी सचमुच रो पड़ी और कहने लगी, 'तू समझना तेरी धरोहर मेरे पास रखी है।' उस दिन मैंने मां जी का स्वभाव देखा कि वे पत्थरों से आनृत स्त्रोतस्विनी हैं।

कला ने पति देव वाली बात ही दोहराई कि सचमुच मां की हट के कारण ही भय्या ने विवाह किया नहीं तो वे पहले मानते ही न थे। मां पुराने विचार की थी उनके विचार में ब्याह हो जाने के पश्चात सभी लड़के घर गृहस्थी के बन्धन में पड़ कर सुधर जाते हैं। परन्तु ऐसा हुआ नहीं।

मैंने अपने गहनों के विषय में कोई बात उनसे नहीं की। किन्तु एक दिन वे स्वयं ही लौटा लाये। कहने लगे किसी मित्र को कुछ दिन के लिये आवश्यकता थी सो ले गया था।

मैंने मन में कहा तो मांग कर भी ले सकते थे ताला तोड़ने की क्या आवश्यकता थी। पर ऊपर से कहा, 'मुझे तो गहनों का मोह है नहीं। आप उन्हीं मित्र को फिर दे देवें।'

'यदि कोई महिला मित्र हो तो।'

'तो भी मुझे प्रसन्नता है क्योंकि उसमें आपकी प्रसन्नता निहित है।' मैंने कहा। किन्तु मेरे गहने उन्होंने लौटा दिये। तब से मैंने न पहनने की शपथ सी ले ली। दीदी तुम ही बताओ जब जीवन एक विडम्बना बन जाये तो इन जड़ आभूषणों को क्या करुं। अब तो जीवन शायद इसी प्रकार व्यतीत हो जायेगा। छः मास में ही कांया पलट हो गई।

मां और पिता जी को क्या लिखूं। वे क्या सुखी हैं ? कठिनाई से तो मुझसे पीछा छुड़ा पाये। क्या पुनः उनके गले का बन्धन बन जाऊं। इसलिये मैंने तो निश्चय कर लिया है कि जैसे भी हो जियुंगी और मरुंगी और अपने जन्म दाताओं को अपनी कथा की झलक तक न दूंगी।'

रात्रि काफ़ी जा चुकी थीं। साधना एक घुटन सी अनुभव कर रही थी। उसने उठ कर खिड़की खोल दी। चांदनी छिटक रही थी। एक शीतल मन्द समीर का झोंका आकर वातावरण को सुरभित बना गया। साधना ने कहा, 'दीदी रात बहुत चली गई अब सो जाओ।'

'तुम्हारी गाथा सुन कर तो लगता है नींद आयेगी नहीं।'

"मैंने तुम्हें दुखी कर दिया न, सच दीदी यह आभागी साधना जीवन भर न कभी स्वयं सुख पायेगी न दूसरों को देगी।'

'ऐसा न कहो साध, अपने को यों मत कोस बहिन। मैं समझती हूं कि तेरी रंगीन बसन्तें बहुत जल्दी पतझड़ों में परिवर्तित हो गई हैं किन्तु निराश तो नहीं होना चाहिये दिन बदलते देर नहीं लगती। भाग्य के चक्र में यदि रात्रि की कालिमा है तो प्रभात की लालिमा भी होगी।'

'हां दीदी आशा ही जीवन का सम्बल है।'

'अच्छा साध एक बात बता ?'

'क्या ?'

'तू एक दम इतनी दुबली और पीली क्यों हो गई है। केवल दुख के कारण या कोई विशेष कारण......?

प्रत्युत्तर में साधना केवल मुस्कराई। माधवी उस मुस्कराहट में छिपे लज्जा के भाव को समझ गई।

दोनों ने सोने का उपक्रम किया । माधवी अपनी और साधना की तुलना करने लगी । एक ब्याह न करवा कर दुखी है दूसरी ब्याह करवा कर दुखी है । आज से कुछ वर्ष पूर्व उसे अपने भविष्य का ज्ञान न था यही बात साधना के विषय में थी । कल का रूप सचमुच इतना अच्छादित है कि कोई भी उसे निरख नहीं पाता । पास के ही किसी घडियाल ने बारह बजा कर मानों सोने की चेतावनी दी । माधवी चिन्ता ग्रस्त न जाने कब निद्रा के मधुर अंक में पहुंच गई और कुछ अवधि के लिये बाह्य जगत उसके लिये शून्य था । हां ! स्वप्न लोक की बात कही नहीं जा सकती ।

२०

अगले दिन माधवी अकेली ही महिला सम्मेलन में गई । साधना को घर में काम था और कला को कालेज जाना था । आज पूरे दिन का कार्यक्रम था और बाहर से आई प्रतिनिधि महिलाओं के लिये मध्याह्न के भोजन का वहीं प्रबन्ध था । वहाँ पहुंचते ही प्रधाना जी ने उसे भोजन का आमन्त्रण दिया ।

'आप ठहरी तो नहीं हमारे पास, अब भोजन यहीं कीजियेगा ।'

'किन्तु मैं तो कह कर नहीं आई ।'

'आप घर का पता बता दें मैं सन्देश भिजवा दूँगी ।'

मध्याह्न-पूर्व के कार्यक्रम में ही माधवी के बोलने का

कार्यक्रम रखा गया था। अपने शहर से बाहर बोलने का प्रथम अवसर था माधवी के लिये, अतः वह घबरा रही थी। मंच पर जाते समय वह हिचक सी अनुभव कर रही थी। किन्तु जैसे ही बोलना प्रारम्भ किया उसकी वाणी में सुदृढ़ता आती गई। उसका विषय था 'नारी और नौकरी'। विषय चलते युग की ज्वलन्त समस्या थी। आज जिधर देखो नारी नौकरी के लिये भटकती तड़पती दीख रही है। क्या वास्तव में नारी को बाहर काम करने की इतनी ही आवश्यकता है। माधवी ने कहा—

'मैं काम करने को हेय नहीं समझती। देखना तो यह है कि जितनी दौड़-धूप या आकर्षण इस क्षेत्र में दृष्टिगत हो रहा है वह समाज को कहां खड़ा रहने देगा ? निः सन्देह कुछ बहिनें विवश हो जाती हैं कि वह स्वयं जीविकार्जन करें। आर्थिक दृष्टि से वे सर्वथा असहाय एवं दीन होती हैं। परन्तु यहां तो देखा जाता है कि अच्छे सम्पन्न घरों की लड़कियां भी नौकरी में रुचि रखती हैं। उन्हें चाहिये कि वे समाज सेवा को अर्थ सेवा की अपेक्षा अधिक महत्व देवें। जब विधाता ने अभाव की कुटिल रेखा उनके मस्तक पर अंकित नहीं की तो इस सुअवसर को अन्य बहिनों के लिये क्यों न छोड़ दें।

अब हमें घरों की स्थिति के विषय में विचार करना है। यह तो निश्चित तथ्य है कि हमारी संस्कृति में नारी गृह लक्ष्मी के पद को सुशोभित करती है। कुछ प्रगतिशील बहिनें मुझे पिछड़ी हुई कहेंगी परन्तु मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि यहीं नारी का सम्यक् स्थान है। कहीं कहीं माता-पिता दोनों काम पर जाते हैं और बच्चों को आया एवं नौकर पर

आश्रित रहना पड़ता है । वे आया या नौकर वेतन भोगी होते हैं वह कैसे बच्चों को माता-पिता का निश्छल निष्काम प्यार दे सकते हैं । इस प्रकार बच्चे प्रारम्भ से ही कुन्ठित एवं सकुंचित वृत्ति के हो जाते हैं । संकरी क्यारों में पनपने वाले पौधों की भांति उनका विकास रुक जाता है । ऐसे बच्चे कैसे राष्ट्र का बोझ अपने दुर्बल कन्धों पर ले सकेंगे, यह एक गहन चिन्तन का विषय है ।

अब आप दाम्पत्य जीवन को ही लीजिये । आज चतुर्दिक असन्तोष की भावना लक्षित होती है । पति एवं पत्नियां दोनों एक दूसरे से असन्तुष्ट हैं । इसका मुख्य कारण जीवन का यह असन्तुलन हैं । पहले पति जब बाहर से आते थे तो पत्नी प्रेम-पूर्ण हृदय से उसका स्वागत करती थी उसके सुख-विश्राम का सुप्रबन्ध करती थी । उसकी एक मृदुल मुस्कान से पति की शान्ति मिट जाती थी । किन्तु आज क्या है, एक चख-चख पति-पत्नी दोनों ही थके- मादे घर लौटते हैं । ऐसी स्थिति में कौन एक दूसरे के लिये करे यही प्रश्न उठता है । कई लोग तो वास्तव में आवश्यकता रखते हैं किन्तु कई तो अपने व्यय ही इतने बढ़ा लेते हैं कि उनकी अर्थ व्यवस्था ही पूर्ण नहीं हो पाती । पति-पत्नी दोनों की कमाई भी अधूरी रहती है । इस प्रकार न सुख मिलता है न सन्तोष । दाम्पत्य जीवन का सौंदर्य ही इन भौतिक संघर्षों में समाप्त होता जा रहा है ।

अब प्रश्न यह है कि महिलाओं की नौकरी कैसी होनी चाहिये ? आज हम देखते हैं कि हर विभाग में पहुंचने का स्त्रियां प्रयास कर रही हैं । अध्यापन और नर्सिंग के क्षेत्र में ही नहीं, पुलीस, टेलीफोन एक्सचेंज, शासकीय विभागों में भी

स्त्रियां जाने लगी हैं। है तो यह गौरव की ही बात किन्तु चिन्तनीय यह है कि क्या यह कार्य नारी के स्वभावानुकूल हैं ? उदाहरणतया पुलीस का कार्य ही लिया जाये। इसमें जिस नीरसता, कठोरता एवं हृदय हीनता का प्रदर्शन करना पड़ता है वह स्त्री स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। स्त्री यत्न करने पर भी पुरुष की भांति रुक्ष एवं दुर्दमनीय स्वभाव को अपना नहीं सकती। इसी प्रकार शासकीय विभाग हैं इसमें कार्य करना तभी सम्भव है जब नारी अपने दाम्पत्य-जीवन को बलिदान करने के लिये प्रस्तुत हो। प्रशासन और नारी कर्त्तव्य का साथ साथ निभना असम्भव प्राय है। अब मेरी बहिनें स्वयं सोच सकती हैं कि उनके लिये कौनसा मार्ग श्रेयस्कर हैं। जीवन की विषमताओं का सुलझना तब तक सम्भव नहीं जब तक नारी-पुरुष एक दूसरे के हित समर्पित होने को तत्पर नहीं।

मेरा तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियां वाह्य क्षेत्रों में भाग न लें। मैं तो केवल यह कहना चाहती हूं कि स्त्रियां वही काम करें जो उनके योग्य हों। तभी काम करने के लिये घर सुखों का बलिदान करें जब वे स्थितियों से विवश हो जायें। किन्तु बिना कारण और आवश्यकता के, नौकरियों के लिये होड़ लगाना स्त्रियों के लिये उचित नहीं। आप सोच लीजिए यदि सभी स्त्रियाँ घरों को त्याग कर बाहर आ जाएं तो घरों का क्या रूप होगा ? बिल्कुल सराय या पक्षियों के नीड़ की भांति पति पत्नी वहां बसेरा लिया करेंगे। दाम्पत्य सुख का नाश होगा वह अलग और बच्चों का निर्माण रुक जायेगा यह हानि अलग।

अन्त में मैं तो अपना मत यही दूंगी कि परिस्थितियों

को परख कर ही नारियों को गृहस्थ्य के सुखों का बलिदान करना चाहिए। नहीं तो घर में उनका उत्तरदायित्व अधिक गम्भीर और महत्व पूर्ण है। करतल ध्वनि के मध्य माधवी का भाषण समाप्त हुआ। इसके उपरान्त अम्बाला की प्रतिनिधि महिला का भाषण हुआ जिस का निशाना आधुनिक युग के बढ़ते हुए फैशन थे।

शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम थे। भिन्न भिन्न विद्यालयों की छात्रों ने इसे प्रस्तुत किया था। सभी रूपक नारी जीवन से सम्बन्ध रखते थे। माधवी को दो मूक दृश्य अतीव भाये। एक था एक सुखी गृहस्थ का जहां पति पत्नी प्रसन्न थे, बच्चे प्रसन्न थे, इसका शीर्षक था 'स्वर्ग' दूसरा था एक कलह पूर्ण गृहस्थी का चित्र, उसका शीर्षक था 'नरक'। एक रूपक कठपुतलों का था बहुत सुन्दर और मनोभावना।

कुल मिला कर सम्मेलन पर्याप्त सफल रहा। इस बार माधवी का नाम भी कार्यकारिणी में ले लिया गया था। निर्णय हुआ कि वर्ष में दो बार इस प्रकार के सम्मेलन होने चाहियें। क्योंकि भिन्न भिन्न विचारों के विनिमय सदा लाभ प्रद होता है। साथ ही नारी वर्ग में एक प्रकार की जागृति भी होती है। माधवी ने आगामी अधिवेशन के लिये अमृतसर का नाम प्रस्तुत कर दिया जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हो गया।

माधवी साधना के घर लौटी तो रंजीत आज घर पर ही थे। माधवी का स्वागत करते हुए बोला, 'कल मैं काम से किसी मित्र के संग लुधियाना चला गया था।'

माधवी को कुछ क्षण तक सुध न रही कि वह क्या कहे। साधना की सारी बातें मस्तिष्क में कौंध गईं। फिर भी जैसे बात करने के लिये कहा, 'आप को बता कर तो जाना चाहिये

था। साध बेचारी काफी रात तक आपकी प्रतीक्षा करती रही।'

वह रात भी माधवी वहीं रही। दूसरे दिन प्रातः काल ही उसका लौटने का विचार था। दोनों दिन साधना खिली खिली रही और कला—वह एक दम माधवी की आत्मीय हो गई थी। दीदी, दीदी, करती उसके इधर-उधर चक्र लगाती थी। माधवी भी उसके भोले स्वभाव पर मुग्ध हो गई थी। साधना की सास भी माधवी के मिलनसार स्वभाव पर मोहित हो गई थी। माधवी ने परखा कि बुढ़िया लोभिन अवश्य है किन्तु मन की ऐसी बुरी नहीं है।

रात को कला के साथ बैठ कर साधना के विषय में सारी बात की। कला साधना की परिस्थिति से अभी अनभिज्ञ थी। सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई, कहा, 'मैं भाबी का पूर्ण ध्यान रखूंगी दीदी। मुझे भाबी ने बताया ही नहीं।' और कला साधना की ओर देख मुस्कराई। साधना लाज के कारण लाल हुई जा रही थी।

प्रातः काल छः बजे ही माधवी सामान आदि बांध कर तैयार हो गई। साधना उससे दृष्टि बचा रही थी। उसका मन भरा हुआ था। कहीं वह रो ही न पड़े। परितोष के लिये एलबम और छोटी बहिनों के लिये कमीज़ें उसने उपहार स्वरूप भेजी थी। कला माधवी से गप्पें लड़ा रही थी।

रिक्शा आगई। माधवी का सामान लद गया। तब माधवी साधना को एक ओर ले गई। कहा, कोई कष्ट हो तो निसंकोच लिख देना बहिन। मैं तो तुम्हें साथ ही ले जाती। यह अत्याचार देख तो मेरी छाती फटती है। केवल तुम्हारे माता-पिता से भय है। कहीं यह न कहें कि बेटी

को बिगाड़ दिया ।'—'तुम कुछ भी मत बताना दीदी । कुछ देर मुझे भाग्य से टकराने दो फिर देखुंगी । मां व पिता को प्रणाम देना । सरो को परितोष को ..नीला को...सबको प्यार देना ।' रुक रुक साधना ने कहा ।

'अपने स्वास्थ्य का ध्यान अवश्य रखना ।'

'अच्छा दीदी । तुम्हारे स्नेह को कैसे भूल पाऊंगी समझ नहीं आता ।'

गाड़ी का समय हो रहा था । कला के गाल को प्यार से थप थपा, उसकी मां को बन्दना कर माधवी रिक्शा पर आ बैठी । रिक्शा चल पड़ी । साधना द्वार पर खड़ी तब तक देखती रही जब तक वे नेत्रों से ओझल न हो गई । कला ने उसका कन्धा थाम कर कहा, 'अब चलो भाबी । माधवी दीदी कितनी अच्छी है ।'

'चल कला ।'

उसका सहारा लेकर साधना भीतर चली गई हृदय पर एक भारी बोझ सा लिये हुए ।

२१

श्रीमती सरला देवी की अस्वस्थता के कारण डा० गुप्ता यदा-कदा उस घर में आने लगे और शनैः शनैः उस परिवार के लिये अपने से हो गये । सरला देवी उन्हें पुत्र सदृश स्नेह देती थीं। डा० गुप्ता कहते कि जब भी वे सरला, देवी

के निकट आते हैं उन्हें अपनी मां की छत्र छाया का आभास होता था। सरला देवी कभी कभी उन्हें निमन्त्रण देती और उनके मन भावन व्यंजन इत्यादि बना कर खिलाती। रेखा भी पर्याप्त निकट हो गई थी। कभी साधारण दवाइयों के विषय में पूछ-ताछ करती, कभी सामयिक विषयों पर वार्तालाप चलता। डा० गुप्ता रेखा के मुक्त स्वभाव और चातुर्य से प्रभावित थे और एक दिन सुअवसरपाकर श्रीकान्त से अपने मन के भाव प्रकट कर दिये। श्रीकान्त को जैसे इसकी कतई आशा न थी। एकाएक वह कोई उत्तर न दे सका फिर कुछ सोच कर बोला, 'मुझे प्रसन्नता ही होगी डा० साहब किन्तु मां और रेखा से राय लिये बिना कुछ कह न सकुंगा।'

घर आकर श्रीकान्त ने पहले स्वयं इस विषय पर अच्छी प्रकार सोच-विचार किया। उसे इसमें भलाई दृष्टिगत हुई। इस अवधि में वह डा० गुप्ता के स्वभाव से सुपरिचित हो चुका था। निःसन्देह वे एक कर्तव्य निष्ठ और दयालु युवक थे। आधुनिक युवकों की सी चपलता, अस्थिरता उनमें न थी फिर भी एक हिचक थी जिससे श्रीकान्त भय खाता था वह थी जाति का अन्तर। मां कदाचित इस सम्बन्ध को स्वीकार न करें। वे अवश्य किसी ब्राह्मण जाति के युवक से रेखा के ब्याह को अधिमान देंगी किन्तु इतना श्रेष्ट वर और कहां मिलेगा। रुप-गुण और कर्म सम्बन्धी सभी विशेषताएं किसी एक ही व्यक्ति में आजकल मिलनी कितना कठिन हैं यह श्रीकान्त जानता था। और फिर सब से बड़ी बात यह थी कि डा० गुप्ता स्वयं रेखा का हाथ मांग रहे थे। रेखा ने भी उन्हें देखा और परखा है। सम्भव है उसके हृदय में भी कोई भाव हो किन्तु इसका ज्ञान कैसे हो? वह चिन्ता

मग्न हो गया। यदि यह कार्य हो जाये तो एक महत्-उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकता है। वह मां से बात करने का सुअवसर खोजने लगा।

एक दिन शाम को वह घर लौटा तो मां अकेली ही थीं। अभी अभी पूजा गृह में से निकल कर आई थीं अतः मुख सहज शान्त और प्रफुल्ल था। रेखा की परीक्षा निकट थी इसलिये वह किसी सह-पाठिनी के यहां पठनार्थ गई थी। श्रीकान्त पहले तो संकोच अनुभव करता रहा फिर साहस कर बोला, 'एक बात बहुत दिनों से कहने की सोच रहा हूं मां?'

'सुनु' तो कौन सी बात है जिसे कहने में तुमने बहुत दिन लगा दिये।'

मां चलते चलते ठिठक कर बोली।

'मां रेखा के ब्याह की बात है।'

'क्या कोई अच्छा लड़का मिल रहा है।' आल्हाद से भरपूर हो मां ने पूछा।

'अच्छा तो है मां.........' श्रीकान्त झिझक रहा था।

'तो क्या?'

'अपनी जाति का नहीं है।'

मां चुप की चुप रह गईं। इस उत्तर ने जैसे उन्हें जकड़ लिया। मां को देख श्रीकान्त पुनः कहने लगा, मां मैंने कभी तुम्हारी बात टाली नहीं, अब भी नहीं टालुंगा किन्तु इतना अवश्य कहुंगा कि आज के युग जाति-पाति की यह गाड़ी बहुत देर चलने की नहीं। जाति-पाति की यह परम्पराएं दीवारें बन कर मानवता और देश की प्रगति में बाधा डाल रही हैं। क्या कोई लड़का इसी लिये अच्छा हो जायेगा कि वह

ब्राह्मण है। मां यह सब अच्छाई ब्राह्मणों के ही भाग्य में नहीं आई है, और लोग भी तो इसके अधिकारी हैं।'

'तू तो बड़ा अच्छा व्याख्यान दे सकता है बेटा पर तूने यह कैसे समझ लिया कि मैं तुम्हारा विरोध ही करूंगी। मैं स्वीकार करती हूं कि मेरे भी संस्कार हैं, मेरी अपनी मान्यताएं, परन्तु सबसे बढ़ कर तुम दोनों की प्रसन्नता है। मैं व्यर्थ में तुम दोनों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचाऊंगी।'

'मां तुम कितनी उदार हो।' श्रीकान्त सचमुच मां से लिपट गया।

'पगला' मां ने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरा और पूछा,

'कौन है वह लड़का।'

'डा० गुप्ता।'

'क्या तूने उनसे पूछ लिया बेटा ?' मां ने चकित भाव दिखाया।

'मां, उन्होंने स्वयं रेखा का हाथ मुझ से मांगा है। तुम्हारी स्वीकृति मिल गई अब केवल रेखा से पूछना शेष है।'

'तो पूछ लेना।'

'मां ! यह कैसे सम्भव है। फिर भी उसका बड़ा भाई हूं। वह तो लज्जा से एक बात भी न करेगी।'

'तो माधवी से कह, वह पूछ लेगी।'

'यह ठीक कही तुमने, मैं कल ही माधवी दीदी को बुला लाऊंगा, आज वह जालन्धर से आगई होगी।'

इतने में रेखा पुस्तकें थामे आ गई। उसके चेहरे से

लगता था कि आज कल खूब पढ़ती है। क्योंकि मुख पर वह तरलता और ताज़गी न थी।

'आजकल खूब पढ़ती हो रेखा ?' आते ही भाई ने पूछा।

'और क्या करूं, तुम्हीं तो प्रथम श्रेणी लेने को कहते हो। जान आफ़त में डाल रखी है परीक्षा ने।' फिर मचल कर मां से कहा, 'मां भूख लगी है कुछ खाने को दो।'

भोजन तैयार होने में विलम्ब था अभी, किन्तु मां ने समय-असमय के लिये मठ्ठियां और बेसन की मिठाई बना रखी थी, वह प्लेट में डाल कर सरला देवी रेखा के लिये ले आई।

'भय्या खाओगे ?' किन्तु श्रीकान्त के उत्तर देने से पूर्व ही रेखा ने भोग लगाना आरम्भ कर दिया। श्रीकान्त हंसता रहा। फिर बहिन से प्रश्न किया, 'सभी विषय ठीक हैं न ?'

'और तो सब ठीक हैं; किन्तु संस्कृत.........।'

'संस्कृत ?'

'दो मास से प्रोफ़ैसर साहिबा छुट्टी पर हैं। कोर्स ही पूर्ण नहीं हुआ।'

'तू क्यों नहीं पढ़ा देता कान्त ?' मां ने प्यार से कहा।

'मैं पढ़ा दिया करूंगा।'

रेखा जानती है कि आजकल भाई की टयूशनों के दिन हैं इसलिये कहती नहीं थी। श्रीकान्त आज कल छः सात लड़के लड़कियों को पढ़ा रहा था। दिन भर काम करते-करते वह थक जाता था। अब वह अनुभव करने लगा था कि इस प्रकार जीवन निभने का नहीं। निश्चित आय हो तो जीवन में विश्राम के क्षण भी निकल सकते हैं नहीं तो संघर्ष ही संघर्ष चलता है। उसने निश्चय कर लिया कि किसी कालेज

में स्थायी कार्य कर लेगा। अपना विचार रेखा को बताते हुए उसने कहा, 'रेखा, अब तो कहीं टिक कर रहने का विचार है।'

'शुक्र है, तुम्हारे मन में भी यह विचार आया। क्या करोगे ?'

'मेरी रुचि तो केवल अध्यापन कार्य में ही है। दो एक जगह आवेदन पत्र भेज दूंगा। कहीं न कहीं तो मिल ही जायेगा।'

'अच्छा है, भाबी के आने से पूर्व कहीं स्थिर हो जाओ।'

रेखा ने कनखियों से मां की ओर देख कर कहा, 'क्यों मां ?'

मैं तो सदा यही इच्छा करती हूं बेटी। तुम दोनों की जीवन धारा निश्चित हो जाये तो यह नेत्र मुंद जायें।'

'तुम सदा अशुभ बात क्यों करती हो मां ?'

'मां-बाप सदा किसके रहते हैं बेटा। तुम तो फिर भी सुख-दुख बंटाने के लिये दो हो किन्तु बेचारी माधवी...।

माधवी का प्रसंग छिड़ गया तो श्रीकान्त ने रेखा से पूछा, 'माधवी दीदी आ गई होगी आज ?'

'आने की बात तो थी ही, कल जाऊंगी साधना के विषय में पूछने। देर से उसकी सूचना ही नहीं मिली।

'नहीं, नहीं तुम अपनी पढ़ाई मत खराब करना। मैं ही आऊंगा और उन्हें साथ ही ले आऊंगा।'

'बहुत अच्छा।'

बात चीत में इधर-उधर करके एक घन्टा व्यतीत हो गया था। रेखा उठ पड़ी। टोकते हुए श्रीकान्त बोला,

'अरे, अरे अभी मत पढ़ने बैठो। कम से कम आध घन्टा और मस्तिष्क को विश्राम दो।'

'अभी नहीं पढ़ूंगी, कुछ काम है।'

'आज कल रेखा खूब सन्ध्या करती है कान्त।' मां ने मुस्कान बिखराते हुए कहा।

'मां।' रेखा ने मां को तनिक उलाहने भरी दृष्टि से देखा।

'भगवान को रिश्वत देती है परीक्षा के दिनों में।'

'भगवान कभी रिश्वत नहीं लेते बेटा, जिस क्षण, जिस भाव से जो अर्थी बन कर उनके दरबार में उपस्थित होता है वे उसकी अवश्य सुनते हैं।'

'मैं तो हंस रहा था मां, तुम्हारी सन्तान होकर भी यदि श्रद्धा और विश्वास के बीज हमारे हृदय क्षेत्र में अंकुरित न हों तो तुम्हारा श्रम हो निष्फल जायेगा।'

मां बेटे के शब्दों से गद् गद् हो उठी।

× × ×

माधवी अभी नित्य-कार्य से निबट कर बैठी ही थी कि माया ने श्रीकान्त के आने की सूचना दी। माधवी ने उसे भीतर ही ले आने की आज्ञा दे दी।

'कल ही आ गई थीं दीदी? कैसा रहा आपका सम्मेलन?'

'दो प्रश्न हैं आपके श्रीकान्त भाई और दोनों का उत्तर 'हां' में है। सम्मेलन पर्याप्त सफल रहा।

'ऐसे सम्मेलन विचार विनिमय के सफलतम साधन हैं। भिन्न विचार वाले लोगों से मिल कर हम बहुत कुछ सीखते हैं। मानसिक विकास होता है।'

'सो तो है ही। अब बताइये रेखा कैसी है, मां तो ठीक हैं ?'

'सब ठीक है। रेखा इन दिनों पुस्तकों में उलझी हुई है। परीक्षा जो निकट है।'

माधवी को अपनी परीक्षा के दिन स्मरण हो आये और इस स्मृति के साथ मकरन्द की आकृति भी उसके हृदय को विचलित कर गई। चित्र-पट की रील के समान वे सारे चित्र नेत्रों के सामने मूर्त हो गये। उसे लगा मन के किसी गुप्त कोने में मकरन्द का वही सहास मुख उससे कुछ याचना कर रहा है। उस के हृदय में एक टीस सी उठी किन्तु तत्क्षण वह सम्भल गई और कहा,

'मन तो जाने कहां से कहां पहुंच जाता है कान्त भाई। परीक्षा की बात चलते ही मेरा अतीत मूर्त हो गया।'

'चेतना का प्रवाह अनवरत भाव से चलता है दीदी, चाहे अतीत की ओर चले या आगम भविष्य की ओर'

श्रीकान्त चाह कर भी साधना के विषय में पूछ नहीं पा रहा था। आखिर वह क्यों पूछना चाहता है ? उसका उसके साथ कोई सम्बन्ध भी तो नहीं अतिरिक्त इसके कि वह रेखा की सखी है और कभी-कभी उन लोगों के साथ कार्य करता रही है। वह सोच ही रहा था कि माधवी स्वयं बोल उठी, 'ठहरी तो मैं साधना के पास ही थी।'

'कैसी थी ?' श्रीकान्त के मुख से निकला।

'ब्याह कराके उसे सुख नहीं मिला।' सच बात तो यह है कि हिन्दु समाज में लड़कियों के जीवन-सुख के विषय में अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। ब्याह करके ही जैसे कर्त्तव्य पूर्ति समझी जाती है। जीवन साथी के गुण-कर्म-स्वभाव की

परीक्षा तो ली ही नहीं जाती। लड़की के चुनाव के विषय में जितनी सावधानी बर्ती जाती है लड़के के चुनाव के विषय में नहीं।'

'क्यों कई लोग तो खूब छान बीन कर सम्बन्ध स्थापित करते हैं।'

'कुछ बुद्धिमानों की बात रहने दीजिये मैं तो साधारण वर्ग की बात करती हूं। उसमें तो केवल लड़के के काम काज से मतलब है।'

'मैं इसी विषय में आप से एक राय लेने आया हूं।'

माधवी सुनने के लिये उत्सुक हो गई। उसने समझा शायद श्रीकान्त अपने विवाह के विषय में कोई बात करना चाहता है।

'आप ने डा० गुप्ता को देखा है ?'

'जी हां।'

'कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं। बहुत अच्छे।'

'काम की दृष्टि से या गुण और स्वभाव की दृष्टि से ?'

'काम तो उनका अच्छा ही है और जहाँ तक मेरी परख का प्रश्न है मुझे तो भले ही दीखते हैं; किन्तु इतने सूक्ष्म निरीक्षण की क्या आवश्यकता पड़ गई ?' माधवी ने कोतुहल भय भाव से पूछा।

'बात यह है माधवी दीदी कि रेखा का ब्याह उनके साथ हो जाये तो कैसा रहे ?'

कुछ सोच कर माधवी ने कहा, 'सम्बन्ध तो अच्छा है और मैं डा० गुप्ता को उनके चचा के द्वारा कहला भी सकती हूं।'

'कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने स्वयं ही कहा है।'

'तो फिर।'

'मैं नहीं चाहता कि रेखा की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य हो। उस से पूछने का काम आपको करना होगा। सो हो सके तो मेरे संग ही चलिये।'

माधवी भीतर गई और पांच ही मिनट में साड़ी आदि बदल कर तैयार हो कर आ गई। श्रीकान्त साइकिल पर था वह रिक्शा ले आया।

रेखा पुस्तकों से मस्तिष्क लड़ा रही थी कि माधवी पहुंच गई। पुस्तकों को छोड़ कर रेखा ने उसका स्वागत किया और कुर्सी लाने दौड़ी किन्तु माधवी पसर कर चारपाई पर ही बैठ गई और बोली, 'अरे, रहने भो दे रेखा।' रेखा भी निकट ही बैठ गई। सब से पहले उसने साधना के विषय में पूछा 'साधना कैसी है दीदी, उसका घर, उसकी सास, सब कैसे हैं?'

'अच्छे ही हैं रेखा। तुझे बहुत याद करती थी।'

'मुझे याद करेगी वह, उहं, दो मास से पत्र तक लिखा नहीं।'

माधवी कैसे कहे कि साधना कितनी विवश है। साधना ने वचन ले लिया था। हां! श्रीकान्त को उसने कुछ झलक अवश्य दे दी थी, अब रेखा से वह नहीं कहेगी।

माधवी इस उलझन में थी कि रेखा से अपनी बात कैसे प्रारम्भ करे। फिर सहसा भूमिका बांधते हुए कहा, 'बी. ए. के पश्चात क्या विचार है?'

'एम. ए. और क्या?' रेखा को आश्चर्य हुआ कि यह

माधवी दीदी कैसी बात पूछ रही है ।

'और मां का उत्तरदायित्व ? वे तो तुम्हारा ब्याह करना चाहती हैं।

'वह कैसे हो सकता है।' रेखा ने भोले पन में उत्तर दिया।

माधवी हंस पड़ी, 'क्यों वह नहीं हो सकता ?'

'नहीं दीदी मेरा तात्पर्य यह न था। किन्तु अभी तो मेरी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई।'

'जहां तक शिक्षा का प्रश्न है रेखा वह काफी हो जायेगी। हां सम्बन्ध का संयोग न लगे तो जितना भी चाहो पढ़ सकती हो।'

रेखा ने टाल जाना चाहा, कहा, 'अभी तो मेरे निकट मरने का अवकाश भी नहीं है दीदी।'

'हां ! हां ! ऐसी ही व्यस्त है तू । मेरी एक बात का उत्तर दे दो, फिर मैं नहीं कहुंगी ।'

'दीदी, लगता है कोई मूर्खराज अवश्य तुमसे मेरे ब्याह का दान मांगने आया होगा।' रेखा अभी भी परिहास ही समझ रही थी।

'रेखा, प्रत्येक बात की खिल्ली न उड़ाया कर।'

'अच्छा, तो कहो कौन आया था ?

'कहुं ?'

'कह भी दो न !'

'डा० गुप्ता।'

रेखा के नेत्र-कोन फैल गए। विस्मय से कुछ क्षण वाणी मूक हो गई। कानों को जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। व्यवहार में सदैव संयत और मूक भाषी रहने वाला युवक सचमुच उसकी चाह करेगा—रेखा के लिये यह अशातीत था।

'अब तू क्या कहती है ? डा० गुप्ता हैं तो अच्छे मनुष्य ?'

उत्तर देने में रेखा सकुच रही थी, जैसे बात अधरों पर आती जिह्वा पीछे चली जाती। माधवी ने पुनः पूछा तो कहा, किन्तु मेरे ही मानने न मानने से क्या होता है। मां हैं, भय्या हैं।'

'वे लोग तो तुम्हारी सम्मति जानना चाहते हैं।'

'मां मान गई हैं ?

'हां।'

'भय्या ?'

'उन्हें तो डा० गुप्ता अच्छे ही लगते हैं। मां को कुछ संकोच था विजातियता का, सो श्रीकान्त के कहने से वे मान गई हैं।

'दीदी, सच पूछो तो आज कल परीक्षा में मन इतना उलझा है कि इस प्रश्न पर सोच ही नहीं सकती।'

'इस प्रश्न का सम्बन्ध भी तो जीवन की परीक्षा से है।'

'सो तो है।'

'फिर इसकी अवहेलना करनी उचित नहीं। मनोनुकूल जीवन संगी जब मिलता हो तो ......?'

'दीदी, तुमने स्वयं तो ब्याह किया नहीं और मुझे इन बन्धनों में फ़ंसाती हो !'

'मैं जान बूझ कर इन बन्धनों से मुक्त रही हूं बहिन। मेरे भाग्य का विधान ही ऐसा है। नहीं तो यह मधुर बन्धन जीवन का सरस अमृत बन जाते हैं। किन्तु तभी जब साथी मनोनुकूल हो। प्रतिकूल साथी मिलने से यही गरल बन जाते हैं। तुम स्वयं सुशिक्षिता हो, इसलिए भावी-जीवन का निर्णय

स्वयं करना ही उचित है। डा० गुप्ता हैं तो साय और सुसंस्कृत।

'हां ! लगते तो हैं।'

'फिर स्वीकृति दे दी जाए।'

'एक बात करो मेरी अच्छी दीदी। किसी प्रकार कहला दो कि निर्णय परीक्षा के पश्चात हो।'

'वह तो हो सकता है। श्रीकान्त जी कह सकते हैं कि रेखा स्वतन्त्र है इस विषय में, परीक्षा के पश्चात निर्णय देगी।'

'न, न, दीदी, स्वतन्त्र बना कर मुझे एक दम उद्दन्ड न बनाओ। माँ तथा भय्या की आज्ञा मेरे लिए ब्रह्मवाक्य है।'

माधवी ने सरल रेखा की श्रद्धा को देखा तो मन ही मन डा० गुप्ता के चुनाव की सराहना की। रेखा सचमुच एक प्रेम एवं श्रद्धा युक्त पत्नी प्रमाणित होगी।

श्रीकान्त माधवी को छोड़ते ही बाहर चला गया था, अब लौट आया। वही रेखा जो भय्या के आते ही फुलझड़ी बन जाती थी भय्या से नज़रें न मिला सकी। श्रीकान्त के आते ही पुस्तकें लेकर दूसरे कक्ष में चली गई। माधवी ने कहा, 'रेखा से मैंने सब बातें की हैं। एक बात करनी होगी श्रीकान्त जी, निर्णय तो परीक्षा के पश्चात ही होना चाहिये नहीं तो रेखा पढ़ न सकेगी।'

'मैं कह दूंगा डा० गुप्ता से।'

माधवी चली गई और रेखा......पुस्तक सामने रखी होने पर भी दिवा स्वप्न देख रही थी जिसमें डा० गुप्ता का प्रभावशाली मुख बार बार उभर आता था। खीझ कर पुस्तक पटक दी रेखा ने।

२२

बाबू राम नाथ और सावित्री देवी दो दिन से माधवी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे बेटी की कुशल-क्षेम जानने को उत्सुक थे। उनका विचार था कि माधवी स्वयं ही साधना का कुशल परिचय देने आयेगी किन्तु जब वह न आयी तो परितोष को पता लेने के लिए भेजा। परितोष अभी अभी पता लेकर आया था कि माधवी दीदी शाम को आएँगी क्योंकि इस समय आवश्यक कार्य से उन्हें कहीं जाना था।

'तुमने दीदी के विषय में तो पूछा होगा परितोष ?'

'कहती थीं सब आ कर बताऊंगी।'

'बेटी भी कहती होगी कि माँ-बाप ने ब्याह करके ही तिलांजलि दे दी।' रामनाथ ने कहा।

'कुछ पैसे इकट्ठे हो जायें तो अब की वैसाखी पर उसे बुलायेंगे। अमृतसर की वैसाखी भी देख जायेगी और बहिनों से मिल भी जायेगी।' सावित्री देवी ने कहा। फिर वे बच्चों के पुराने कपड़े लेकर मुरम्मत करने बैठ गई। सरिता भी मां की सहायता करने लगी। उसकी अपनी एक दो कमीज़ें बिल्कुल खस्ता हालत में थीं। वह बार बार मुरम्मत करके उन्हें पहनती थी। जब लड़कियां सुन्दर सुन्दर कमीज़ें पहनती तो उसका मन भी ललचाता पर अब वह काफी समझदार हो चुकी थी। बाल्यकाल में वह जो हठ करती थी वह सर्वथा

छूट चुका था । कालेज जाने के लिये उसने अलग दो कमीजें रख छोड़ी थीं; उन्हीं में साफ सुथरी बन कर जाती थी। छोटी नीला के वस्त्रों की बुरी दशा थी । सावित्री देवी सोचने लगी कि अगामी मास बच्चों के वस्त्र अवश्य बनवायेगी किन्तु कहां से ... ? एक प्रश्न वाचक चिह्न उनके सम्मुख आ गया । ऊफ्, युग को तो जैसे आग लग रही है । जाने इस मँहगाई का अन्त कब होगा । और घर की भट्ठी ऐसी है कि जितना ही डालते जाओ सब भस्म होता जायेगा । बाबू राम नाथ भी क्या करें । परीक्षा के दिनों में टयूशनें भी करते हैं तब भी पूरा नहीं पटता । जब मध्यम वर्ग की स्थिति यह है तो निम्न वर्ग की तो बात ही क्या है ।

शाम को प्रतीक्षा करते करते छः बज गये किन्तु माधवी न आई । सावित्री देवी की उत्सुकता धीरे धीरे प्राण हीन सी होने लगी । वे पूजा के लिये बैठी तो भी मन नहीं लगा । अन्तर्मन का सम्बन्ध भी तो बहिर्मन से होता है । बहिर्मन अशान्त होने से अन्तर्मन में शान्ति कैसे हो सकती है ? जब भी ऐसी स्थिति होती है तो वे सर्व आत्मेन मीरा का एक ही भजन गाया करती थीं । तब भी गाने लगी—

हरि तुम हरो जन की पीर

इन शब्दों से उन्हें लगता कि हरि कहीं निकट ही खड़े हैं और वे अवश्य उसके कष्ट दूर करेंगे । सरिता के नमस्कार का शब्द सुन कर वे चौंकी, देखा तो माधवी खड़ी थी । क्षमा याचना करती हुई वह कह रही थी, 'क्षमा करें मौसी जी मैं शीघ्र नहीं आ सकी ।'

'क्षमा की क्या बात है बेटी, तुम ठहरी काम काजी लड़की । मेरी साधना अच्छी तो है ?'

सब यही पूछते हैं–अच्छी तो है...ठीक तो है......माधवी सकुचा गई । एकाएक न कह सकी कि साधना प्रसन्न और आनन्द से है ।

'उत्तर नहीं दिया बेटी । मेरी साधना मंगल से तो है ?' आतुर भाव से सावित्री देवी ने पूछा ।

'जी हां ठीक से है साधना ।'

कह कर साधना की दी हुई वस्तुएं माधवी ने सावित्री देवी को दे दीं । बच्चे अपनी अपनी वस्तुएं लेने में जुट गये और सावित्री देवी बेटी के विषय में पूछने लगी । माधवी के संक्षिप्त उत्तरों ने उन्हें संशय में डाल दिया । वे इतना ही अनुमान लगा सकीं कि साधना बहुत खुश नहीं है । माधवी ने इतना कह दिया था कि साधना बहुत उदास है कुछ दिन के लिये बुला लिया जाये तो अच्छी रहेगी ।

'मैं कल ही पत्र लिखवाऊंगी उन्हें कह कर ।'

'सरो तुम्हारे पिता जी कहां गये हैं ? अब तो स्वास्थ्य ठीक रहता है न ?'

'हां बेटी ! कुछ तो ठीक है किन्तु चिन्ता स्वास्थ्य बनने ही कहां देती है । यह घर गृहस्थी तो निरा जजाल है । आज परितोष सुबह हाकी के लिये हठ कर रहा था । मोहल्ले के बच्चों ने मिल कर हाकी क्लब बनाई है ।'

'अच्छा तो है बच्चों के विकास के लिये कुछ तो मनोरंजन होना चाहिये ।'

'सो तो है पर हर एक चीज को तो आग लग रही है । अब हाकी ही कह रहे थे छः सात रुपये को अच्छी आयेगी ।'

'अच्छा, मां भाई को छः सात रुपये की हाकी ले दी और

मुझे छः आने के गेंद के बदले टाल दिया।' छोटी नीली मां से मचल कर बोली।

'तुझे भी ले दूंगी बेटी। तू तो मेरी अच्छी बेटी है न, बाजार जाऊंगी तो अठन्नी वाला गेंद लाऊंगी।

न जाने यह स्वभाव होता है या संस्कार लड़कियां जल्दी ही झुक जाती हैं। नीला भी मान गई और अपनी टूटा फूटी गुड़ियों से उलझने लगी। माधवी उठते हुए बोला—'अब चलुं मौसी जी रात हो रही है।'

'रिक्शा मंगा लूं?'

'नहीं टहलते टहलते निकल जाऊंगी'

'कभी कभी आया करो बेटी, तुम्हें देख कर साधना सी ही शान्ति मिलती है। मैं तो जब तुम्हारे एकाकी पन की बात सोचती हूं तो हृदय में कसक सी होती है।'

माधवी ने कुछ भी न कहा, केवल फीकी सी हंसी मुस्करा दी और चल पड़ी। मार्च का महीना था और ऋतु न सर्द न गर्म। एक अद्भुत प्रकार की समरसता सी ऋतु में थी और वायु में सुहाना पन था। मन की लहर में माधवी त्वरा से कदम बढ़ाये जा रही थी। झुण्डों के झुण्ड लोग उसके निकट से लांघते जा रहे थे किन्तु वह ध्यान में मस्त थी। सहसा किसी गीत की कड़ी ने उसे चौंका दिया। वह गीत सिनेमा का कोई अश्लील गीत था। और माधवी को विशेष इंगित करके गाया गया था। माधवी रुक गई। उसने देखा चार लड़कों की टोली चली जा रही है राह पर ठठोलियां करती। उन्हीं में से किसी ने यह गाया था। रोब भरी आवाज में माधवी बोली, 'ठहरो।'

लड़कों ने आंख बचा कर निकल जाना चाहा। इस रोबीले स्वर ने उन्हें कम्पा दिया था किन्तु वे निकल न सके। माधवी उनके सामने आ गई थी। लड़के कॉलेज के छोकरे दीखते थे, क्योंकि बनाव ठनाव का ऐसा चाव उन्ही में देखा जाता है। सभी बने-संवरे चुस्त एवं स्फूर्तिमय थे।

कौन सी क्लास में पढ़ते हो ?' माधवी ने प्रश्न किया।

लड़कों ने समझ लिया कि उन की टक्कर किसी सलज्ज कुमारिका से नहीं हुई है। अन्धकार में अनुमान ग़लत लग गया था।

एक ने उत्तर दिया, 'फोर्थ इयर में।'

'फोर्थ इयर में, शायद चलती लड़कियों पर फब्तियाँ कसना तुम्हारी पुस्तकों में या कालेज में पढ़ाया जाता है।'

लड़के क्या बोलें ? जिह्वा गूंगी हो गई थी। एक सामाजिक अपराध उन्हों ने किया था। अपराध में गम्भीरता चाहे न रही हो फिर भी देश के होनहार बच्चों के लिये लज्जा जनक था। लड़कों के सिर झुके हुये थे। माधवी पुनः कहने लगी, 'कभी सोचा है तुमने कि कितना गम्भीर उत्तरदायित्व तुम्हारे कन्धों पर आने वाला है। तुम्हारी मातृभूमि भविष्य की आशाएं तुम पर लगाये बैठी हो और तुम खूब अपने चरित्र का निर्माण कर रहे हो। मां-बहिनों की प्रतिष्ठा के स्थान पर यह अश्लीलता पूर्ण गातों का उपहार देते हो। हम सोचती है कितने सुयोग्य हैं हमारे भाई और बेटे। हमें तुम पर गर्व होना चाहिये, ठीक है न ?'

लड़कों पर जसे घड़ों पानी पड़ गया हो।

'किस कालेज में पढ़ते हो ?'

'जी।' एक ने बोलने का यत्न किया आगे बोलती बन्द।

'बोलो, मैं कल ही प्रिंसीपल साहब से मिलूंगी। ऐसे चरित्रहीन लड़कों से शिक्षा के अधिकार क्यों न छीन लिये जाएं? जो शिक्षा उन्हें मानवता और सच्चरित्रता का पाठ नहीं पढ़ा सकती उस का लाभ ही क्या?

कुछ दूर दूर लोगों की टुकड़ियां इकट्ठी होने लगीं। लड़कों ने क्षमा याचना करते हुये कहा, 'हम अपने अपराध के लिये क्षमा प्रार्थी हैं।'

'भविष्य के लिये शपथ खाओ कि राह चलती लड़कियों को कभी नहीं छेड़ोगे।'

लड़के हिचकिचाये। भला यह लड़कपन का स्वभाव कभी एक ही दिन में छूटता है। माधवी ने मुस्कराकर कहा, तुम्हारा मन नहीं मानता न। यह मेरे देश का दुर्भाग्य है। जहां के बच्चे कभी अभिमन्यु और हकीकत राय से अडिग होते थे वहां ऐसे चंचल मन युवक होना दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है। जाओ मैं तुम्हें छोड़ती हूं किन्तु क्षमा नहीं..... क्षमा...... तुम चाहोगे तो वह तुम्हें अपने हृदय से प्राप्त होगी।'

कह कर माधवी त्वरा से चल पड़ी। लड़के मूंह देखते ही रह गये।

माया कोठी के बाहर माधवी की प्रतीक्षा कर रही थी। आते ही बोली, 'बहुत देर कर दी बिटिया।'

'क्यों?'

अन्दर एक बीबी आई बैठी है। सरकारी कागज लाई है।'

माधवी उत्सुकता से भीतर पहुंची। आने वाली स्त्री अतीव सुन्दर थी। वर्ण जैसे चम्पक का सद्यःविकसित फूल। नयन नक्श सभी सुन्दर। मैले कपड़ों में भी शरीर की दीप्ति समा नहीं रही थी। माधवी ने पत्र लेकर पढ़ा। पत्र जिलाधीश

का था। यह स्त्री, स्त्रियों का व्यापार करने वाले एक गिरोह से मुक्त की गई थी। जब उसके नातेदार उसे लेने न आये तो उसे नारी मन्दिर में रखने का अनुरोध किया गया था। माधवी ने सहानुभूति से उस स्त्री की ओर देखा। उसने कहा, 'मेरे साथ जो सिपाही आया था बाहर बैठा होगा। उसे उत्तर दे दीजिये।'

'बाहर तो कोई न था। माधवी को आश्चर्य हुआ।

'बाहर ही होगा।' देखिये तो।'

अबकि माधवी बाहर आई तो सिपाही बैठा बीड़ी पी रहा था। माधवी को देख कर खड़ा हो गया और पूछा आप ही माधवीदेवी हैं न? साहब का सन्देश तो आपने पढ़ ही लिया होगा।'

'मैं अभी उत्तर देती हूं।'

भीतर जाकर शीघ्रता से पत्र लिखा और माया के हाथ बाहर भेज दिया। फिर उस स्त्री की गाथा सुनी। उसका नाम कमला था। कमला सी ही रमणी थी वह। कमला की गाथा अत्यन्त हृदय स्पर्शी थी और साथ ही रोमांचकारी भी। जब कमला युवा हुई तो उसका विवाह एक बूढ़े के साथ कर दिया गया। माँ-बाप अत्यन्त गरीब थे और बेटी के हाथ पीले करने के लिये उनके घर हल्दी को छोड़ कुछ भी न था। उसके पति के छः बच्चे थे फिर भी उसने ब्याह किया। उसकी बड़ी लड़की कमला के समवयस्क थी। कमला ने कभी उसके प्रति प्रेम भावना से नहीं देखा। प्राकृतिक रूप से वह एक पड़ोसी नवयुवक की ओर आकर्षित हुई और वह युवक भी उससे प्रेम क्रीड़ा करने लगा। बूढ़े को जब पता चला कि वह दुश्चरित्र है तो उसे घर से बाहर निकालने की धमकी दी। दुर्भाग्य से

कमला स्वयं ही घर से निकल आई उस युवक के साथ। कमला का साथी था मस्त मलंग रुपये पैसे से रिक्त; केवल कमला अपने आभूषण चुरा कर ले गई थी। लगभग एक वर्ष तक उनका जीवन सुचारु रूप से चला। आभूषण धीरे धीरे समाप्त होने लगे तो उसने साथी को काम करने के लिये कहा, परन्तु उसे निठल्ले रहने की बान पड़ गई थी। वह व्यर्थ बहाना बना कर निकल जाता और सांझ पड़े घर लौटता। एक दिन कमला ने उसे चेतावनी दे दी कि अगर वह भविष्य में काम नहीं करेगा तो निर्वाह कठिन हो जायेगा। सारी दुनिया कमा कर खाती है उसे ही काम क्यों नहीं मिलता? इस चेतावनी को सुनने के पश्चात वह ऐसा गया कि पुनः लौट कर नहीं आया। उस परदेस में कमला एकाकिनी रह गई। माता-पिता या पति के पास जाने का साहस अब उस में न था। दो चार आँसू बहा कर वह परिस्थिति से टकराने को प्रस्तुत हो गई। इसके पश्चात क्या हुआ यह उसके जीवन का और भी कालिमा पूर्ण अंश था किन्तु वह क्या करती, वह विवश थी, निरुपाय थी। यह वैश्यावृत्ति करते हुये पहले कुछ संकोच हुआ, आत्मा रोई, किन्तु इसके पश्चात वह अन्तर्ध्वनि सर्वथा के लिए मूक हो गई। तदुपरान्त उसने वह खेल खेले कि नीचता भी शर्मा गई और धीरे २ वह एक ऐसे गिरोह की सदस्य बन गई जो नारी का क्रय-विक्रय करता है। एक ही स्थान पर अड्डा बना कर रहना मुश्किल है अतः उसका गिरोह स्थान २ पर घूमता है। यहां अमृतसर में वे लोग एक होटल में ठहरे हुये थे कि जाने कहां से सुराग पाकर छापा मार कर उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसके निरीह मुख को देख कर विश्वास करना कठिन था कि इस सुन्दर शरीर और रम्य मुख के आवरण में इतना कलुष

हो सकता है। इतने दिन वह अपने आप को अदालत में निर्दोष सिद्ध करने का यत्न करती रही है और अपनी कथा को उसने बिल्कुल ग़लत रूप से प्रस्तुत किया है किन्तु माधवी के यहां आकर, जब से उसने माया से उसके त्याग और तप के विषय में सुना है तो हृदय के एक अज्ञात कोने से फिर एक आवाज़ आने लगी है जो उसे पावन जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दे रही है। कमला बोली, 'आप धन्य हैं बहिन, आपका पारस स्पर्श पाकर मैं पुन: स्वर्ण बन सकूंगी। मैं कल अपना अपराध स्वीकार करने जा रही हूं। मैं निर्दोष नहीं हूं। न जाने कितनी भाली बहिनों को मैंने निकृष्ट और कुत्सित कर्म करने के लिये बाध्य किया है। मैं पूछती हूं मैं क्यों ऐसी राक्षसी हो गयी। क्यों मेरा देवत्व मर गया।'

माधवी क्या उत्तर दे कि उसके देवत्व की हत्या करने वाला कौन है? निश्चय ही कमला स्वयं नहीं। समाज ने उसकी भावनाओं की अपेक्षा नहीं की, उसके अरमानों की सुरक्षा नहीं की, इसी से उसके भीतर का रक्षस जगा और उसे पतन की राह पर ले गया। माधवी ने उसे सो जाने के लिये कहा। उसके सम्मुख स्वयं कुछ समस्याएं घूम रही थी जिन्हें वह सुलझाना चाहती थी।

दूसरे दिन कमला ने सच ही अपने दल के सभी रहस्य प्रकट कर दिए। उसे हिरासत में ले लिया गया। वैधानिक रूप से उसके विरुद्ध कार्यवाही हुई और चार वर्ष कैद का दण्ड उसे मिला। कमला ने केवल एक इच्छा प्रकट की माधवी से मिलने की और वह आज्ञा उसे मिल गई. माधवी से मिल कर कमला ने कहा, 'माधवी बहिन, अपने अपराधों का प्रायश्चित करने जा रही हूं। चार वर्ष पश्चात तुम्हारी ही शरण में आऊँगी।

समाज इस कलंकनी को स्थान नहीं देगा। तुम तो नहीं ठुकराओगी ?'

'नहीं कमला, मेरी संस्था के द्वार सदा तुम्हारे लिये मुक्त हैं।'

माधवी ने देखा कमला के मुख पर आज एक प्रकार के सन्तोष की झलक है। बुरे कर्म मन में छिपे कृष्ण सर्पों की भांति होते हैं जो मानव को कभी निश्चिन्त एवं शान्त नहीं होने देते। भीतर ही भीतर डस कर वे उसे धीरे धीरे सर्व नाश की ओर ले जाते हैं। फिर भी मनुष्य उनकी ओर आकर्षित होता है मानों जान बूझ कर गरल के घूंट पीता है। किन्तु इसमें सभी दोष उसका ही नहीं होता।

शायद कमला को अच्छी परिस्थितियां मिल जाती तो वह इस राह से बच सकती। एक कमला ही नहीं अनेक स्त्रियां ऐसी हैं जिनके लिये कोई और राह ही नहीं होती, तब वे क्या करें ? अपने नारीत्व का सौदा वे सहज नहीं करतीं। कोई विवशता ऐसी होती है जो उन्हें बाध्य करती है। इसके उत्तर दायी उसके अपने पिता और भाई हैं जो उसके भावों को आहुति नेत्र मूंद कर धन के यज्ञकुण्ड में डाल देते हैं।

२४

रेखा की परीक्षा डा० गुप्ता के लिये चिर प्रतीक्षा बन गई क्योंकि उनके घर से निरन्तर विवाह के लिये अनुरोध पत्र आ रहे थे। घर वालों ने दो तीन लड़कियां भी दृष्टि में रखी

हुई थीं । किन्तु उसने लिख दिया था कि अपनी पसन्द की लड़की से ही वह विवाह करेगा । बेटे के प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र स्वाभाव का होने से मां-बाप को कोई आश्चर्य न हुआ । उन्होंने लिख दिया कि उसकी पसन्द पर उन्हें कोई आपत्ति न होगी किन्तु बात पक्की होने से पूर्व यदि वह मां को बहु देखने का सुअवसर दे तो गौरव की बात ही होगी । भला पुत्र को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी । अब डा० गुप्ता इस प्रतीक्षा में थे कि कब परीक्षा समाप्त हो और अन्तिम निर्णय हो ।

रेखा को परीक्षा हो गई । अतः श्रीकान्त ने एक सुदिन निश्चित करके डा० गुप्ता को घर में आमन्त्रित किया । वह चाहता था कि रेखा और गुप्ता साहब स्वयं भी इस विषय में बात चीत करलें तो अच्छा है । यद्यपि इन विषयों में वह अपने प्रति अत्यन्त लज्जा शील था । यदि उसकी अपनी स्थिति होती तो वह कभी भी किसी कुमारी से ब्याह के विषय में बात न कर सकता किन्तु रेखा के लिये वह बहुत उदार हो गया था । अपनी एक मात्र प्राणाधिक बहिन के भविष्य को वह अधिक से अधिक उज्जवल देखना चाहता था ।

भोजन के अनन्तर बाजार से कुछ लाने के लिये श्रीकान्त खिसक गया । केवल रेखा और डा० गुप्ता रह गये । दोनों की वाणी मूक थी यद्यपि अनेकों ही बातें थी दोनों के मन में । डा० गुप्ता पहले कभी ऐसी दुविधा या संकोच में न पड़े थे और सदा मुखर रहने वाली रेखा भी मौन बनी बैठी थी । देखा जाये तो डा० गुप्ता के कहने की बात थी भी नहीं, उनका चुनाव तो हो चुका था । बात तो रेखा के निश्चय की थी । फिर साहस करके डा० गुप्ता ने ही बात प्रारम्भ

की। सीधे किसी कुमारी से ब्याह की बात करना उन्हें भी कुछ संगत न लगता था। डा० गुप्ता बोले,

'श्रीकान्त से आपको मेरे सुझाव का परिचय तो मिला होगा?'

'जी हां।' रेखा ने आगे कुछ कहना चाहा किन्तु फिर वही चुप्पी।

'क्या मैं यह सौभाग्य पा सकूंगा?'

अबकि रेखा ने पलकें उठाईं। सावंला सलोना उस का रूप अत्यन्त मधुर लग रहा था। डा० गुप्ता को लगा कि उन दीर्घ नयनों में गहरा मादकता का सागर भरा है। वे नयन वाणी हीन होकर भी कुछ प्रश्न पूछ रहे थे। रेखा सम्भली, मन को टकोर दी। इसमें लज्जा की क्या बात है। जीवन भर का प्रश्न है एक दो दिन का सम्बन्ध नहीं। यों डा० गुप्ता अत्यन्त शालीन युवक दीखते थे किन्तु भीतर क्या है, परिचय हो जाये तो बुरा क्या है। वही तो हैं डा० साहब जिनसे कई बार गप्पें लड़ा चुकी है। फिर हृदय को दृढ़ कर पूछा 'न तो मैं सुन्दर हूं, न गुणश, आप किस आकर्षण से मुझे ग्रहण करना चाहते हैं?'

'यह तो पुजारी का मन जानता है कि वह प्रतिमा को पूजा क्यों करता है।'

'आप पत्थर की प्रतिमा चाहते हैं?'

'नहीं प्राण वान, जो मेरे जीवन का आदर्श बन सके।'

'आप को प्रतिमा के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा।'

'मैं केवल प्रतिमा की कृपा चाहता हूं। ऊर्ध्य-अक्षत मेरे पास बहुत है।'

रेखा मुस्करा दी, सलोना मुख और भी सुन्दर हो गया। कहा, 'तो भय्या से अन्तिम स्वीकृति ले लीजिये मुझे कोई आपत्ति न होगी।'

उसी समय श्रीकान्त आ गया। रेखा लज्जा कर भीतर भाग गई और डा० गुप्ता के मुख पर विजयी की सी मुस्कान थी। श्रीकान्त ने बढ़ कर उन्हें गले से लगा लिया और मां को पुकारा। मां के आने पर डा० गुप्ता ने उनके चरण छू लिये। मां गद्गद् होगई, आशीर्वाद अधरों तक आ कर रह गया।

घर आते ही डा० गुप्ता ने अपनी मां को तार दे दिया और तार पाते ही दूसरे दिन ही वे पहुंच गईं। साथ में गुप्ता की छोटी बहिन सुषमा भी आई थी। वह आते ही भाबी को देखने की हठ करने लगी, परन्तु मां ने प्यार से झिड़क दिया, 'सफर की थकान तो मिटाने दे पगली, कल चलेंगे भाबी देखने।'

सामान इत्यादि ठीक रखवा कर डा० गुप्ता मां के निकट आ बैठे। वे डर रहे थे कि मां कहीं उलाहना न दे किन्तु ऐसा नहीं हुआ। पुराने दर्रे की हठणादिनी मां होती तो शायद पुत्र की मांग का समर्थन न ही करती, किन्तु इस प्रकार कटुता का एक बीज बोया जाता है और कभी कभी पुत्र के भावी जीवन का बलिदान हो जाता है। संकोच से डा० गुप्ता बोले, 'मां, तुम्हें मुझपर क्रोध तो आता होगा ?'

'पगला कहीं का, पुत्र के मन की प्रसन्नता देखना ही तो मां की साधा होती है। हां यह देखुंगी कि तेरा चुनाव कैसा है ! वहां कई लोगों ने मुझे टोक दिया कि क्या जाति की लड़कियां समाप्त हो गईं जो तुम्हारा बेटा ब्राह्मणों की बेटी ला रहा है ! मैंने कहा, बेटे की इच्छा है। फिर यह जात-पात की दीवारें

तो मनुष्य ने स्वयं खड़ी की हैं। उस विधाता के घर से तो सब एक समान आते हैं।'

डा० गुप्ता मां के प्रति श्रद्धानत हो गये। सुषमा तब तक हाथ मुंह धोकर तैयार हो गई थी। अब मां भी भीतर चली गयी।सुषमा को मुंह लटकाये देख कर डा० गुप्ता ने पूछा, 'मेरी छोटी बहिन, नाराज़ क्यों है ?

'भय्या, तुम मुझे आज ही भाबी दिखाओ।'

'किन्तु मां ?'

'तुम मुझे चोरी से दिखा दो, मां को कानोंकान ख़बर न होगी।' बहिन के भोलेपन पर डा० साहब हंस पड़े। कहा, 'भाबी तुम्हारी तो काली है सुषमा।'

'काली ?' बालिका के नेत्र कौतुहल से फैल गये। मन ने कहा भाबी तो सुन्दर ही होनी चाहिये। बोली 'भय्या झूठ बोलते हो।' तभी मां आ गई। अब वह थोड़ी सी ताजगी अनुभव कर रही थीं। मां का आंचल थाम कर सुषमा बोली, 'मां भय्या कहते हैं कि भाबी काली है।'

'क्यों रे ?'

अब डा० गुप्ता मां के सामने तो परिहास कर नहीं सकते थे।

श्रीकान्त को ज्योंही पता चला वह डा० गुप्ता की मां और बहिन को अपने घर ले जाने के लिये आगया। डा० गुप्ता किसी रोगी को देखने जा रहे थे। श्रीकान्त उन दोनों मां-बेटी को लेकर चला। उसके मृदुल स्वभाव से डा० गुप्ता की मां अत्यन्त प्रभावित हुई। जब भाई ऐसा अच्छा है तो बहिन कैसी होगी। उन्हें बहु देखने की बड़ी उत्सुकता थी।

जैसे ही श्रीकान्त घर में घुसा सरला देवी ने उनका स्वागत

करते हुए कहा, 'आज मेरी कुटिया इन चरणों की रज से पवित्र हो गई।'

डा० गुप्ता की मां ने समझ लिया यही होने वाली सम्बन्धिनी है। अपनत्व से हाथ थाम कर कहा, 'आप जैसे सम्बन्धी पाकर हम धन्य हो गये बहिन जी'।

आदर भाव से दोनों को बैठा कर सरला देवी जलपान का आयोजन करने लगीं। श्रीकान्त रेखा को भी उसी कक्ष में ले आया। वह लज्जा रही थी। आज उसने हलके हरे रंग की साड़ी पहनी थी। नये कदम रखती वह भावी सास के निकट आ बैठी। सास ने देखा बेटे का चुनाव बुरा नहीं। बहु का रंग यद्यपि बहुत गोरा नहीं फिर भी रंग में माधुर्य है और चाल ढाल में लज्जा। सुषमा भावी के साथ जुड़ जुड़ कर बैठ रही थी। और बार-बार अनोखी प्रेम भावना से उसे देख रही था, उसके चाव की कोई सीमा ही न थी। रेखा की लम्बी बेनियां उसे बहुत भाई थीं। उनके साथ खेलते हुए सुषमा ने रेखा के कान के पास मुख ले जाकर कहा, 'भय्या कहते थे तुम काली हो।'

रेखा मुस्करा पड़ी और प्यार से सुषमा को और निकट खींच लिया। बातों ही बातों में काफ़ी समय व्यतीत हो गया। दोनों सम्बन्धिनियाँ आपस में जाने कहां २ की बातें करती रहीं जैसा कि सभी स्त्रियों का स्वभाव होता है। बातों में ही दोनों एक दूसरे के नातेदारों से परिचित हो गईं। साथ-साथ जल पान भी चलता रहा। सुषमा अपने हाथों रेखा को खिलाये ही जा रही थी। रेखा उसका हाथ पकड़ती जा रही थी किन्तु वह बलात् ठूंसती जा रही थी।

चलते समय सरला देवी ने ग्यारह रुपये डा० गुप्ता की मां

को तथा पांच रुपये सुषमा को शगुन के दिये। डा० गुप्ता की मां किसी प्रकार लेने को तैयार न हुई, उन्होंने कहा, 'रमेश के पिता जी इन सब बातों के विरुद्ध हैं। इन रस्मों ने सम्बन्धों को सौदे बाजी बना दिया है बहिन जी।'

गद् गद् भाव से सरला देवी बोली, 'आप की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है, मैं तो डा० गुप्ता को देख कर ही उसकी मां की महत्ता समझ गई थी। किन्तु यह तो केवल पान फूल हैं, रस्म पूर्ति नहीं।

'मैं यह नहीं लूंगी, इसलिये आप तंग नहीं करें तो अच्छा है।'

किन्तु सरला देवी नहीं मानी, तब आदर से उन्होंने एक एक रुपया अपना तथा सुषमा का उठा लिया। सरला देवी सोच रही थी वह करुणा निधान कितने अच्छे मेल मिलाता है। जाते समय सास ने एक अंगूठी निकाली और रेखा की ऊँगली में पहना कर उसका माथा चूम लिया। सरला देवी हैं हैं ही करती रह गईं। सास ने कहा, 'यह तो हमारी हो चुकी, आप शकुन देखकर विवाह की तिथि सुधवा लीजिये। मैं रमेश के ब्याह का कार्य जल्दी निबटाना चाहती हूं। अभी बैशाख चल रहा है चाहें तो ज्येष्ट या आषाढ़ में ही हो जाये।'

'क्यों श्रीकान्त ?' सरला देवी ने चुप बठे बेटे से पूछा।

'इनकी जैसी इच्छा हो मां।' श्रीकान्त जैसे स्वप्न से उठा। उसके मुख पर आल्हाद एवं विषाद दोनों के मिश्रित भाव थे।

२५

बाबू राम नाथ के पत्र के पूरे एक मास पश्चात साधना का पत्र आया था कि वह अगामी शनि को आ रही है। मां और भाई बहिन गिन गिन कर दिन काटने लगे। इतने महीने ससुराल में रह कर साधना आयेगी इसलिये सभी को विशेष चाव था। सरिता दीदी के लिये एक साड़ी पर कढ़ाई कर रही थी। छोटी नीला को कुछ और नहीं सूझा तो छोटे-छोटे रूमाल ही बना लिये थे। कुछ भेंट तो दीदी को मिलनी ही चाहिये। परितोष स्कूल में 'लैदर वर्क' सीखता है उसने भी एक छोटा सा बटुआ तैयार कर रखा था। और सावित्री, वह तो मां थी, छोटी मोटी अनेक वस्तुएँ जो बेटी की मन पसन्द थी जुटा कर रख रही थी। धन का अभाव हो सकता है, हृदय का अभाव तो नहीं हो सकता। जिनके पास धन नहीं होता उसकी कमी पूर्ति वे हृदय पक्ष से करना चाहते हैं, यह एक निश्चित तथ्य है।

निश्चित तिथि पर साधना आ गई। गाड़ी का समय लिखा था इस लये बाबु रामनाथ लेने गये थे स्टेशन पर। साधना अकेली आई थी। उसका मुख देखते ही बाबू राम नाथ का हृदय धक् से रह गया। साधना असीम रूप से कमज़ोर हो गई थी। भरे-पुरे मुख पर दुर्बलता के कारण झुरियां सी पड़ने लगी थीं। अधर इतने सफ़ेद मानों ख़ून है ही नहीं। मुस्करा कर पिता को उसने प्रणाम किया। वह मुस्कान थी अथवा

कब्र की 'बोली'। बाबू राम नाथ ने कुली से सामान उतरवाया और स्टेशन के बाहर आकर रिक्शा कीं। गर्मी बढ़ गई थी इसलिये कोई भी रिक्शावाला छः आने से कम लेने को प्रस्तुत न था। बाबू राम नाथ बोले, 'भई रोज़ के आने जाने वाले हैं। क्या आज कोई नई बात है ?'

'क्या करें बाबू जी, गर्मी के मारे अपना ही बोझा नहीं ढोया जाता और हम ढोर बने दूसरों का बोझ ढोते फिरते हैं।'

'सो तो ठीक है भाई किन्तु चार आने से छः आने तो एकदम अधिक हैं।'

'आपकी इच्छा है बाबू जी दो घड़ी और खाली रहना मन्जूर है परन्तु अपनी कीमत और नहीं घटा सकते। तिस पर यह कमर तोड़ महंगाई हार कर बाबू रामनाथ को छः आने पर ही दो रिक्शा लेनी पड़ी। क्योंकि यूनियन बनी थी और सब ने एका कर रखा था। और सभी नम्बरवार जाते थे। सब एक दूसरे की समस्या से परिचित थे अतः कोई किसी का अधिकार छीनना नहीं चाहता था।

साधना को देख कर जितना धक्का बा० राम नाथ को लगा था उससे कहीं अधिक सावित्री देवी को लगा। साधना के दुर्बल शरीर को गले से लगाते हुए वे सचमुच रो पड़ीं।

'यह तुझे क्या हो गया बेटी ?'

'मां, रोओ नहीं. इससे कोई लाभ नहीं होता।' साधना ने शान्ति से कहा। मां बेटी की वह मुर्दा शान्ति देख कर भयभीत हो गई। अश्रु पोंछ कर बेटी की आवभगत में लगी। एक कारण तो माधवी बता गई थी उससे भी लड़कियां दुर्बल तो होती हैं परन्तु मुख यों विषाद युक्त नहीं होता। यदि मन

में सुख हो तो मातृत्व का बोझ नारी को कभी चुभता नहीं ।

सरो को भेज कर साधना ने रेखा और माधवी दोनों को बुलवा भेजा । रेखा की सगाई की बात उसने सुन ली थी । रेखा उसे कितना खिझाया करती थी ब्याह से पूर्व । अब वह भी उसे खिझा सकेगी । भगवान करे उसका जीवन मंगलमय हो— । सन्देश सुनते ही रेखा तो आ पहुंची । साधना ने उछल कर उसे गले से लगाते हुए कहा, 'बधाई हो रेखा, सुना है मन पसन्द दुल्हा खोजा है तुमने ।'

रेखा ने लज्जामिश्रित हास से कहा, 'मैंने खोजा है ? किसने कहा तुमसे ?'

'सरो कहती है ।'

'अच्छा, सरो भी यह समझने लगी ।' रेखा ने सरो की पीठ पर थप्पड़ लगा दिया ।

'रेखा दीदी क्या उम्र भर बच्ची ही रहुंगी । अब तो मैं भी कालेज में पढ़ती हूं ।'

'और ठीक है साध किन्तु तू क्यों इतनी दुबली हो गई है ?'

'रेखा जीवन मदुक्षण सदा नहीं रहते बहिन । जीवन में बहुत कुछ ऐसा होता है जिसकी आशा भी मनुष्य को नहीं होती । मैं सोचती हूं मेरे विधाता ने मेरा निर्माण अपने संकट के क्षणों में ही किया होगा ?

सावित्री ने भीतर हृदयथाम कर यह सुना और मन ही मन उस कम्बख्त दीनानाथ को दो चार गालियां दीं जिसने यह सम्बन्ध करवाया था । रेखा ने आगे पूछा, 'तू स्पष्ट तो कुछ बताती नहीं साध ?'

'क्या, बताऊं कोई विशेष बात नहीं है। फिर भी लगता है जीवन में कभी सुख न पा सकुंगी।'

फिर बहुत देर तक दोनों सहेलियों में घुल मिल कर बातें होती रही। रेखा की बातें सुन कर साधना ने जैसे आशीर्वाद दिया—'तेरा यह प्रसन्नता चिरन्तन हो बहिन।'

आठ-दस दिनों में ही यहां आकर साधना कुछ हरी हो गई थी। माधवी साधना को परीक्षण के लिये एक लेडी डाक्टर के पास ले गई। परीक्षण के पश्चात उसने कहा, 'और तो ठीक है किन्तु रक्त बहुत कम है। इनको इन्जेक्शन लेने चाहिये।' और उसने इन्जेक्शनों का नाम एक कागज़ पर लिख दिया। साथ ही कैल्शियम इत्यादि की गोलियां भी लिख दीं। मार्ग में ही केमिस्ट की दुकान पड़ती थी। माधवी दवा खरीदने के लिये उसकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगी तो साधना ने रोक लिया, 'इस सब का क्या लाभ है दीदी ?'

'तू चुप रह साध, क्या जान बूझ कर रोग लगायेगी। अपना न सही उस आने वाले शिशु का ध्यान कर जो तेरे जीवन का आधार बन सकता है।'

'वह अभागा क्या भाग्य लेकर आयेगा।' साधना ने दीर्घनिश्वास छोड़ते हुए कहा। माधवी ने सब दवाईयां लेकर साधना को दे दीं और प्यार से डांट दिया, 'नियमित रूप से खाना, नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा समझी।' घर पहुंच कर फिर सरिता को सब समझाया। वह बहिन का ध्यान मन-प्राण से रखने लगी। साधना ने एक प्रकार की चैन सी अनुभव की। यद्यपि रंजीत की बातों की स्मृति अभी भी उसे बेचैन कर देती। उसने उसके लिये क्या नहीं किया। सब प्रकार की आशाओं और उमंगो को सदा, सदा के लिये सुला

दिया। वह उसे अपनी वास्तविक पत्नी नहीं मानता क्योंकि यह केवल घर वालों और समाज की जोर जबरदस्ती का परिणाम है। वह पुरुष है और ऐसा कर सकता है किन्तु साधना नारी है वह भी एक हिन्दु पत्नी जिसके लिये 'पति ही पत्नी की गति है' वाला सिद्धान्त ही सर्वस्व है। पर क्या वह मानवी नहीं, उसकी अनुभूतियां क्या कोई मूल्य नहीं रखतीं। फिर मौन रह कर अभी तक वह सह रही है कभी तो यह ज्वालामुखी फटेगा ही। उसकी कल्पना में एक प्यारा-प्यारा नवजात शिशु फूल गया। क्या अपने रक्त के प्रति भी उसके पति को कोई मोह न होगा।

साधना को आये एक महीना हो गया। इसी बीच कला के दो पत्र घर लौटने के लिये आ चुके थे। एक सास का पत्र भी आया था। सावित्री देवी तैयारियों में लगी थीं। इतना उन्हें पता चल गया था कि रंजीत का कोई पत्र नहीं आया। फिर भी साधना से पूछा, 'क्या रंजीत नहीं आयेगा तुझे लेने के लिये ?'

'नहीं मां।' पलकें झुकाये साधना ने कहा।

माधवी की इच्छा थी कि साधना को जाने ही न दिया जाय और वहीं पर प्रसव हो, किन्तु सावित्री देवी इसके विरुद्ध थीं। उनके विचारानुसार लड़कियां अपने घर ही अच्छी हैं। माधवी ने समझाया भी कि साधना कुछ अधिक दुर्बल है यहां देख भाल अच्छी होगी, पर वे न मानीं। साधना अकेली जा नहीं सकती, इसलिये बाबू रामनाथ छोड़ने जायेंगे। माधवी लेडी डाक्टर से राय करके साधना के लिये कुछ और दवाइयां ले आई और उसे समझाते हुए कहा—देखो, लापरवाही न करना स्वास्थ्य के विषय में।'

'नहीं करूँगी दीदी।'

'तुम्हें मेरी सौगन्ध।'

साधना माधवी से लिपट गई। हाय; जाने यह कौन से जन्म की मेरी बहिन है।

साधना के जाने का दिन आया तो सावित्री देवी की छाती जैसे फटी जा रही थी। यदि जमाई बाबू आ जाते तो उसे कितनी प्रसन्नता होती। अब वह पकवान बना रही थी और साथ ही अश्रु बहा रही थी। किसी प्रकार प्रबन्ध करके उसने साधना के दो जोड़े और एक जोड़ा सास का भी डाल दिया था। पंजाब के साधारण लोगों में शिशु जन्म से पूर्व भी एक संस्कार मनाया जाता है। उच्च वर्ग के लोगों का जीवन इन संस्कारों से दूर होता जा रहा है किन्तु मध्य वर्ग अभी तक इनसे चिपटा है। बाबू राम नाथ इसके पक्ष में न थे पर सावित्री देवी ने कहा, 'कल को साधना की सास कोई बात कर देगी तो हम कहां के रहेंगे।'

मन में अवसाद का एक बोझ लिये साधना चली गई। जाते समय न वह रोई न दुख प्रदर्शित किया। सावित्री देवी ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'मेरी बेटी तू सदा सुख और सौभाग्य भोगे।'

बाबू राम नाथ जालन्धर स्टेशन से किराये का टांगा लेकर साधना की ससुराल पहुंचे। उन्हें आशा थी कि रंजीत कम से कम स्टेशन पर तो आया होगा परन्तु वहां भी जब उसे न पाया तो एक प्रकार की निराशा सी हुई। घर पहुंच कर भी रंजीत न मिला। साधना के ससुर थे, उन्होंने बाबू राम नाथ का स्वागत किया। साधना ने पूछा, तो कला ने कहा, 'भय्या तो आठ दिन से घर नहीं आये।' साधना पर

इसकी कोई प्रतिक्रिया न हुई, कोई अनहोनी बात तो न थी। बाबू राम नाथ शाम तक प्रतीक्षा करते रहे किन्तु रंजीत न आया। कौतुहल से राम नाथ ने कहा, आज रंजीत न जाने कहां चला गया ?'

'शायद व्यापार के सिलसिले में कहीं बाहर चला गया हो। हमें तो कुछ भी बता कर नहीं गया।' साधना के ससुर बोले।

शाम की गाड़ी से ही बाबू राम नाथ लौट आये।

२६

होते होते भी रेखा का ब्याह तीन महीने पीछे चला गया। यों तो उसका निश्चय आषाढ़ का था किन्तु उसकी सास एकाएक बीमार हो गई और डाक्टरों ने अप्रेशन की राय दी थी। इस लिये वे सब लोग अमृतसर ही आ गये थे। डा० गुप्ता के घर के लोग काफ़ी देर चिन्ता के वातावरण में रहे। धीरे धीरे दुख व चिन्ता के बादल छट गये। रेखा की सास बिल्कुल स्वस्थ हो गई थी।

अब ब्याह की तिथि श्रावण में नियत हुई थी। श्रीकान्त को यही चिन्ता थी कि बरसात कहीं तंग न करे। फिर भी ब्याह को वह और परे टालना नहीं चाहता था अतः वह प्रत्येक स्थिति में ब्याह के लिये प्रस्तुत था। ब्वाह अमृतसर में ही होना तय हो गया। जब सम्पूर्ण परिवार अमृतसर में ही

उपस्थित है तो बाहर से बरात लाने का लाभ ही क्या है ? आज कल के मंहगे युग में जितना भी सादा कार्य हो सके वह दोनों ही पक्षों के हित में ठीक रहता है। डा० गुप्ता के पिता ने कहला भेजा था कि बारात में केवल सात आदमी आएंगे वह भी घर के। डा० गुप्ता, उनके पिता, दो बड़े भाई, दो बहनोई तथा एक कुल पुरोहित। साथ ही दहेज इत्यादि के लिये किसी भी प्रकार के प्रदर्शन का निषेध उन्होंने कर रखा था। श्रीकान्त अपने भाग्य की सराहना करता था कि ऐसे अच्छे नातेदार मिले। नहीं तो नित्य वह देखता था कि इस दहेज एवं लेन देन के लिये बरातें लौट जाती हैं, झगड़े हो जाते हैं और ब्याह के घर, शोक-घर बन जाते हैं। किन्तु मां किसी प्रकार ही नहीं मानती कि दहेज बिल्कुल न दिया जाये। फिर भी लड़की का नया घर बसेगा कुछ साज-समान तो होना ही चाहिये। दहेज का तात्पर्य ही यह है कि वर-वधु अपनी नयी गृहस्थी का संचालन सुन्दर ढंग से कर सकें। ब्याह के पश्चात एक दम ही उन्हें जीवन की अनिवार्य समस्याओं में उलझना न पड़े। श्रीकान्त ने समझाते हुए कहा, 'मां, इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम रेखा को कुछ दें ही न, प्रश्न तो उनकी भलमनसाहत का है। देंगे तो हम अवश्य और अपनी सामर्थ्य के अनुसार देंगे परन्तु कहीं लोलुप लोगों से पाला पड़ता तो होश आ जाती।

ब्याह के दिन अत्यन्त निकट आ गये। श्रीकान्त ने बैठ कर उन रिश्तेदारों की सूची बनाई जिन्हें आमन्त्रित करना था। फिर अन्तिम निर्णय के लिये मां के पास ले गया। रेखा पास ही बैठी कोई सिलाई की वस्तु बना रही थी। इन दिनों वह कुछ गम्भीर हो रही थी। भाई से कभी ठठोली

नहीं करती, परिहास नहीं करती। श्रीकान्त को रेखा का यह रोना रोना, उदास मुख अच्छा नहीं लगता। वह उसे हर समय मुस्कराते देखना चाहता है। भाई के आने पर भी रेखा नेत्र झुकाये सूई चलाती रही। मां ने सूची लेकर पढ़ी और कहा, 'तूने तो सभी के नाम लिख डाले कान्त। आज कल इतने अतिथियों को सम्भालना क्या सरल काम है बेटा ? इतना काम कौन करेगा, फिर यह गर्मी के दिन हैं।'

'मां तुम चिन्ता न करो बिल्कुल, अपने मित्र हेमन्त को मैंने लिख दिया है वह तो आठ जनों का काम अकेले ही कर डालता है। रोहित भी आज कल छुट्टी पर आया है।'

'रोहित तो बड़ा अफसर है बेटा।'

'तो क्या हुआ है तो अपना वही रोहित, जो तुमसे मीठे पराठे बनवा कर खाता था। वह बाहर का और बारात का काम सम्भालेगा।'

'और औरतें ?'

'यह भी खूब कही, माधवी दीदी हैं, फिर दिल्ली से मामी आजायेंगी तो भन्डारे की चाबी उन्हें सपुर्द कर देना। यहां से रेखा की दो चार सहेलियां भी मिल जायेंगी; वे उस समय आने जाने वाली स्त्रियों को सम्भाल लेगीं।

श्रीकान्त की सूझ-बूझ पर सरला देवी प्रसन्न हो गईं। ब्याह के दिनों के लिये मकान मालिक से कह कर श्रीकान्त ने चार और कमरों की व्यवस्था कर ली थी इसलिये स्थान की कठिनाई भी हल हो गई।

ब्याह के दो दिन पूर्व सुषमा अपनी बड़ी बहिन के साथ रेखा को मिलने आई। उस दिन घर का वातावरण बड़ा सुखद था। रेखा का परिणाम निकला था और श्रीकान्त की इच्छा-

नुसार वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गई थी। हंसते हुए सुषमा ने रेखा से लिपट कर कहा, 'भाबी मिठाई।'

'भाबी' के नाम पर रेखा शर्मा गई। बड़ी ननद ने कहा, 'अरे लज्जाती क्यों हो दो दिन पश्चात तो कहलाना ही होगा।'

सरला देवी मिठाई की प्लेट ला रही थीं वे भी सुनकर हंस पड़ी। रेखा की ननद ने उन्हें लक्ष्य कर कहा, सच मौसी जी, पहले पहल लड़कियों को यह बड़ा विचित्र लगता है। जब मैं ब्याही गई तो ननदों और जेठानियों के बच्चे मेरे इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये। अब किसी ओर से मामी, किसी ओर से चाची की पुकार आने लगी तो मैं बड़ा घबराई, फिर धीरे धीरे अभ्यास हो ही जाता है।'

सरला देवी ने कुछ मुंह मीठा करने का अनुरोध किया। सुषमा को रसगुले बहुत भाते थे सो वह मुक्त भाव से खाने लगी। बहिन ने मना किया तो बोली, 'दीदी खा लेने दो परसों की कसर भी निकाल लूं। फिर बारात में तो कोई लायेगा नहीं।'

'क्यों?' सुषमा की बात का आनन्द लेते हुए सरला देवी बोली।

'पिता जी कहते हैं बारात अधिक नहीं ले जायेंगे।

'हमारे पिता जी प्रारम्भ से ही सिद्धान्त-प्रिय रहे हैं।' बड़ी बहिन बोली।

'यों करो सुषु तुम हमारे यहां महमान बन के आ जाओ। यह घर भी तो तुम्हारा अपना है।'

घन्टा भर बैठ कर दोनों बहिनें चली गईं।

और फिर पन्द्रह श्रावण भी आ गया। प्रातः से ही रेखा के घर में चहल-पहल थी। लोगों का आना जाना चल रहा

था। श्रीकान्त को सिर खुजलाना भी कठिन था। हेमन्त पहुंच गया था और वह सच ही सभी काम सम्भाले था। दो दिन पूर्व ही श्रीकान्त ने सभी प्रकार की दुकानों का परिचय उसे दे दिया था, इसलिये सभी कामों के लिये हेमन्त से कहा जाता। अपने खाने पीने की चिन्ता भी उसे न थी। सरला देवी कभी पुकार कर कहती,

'तूने कुछ खाया हेम ?'

'हां मां।' कह कर त्वरा से वह चला जाता। पारस को श्रीकान्त ने छः सात मास से अन्ध विधालय में छोड़ रखा था। रेखा के ब्याह की सूचना पाकर वह भी आया था और विद्यालय में सीखी हुई कला के रूप में बेंत के बने सुन्दर फोटो फ्रेम और टोकरियां भी लाया था। और साथ ही स्कूल के संगीत मास्टर से सीखे दो मंगल गीत भी उसने तैयार किये थे। एक बारात के आगमन पर गायेगा दूसरा भांवरो के समय। वह रेखा के कमरे के एक कोने में ही गुम सुम बैठा था। काश! कि आंखें होती तो वह बहिन का वधु-रूप देख सकता, इसी का उसे दुख था।

माधवी भी खूब कार्य व्यस्त थी। आने जाने वाली स्त्रियों को पानी इत्यादि पूछना उसी के ऊपर था। बाहर से आने वाली अतिथि स्त्रियां किसी प्रकार की शिकायत आदि अनुभव न करें। हालांकि विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि अधिक भीड़ भड़क्का न हो किन्तु फिर भी हो ही गया। सरला देवी को अमृतसर में रहते, मेल मिलाप रखते कम से कम पन्द्रह वर्ष हो गये थे। कुछ उनके मेल जोल के लोग, कुछ श्रीकान्त और रेखा के परिचित सभी किसी न किसी रूप में आ रहे थे।

दोपहर को बाबू राम नाथ भी सोटा थामे आ पहुंचे। आते ही उन्होंने श्रीकान्त को ढूंढा, वह कहीं बाहर था। इस लिये वे एक ओर पड़ी कुर्सी पर बैठ गये। अनथक कार्य करते हेमन्त पर उनका ध्यान गया, वह निकट आया तो उसे ही बुला कर पूछा,

'श्रीकान्त कहां है ? आप क्या यहीं से आये हैं ?'

'जी नहीं, अम्बाला से आया हूं। मैं श्रीकान्त जी का मित्र हूं।

बरसात की उमस के कारण हेमन्त का कुरता पसीने से गच् हो रहा था। इतने में श्रीकान्त आ गया। नमस्कार कर बोला, 'ओह बाबू राम नाथ जी है। हेमन्त देखना हलवाइयों ने अपना काम आरम्भ किया या नहीं।'

गर्मी के कारण उसका बुरा हाल हो रहा था। उसने एक गिलास पानी मांगा। जाते-जाते हेमन्त बोला, 'पानी, सुबह से पानी ही पानी पीते जा रहे हो। नींबू की शिकंजवी पीओ तो......।'

'अच्छा वही भिजवा दो।'

हेमन्त चला गया तो बाबू राम नाथ बोले, 'अच्छा लड़का है हेमन्त। क्या करता है ?'

'घर का व्यापार है।'

'जाति क्या है ?'

विस्तृत व्योरा तो मुझे ज्ञात नहीं। वैसे क्षत्रिय है।'

'क्षत्रिय ?' बाबू राम नाथ को विचार आया कि क्यों न सरिता के लिये इसे ठीक कर लिया जाये। स्वस्थ, सुन्दर और परिश्रमी है। श्रीकान्त के कहने से मान भी जायेगा। उसका हार्दिक मित्र जो ठहरा।

हेमन्त ने दो गिलास शिकंजवी के भेज दिये। एक बाबू राम नाथ को देकर दूसरा श्रीकान्त ने स्वयं लिया। अभी पूरा पी भी न पाया था कि किसी कार्यवश भीतर से पुकार आ गई। वह उठ कर चला गया।

प्रतीक्षा की घड़ियां समाप्त हो गईं और सांझ ने प्रकृति के आंगन में कदम रखा। साथ ही श्रावण की बदलियों ने नभ मन्डल को आच्छादित कर लिया। उमस् और भी अधिक बढ़ गई। बाहर आकर श्रीकान्त बोला, 'कहीं वर्षा न आ जाये। कहीं वर्षा हो गई तो सभी प्रबन्ध गड़ बड़ हो जायेगा।'

भीतर रेखा नव-वधु के रूप में सज रही थी। सिल्में-सितारे जड़ी लाल साड़ी खूब फब रही थी। हाथों में बन्धे चांदी के कलीरे भन भना रहे थे। माधवी काम करती करती आई। रेखा का यह रूप देखा तो ठोडी ऊपर उठा कर मुख चूम लिया। वही सरिता खड़ी थी। लपक कर माधवी के निकट आई और कहा, 'दीदी एक शुभ सूचना सुनोगी ?'

'इस समय बहुत व्यस्त हूं सरो।'

'तुम्हारे मतलब की ही बात है।' माधवी को रुकना पड़ा। पूछा, 'कह तो।'

'साधना दीदी के लड़का हुआ है।'

मन में आल्हाद की रेखा लिये माधवी पुनः काम में लग गई।

बात वही हुई जिसकी आशंका थी। जैसे ही मिलनी का समय हुआ वैसे ही बून्दा बांदी आरम्भ हो गई। सभी घबरा गये कि अब सब की-कराई व्यवस्था गड़ बड़ हो जायेगी। श्रीकान्त ने आकाश की ओर देखते हुए हाथ जोड़ कर प्रार्थना

की— हे इन्द्र देवता, केवल तीन घन्टे और दे दो, फिर चाहे जितना बरस लेना।

आकाश में बादल अत्यन्त प्रगाढ़ हो गये थे और बून्दा-बान्दी भी तेज़ हो रही थीं, किन्तु लगता है कि भगवान इन्द्र तक श्रीकान्त की पुकार जा पहुंची क्यों कि तत्काल शीतल समीर के झोंके आने आरम्भ हो गये। आकाश में मेघ-समूह मृग-शावकों से कुलांच भरते उड़े जा रहे थे और पवन निरन्तर शीतल होती जा रही थी। इसका स्पष्ट तात्पर्य था कि किसी निकट वर्ती स्थान पर वर्षा हुई है या हो रही है परन्तु अतमृसर में वर्षा बन्द हो गई थी। बरसात की वर्षा ही ऐसी है कभी कभी एक ही शहर के दो स्थानों पर वर्षा नहीं होती। कहीं धूप तथा कहीं छाया होती है। जो भी हो श्रीकान्त की लाज रह गई।

पूरे आठ बजे बारात का आगमन हुआ। मिलनी के पश्चात खाने का कार्य क्रम था। फिर भांवरों का और फिर विदाई का। बारात चूंकि बड़ी सीमित थी इसलिये खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध बड़ा अच्छा था। विदाई भी उन लोगों ने रात की ही रख ली थी। शहर के बीच की ही बात तो थी फिर व्यर्थ ही दूसरे दिन तक कार्य क्रम लटकाया क्यों जाये। श्रीकान्त ने तो कहा था कि सुबह की चाय के पश्चात विदाई हो परन्तु डा० गुप्ता नहीं माने। वे कुछ अनिवार्य रीतियों के अतिरिक्त समारोह को अधिक से अधिक सादा बनाना चाहते थे।

सभी कार्य कुशल पूर्वक सम्पन्न हो गया। अब विदाई का समय आ गया, किन्तु श्रीकान्त कहां है? वह ढूंढे भी नहीं मिल रहा था। सब उसे खोज रहे थे, अन्त में हेमन्त ने

उसे घर के पिछले कक्ष में पाया। वह रो रहा था। रेखा को विदा करना उसे यों लग रहा था जैसे वह अपने हृदय-खन्ड को विलग कर रहा हो। हेमन्त ने समझाते हुए कहा, 'छिः दादा तुम तो स्त्रियों की भाँति रो रहे हो। धैर्य धारण करके बहिन को विदा करो।'

'यह दृश्य मैं नहीं सह सकूंगा हेम। आज रेखा पराई हो गई।'

'मां 'मां' हो कर यह सब सह लेंगी और तुम न सहोगे। यह तो संसार का व्यवहार है। चलो।

श्रीकान्त को खींचते हुए हेमन्त बाहर ले आया। डा० गुप्ता के पिता जी ने उसे प्यार से बाहों में लेकर कहा, 'इतना छोटा मन नहीं करते बेटा, आज तुम एक महत् उत्तरदायित्व से मुक्त हो रहे हो। बहिन के भावी जीवन के लिये मंगल कामना करो'

श्रीकान्त ने कुछ बोलना चाहा पर वाणी रुद्ध हो गई थी। श्रीकान्त ने विदाई के समय पढ़ने के लिये एक शिक्षा स्वयं लिख कर प्रकाशित करवाई थी। किन्तु वातावरण इतना करुण एवं उदास था कि पारस को गाने के लिये निषेध कर दिया, फिर भी लोगों में वह वितरित कर दी गई। शिक्षा क्या थी, भाई के हृदय के उद्‌गार फूट-फूट कर बाहर निकले थे। भाव कुछ इस प्रकार थे—

इस विदा की बेला में मैं तुम्हें क्या कहुं, क्या शिक्षा दुं। मन चाहता है कि हार्दिक वैभव और प्यार के सभी कोष तुम पर लुटा दूं। जब मेरा उदास मन किसी समय निश्छल प्यार पाने के लिये तड़पेगा तो तुम्हारी स्मृति सतायेगी। जाओ, अपना भव्य, मंगल मय नीड़ निर्माणार्थ जाओ बहिन, शुभ

कामनाएं तुम्हारे जीवन-मन्दिर की बन्दन वार बनें, कल्याण और सद्भावना तुम्हारे प्रहरी बनें और सौख्य एवं शान्ति तुम्हारा पथ प्रशस्त करें।

जाओ, अपने गुणों की गरिमा से तुम उस घर को स्वर्ग बनाओ। स्वच्छ भावनाओं की निर्झरणी प्रवाहित कर सुख शान्ति सरसाओ। उनके हित दीपक की बाती सी जलो और प्रकाश प्रसारित करो।

जिस जिस ने पढ़ा उसी ने कहा भाई हो तो श्रीकान्त ऐसा। श्रीकान्त ने रेखा की ओर देखा, रो रो कर उसके नेत्र भी लाल हो गये थे। वह उसके निकट गया किन्तु क्या कहे। भाई-बहिन की आंखें मिली कि दोनों फूट-फूट कर रो पड़े। सरला देवी स्वयं भी रो रही थीं फिर भी बेटे को समझाते हुए उन्होंने कहा, 'कान्त! बेटा पुरुष बनो।' किन्तु इसके साथ ही उन्होंने स्वयं आंचल नेत्रों पर रख लिया। कैसी विडम्बना यह विधि की है कि जिस कन्या को माता-पिता इतने लाड-प्यार से रखते हैं उसे एक दम पराया कर देना पड़ता है। यदपि यह एक शाश्वत नियम है। आदि से चलता आ रहा है और अन्त तक चलता जायेगा। बाहर बैंड विदाई की करुण धुन बजा रहा था। डा० गुप्ता के बड़े भाई आकर बोले, 'श्रीकान्त भाई, देर बहुत हो जायेगी।'

विदाई हो गई तो वातावरण एक दम शून्य हो गया। जिस घर में कुछ क्षण पूर्व वातावरण इतना कोलाहल मय था वहां एक दम सन्नाटा सा छा गया। रोते हुए श्रीकान्त बोला 'मां! रेखा अब हमारी नहीं रही, मां रेखा पराई हो गई, सदा के लिये पराई हो गई।'

'हां मेरे लाल, किन्तु ऐसा सभी के साथ होता है।

लड़कियां कभी माता-पिता के पास नहीं रहीं' मां ने प्यार से श्रीकान्त के बालों में हाथ फेरते हुए कहा।

२७

बा० राम नाथ ने रात भर तो किसी प्रकार हेमन्त के विषय में रहस्य छुपा कर रखा किन्तु जैसे ही दिन चढ़ा कि उनके मन में उथल-पुथल होने लगी। नैमत्तिक कर्मों से निबट कर जैसे ही सावित्री देवी रसोई में जाने लगी कि उन्होंने पुकार लिया, 'सुनो तो।'

'मुझे काम है इस समय, फिर सुनुंगी।'

'बहुत अच्छी सूचना है सावित्री।'

'क्या ?' कौतुहल के आकर्षण से सावित्री खिंची आई।

'सरिता के लिये लड़का देख लिया है।'

'सच !' सावित्री देवी को विश्वास नहीं हो रहा था। उसे अपने पति के विषय में जैसे निश्चय था कि वे कभी इन विषयों में सचेत नहीं हो सकते। सावित्री देवी समझती कि यदि मैं इनके पीछे न पड़ूं तो बस सब काम-धन्धे पड़े ही रहें। जाने लड़कों को कैसे पढ़ाते हैं। बाबू राम नाथ बोले, 'सच सावित्री बड़ा ही सुन्दर परिश्रमी लड़का है। श्रीकान्त से कहा जाये तो मना भी देगा।' सावित्री देवी यों तो श्रीकान्त के नाम से चिढ़ती थीं किन्तु अब अपने ही स्वार्थ

का प्रश्न है और साधना की शादी भी अतीत की बात हो गई। अतः कहा,

'रात को बात की थी। आपने ?'

'अरे रात को तो इतने कोलाहल में बात कैसे हो सकती थी। हां है क्षत्रिय। तुम कहो तो बुला लाऊं।'

'यह भी क्या पूछने की बात है यह तो गंगा स्नान है। सरो तो साधना से भी बढ़ कर निकली है। मोहल्ले वालियाँ कहती हैं कि तुम्हारी सरो का यौवन खूब निखरा है। जमाना कितना बुरा है। जितना शीघ्र हमारा कर्त्तव्य पूर्ण हो जाये ठीक है।'

नहा धोकर बाबू राम नाथ उन्हें लेने के लिये चल पड़े। सावित्री देवी इसी मध्य बैठक की सफाई इत्यादि करने लगी। सरिता को आज्ञा देकर मेज़ पोश बदलवाये, चित्रों की धूलि पोंछवाई, और भी इधर-उधर के कई कार्य कर डाले। एक घन्टे के भीतर ही भीतर राम नाथ हेमन्त और श्रीकान्त को ले आये। आते ही बोले, 'लो ले आया, बैठक में बैठा दिया है। श्रीकान्त बेचारा तो रात का इतना थका था फिर भी सुनते ही चल पड़ा। मैंने बात की है। आशा है मान जायेगा।'

साड़ी बदल कर सावित्री देवी हेमन्त को देखने चली। देखकर पति के कथन के प्रति विश्वास्त होना पड़ा। हेमन्त उन्हें पसन्द आ गया। बैठ कर वे श्रीकान्त से ही बातें करने लगी, 'सुना है रेखा का वर अत्यन्त सुन्दर तथा सुसाय है।'

'आप आईं नहीं ?'

'यह और सरो चले गये थे। छोटे बच्चों के पास भी कोई रहता। लड़कियों के ब्याह का उत्तरदायित्व बहुत होता है।'

'जी हां।' भीतर से श्रीकान्त शीघ्र ही निवृत्त होना चाहता था, घर में अभी बहुत काम बिखरा पड़ा था। सीधे विषय को छूते हुए उसने कहा, 'बाबू जी हेमन्त के विषय में कुछ पूछते थे ?'

'हां, क्षत्रियों में तुम्हारी क्या जाति है बेटा ?' सावित्री देवी ने पूछा।

'जी मुझे जाति-पाति के प्रति आस्था तो नहीं वैसे हम लोग थापर हैं।

'हम तो ऊढाई घरे हैं।'

'यह पचड़ा बीच में न रखो सावित्री। वह क्षत्रिय है बस इतना ही ....'

'जी हां आजकल यह अत्यन्त लघु एवं हीन बात समझी जाती है।

मनुष्य अच्छा होना चाहिये। हम ब्राह्मण हैं पर रेखा अग्रवालों के यहां गई है। क्या अन्तर पड़ता है।' श्रीकान्त ने कहा।

'यही तो मैं कहता हूं।' शह पाकर जैसे राम नाथ बोले। सावित्री देवी ने तनिक रुष्ट होने का भाव प्रदर्शित किया। फिर तत्क्षण अपने को सम्भाल लिया। सामने साधना और रंजीत का चित्र टंगा था। साधना जैसे उन्हें उलाहना सा दे रही थी, उसका दुर्बल, कृश मुख सावित्री देवी के सम्मुख घूम गया। वे सोचने लगीं, साधना को अपनी ही जाति में देकर क्या विशेष सुख उन्होंने पालिया। फिर अभी यह लड़की को भी देखेगा, जाने क्या सम्बति होती है। लड़का अच्छा है, देखने में सभ्य और अच्छे घराने का लगता है। श्रीकान्त मध्यस्थ बन रहा है; लेन देन का प्रश्न भी स्यात्

इतने कटु रूप में न आये, तो स्वीकार कर लिया जाये। क्षत्रिय तो है बिलकुल विजातीय तो नहीं है। आज कल सुना है पंजाबी, बंगाली, मद्रासी भी आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। इनके हेड-मास्टर का लड़का तो विलायत से मेम ही ले आया है। श्रीकान्त सच ही कहता है कि इन बातों में क्या रखा है। सावित्री देवी का मन स्वयं को परिस्थिति के लिये प्रस्तुत करने लगा। वास्तव में उनका आज तक का वातावरण ही संकीर्ण रहा है इसी से उनका मन इन दुविधाओं में उलझा रहता है। यह वह स्वयं मानने लगी थी। तभी राम नाथ बोले, सरिता को तो बुलाओ सावित्री।'

'जी रहने दीजिये, श्रीकान्त भय्या ने देखा है तो मेरे देखने की आवश्यकता नहीं।' हेमन्त ने कहा।

'नहीं, नहीं बेटा ऐसी कोई बात नहीं, आधुनिक युग में तो यह एक साधारण प्रथा बन गई है।' राम नाथ ने कहा

'हां! हां! हेमन्त उचित ही कहते हैं यह. सब देख सुन कर करना ही उचित होता है।

हेमन्त चुप हो रहा। हालांकि हेमन्त की मन से यह आकांक्षा थी परन्तु श्रीकान्त मध्यस्थ था इसलिये कुछ सकुचा रहा था।

सावित्री देवी भीतर गई और गुलाब-शर्बत तथा कुछ खाद्य सामग्री देकर सरिता को भेज दिया। हेमन्त ने देखा वह लम्बी, छरहरी और आकर्षक है। सरिता ने कंपित हाथों से ट्रे मेज पर रख दी और झुकी-झुकी दृष्टि हेमन्त पर डाल कर बाहर निकल गई। बाबू राम नाथ उसी प्रकार सतर्क हो गये

जैसे न्यायाधीश का निर्णय सुनने से पूर्व अभियुक्त होता है। श्रीकान्त ने ही प्रश्न किया, क्यों हेम ?'

'लड़की अच्छी है और मुझे स्वीकार है।'

बाबू राम नाथ जैसे स्वर्ग का राज्य पा गये। भागे-भागे भीतर गये और सावित्री देवी को शुभ सूचना सुनाई। भूमि स्पर्श कर हाथ नेत्रों को लगाते हुए वे बोलीं, 'हे भगवान तू धन्य है। इसे कहते हैं संयोग।' उनकी प्रसन्नता समा नहीं पा रही थी। किन्तु प्रातः काल के ९ बजे तक दुकानें ही नहीं खुलतीं। वे क्या करें। शगुन तो पीछे हो दिया जायेगा, चलो इस समय रुपयों की रोक हो सही। उन्होंने ग्यारह रुपये हेमन्त के लिये और पांच रुपये श्रीकान्त के लिये निकाले। अब तो वह उनके भावी जमाता का मित्र है।

जब सावित्री रुपये देने लगीं तो हेमन्त ने आश्चर्य से कहा, 'कैसे रुपये।'

'साधारण शगुन के हैं बेटा, अस्वीकार न करो।'

'श्रीकान्त भय्या जानते हैं कि मैं इन बातों में विश्वास नहीं रखता।'

'यह लेन देन इन सम्बन्धों का आधार न ही हो तो अच्छा है।' श्रीकान्त ने कहा।

'यह लेन देन है, लोग तो सेकड़ों और हजारों देते हैं।'

'हमें औरों से क्या, हम तो 'स्वयं' के उत्तर दाया हैं। हेम बोला।

'किन्तु तुम हमारे घर से रिक्त हस्त नहीं जा सकोगे।' राम नाथ ने कहा।

'तो फिर एक रुपया लिये लेता हूं।'

कह कर हेमन्त ने एक रुपया उठा लिया। छोटी नीला किवाड़ की आड़ से छिप छिप कर झांक रही थी। हेमन्त ने संकेत से उसे बुलाया तो भाग गई। जब हेमन्त ने नहीं लिया तो श्रीकान्त कैसे ले सकता है। फिर भी दिखाने के लिये—

'कैसी बात करते हैं आप, सरिता को तो मैं रेखा के समान ही मानता हूं।'

कितना अच्छा लड़का है। सावित्री को पश्चाताप हुआ किसी दिन भूल से उन्होंने श्रीकान्त को शोहदे की संज्ञा दे दी थी। वही श्रीकान्त आज उन्हें देवता सा लग रहा था। साधना का चित्र उनके सामने आ गया। फिर जैसे अशात मन से किसी ने कहा यदि साधना का ब्याह श्रीकान्त के साथ हो जाता? फिर झटका सा लगा, जो हो नहीं सका उसके लिये चिन्ता क्या। जो होना है सो तो अवश्यंभावी है। बाबू रामनाथ से आज्ञा लेकर श्रीकान्त हेमन्त सहित चला गया। जाते-जाते कहा, 'ब्याह के लिये अभी एक वर्ष रुकना होगा बाबू जी।'

'ठीक है तब तक सरिता का, एफ. ए. भी हो जायेगा।'

उनके चले जाने पर जब रामनाथ भीतर आये तो हर्ष-पूरित हृदय से सावित्री देवी बोली, 'देखा संयोग को, कल तक सभी कुछ आवरण में था। तुम नियति को नहीं मानते न, यह है नियति का जादू।'

'मैं नियति को नहीं मानता, कैसे?'

'आपकी बातें ही ऐसी हैं।'

श्रीमती जी, मैं तो नियति को उसी दिन मानने लगा था जिस दिन तुम सदृश बुद्धिशीला मेरे पल्ले पड़ी।'

रूठने का अभिनय करती हुई सावित्री बोली, 'आप को नट्खट्पन सूझता है।'

'आह यह त्यौड़ी चढ़ा मुख इस वयस् मे भी सलोना लगता है।'

सावित्री और चिढ़ गई। बोली, 'शि–इ–ई–आपको बच्चों की लाज तो करनी चाहिये। अब तो नाती भी हो गया। '

'नाती होने से क्या दिल भी बूढ़ा हो जायेगा।'

,अच्छा आप ठठोलियां करें मैं सब्ज़ी बनाने जा रही हूं।'

फिर सरिता को आवाज़ देकर कहा, 'चल तो बेटी ज़रा आग जला दे।'

रामनाथ दूसरी बेटी के ब्याह की बात सोचने लगे।

२८

एक मास तक शिमला इत्यादि स्थानों का भ्रमण करके रेखा पति सहित अमृतसर लौटी थी। इसलिये माधवी ने नवदम्पति को रात्रि भोजनार्थ आमन्त्रित किया था। साथ में श्रीकान्त को भी अनुरोध किया था। पहले माधवी की यह इच्छा हुई कि दो-तीन और सखियों को भी बुला लिया जाये किन्तु फिर वातावरण में कृत्रिमता सी हो जायेगी इसलिये इस विचार को त्याग दिया। माधवी ने दोपहर को नौकर द्वारा सब 'प्रबन्ध करवा लिया था। और कह रखा था कि पूरे आठ बजे खाना मेज़ पर आ जाये। दुसहरी आम मंगवा कर बर्फ में रखवा दिये थे, साथ कल उसकी एक सखी ने काश्मीर से लाये

हुए आलुबुखारे और खुमानियां भेजी थीं वे भी बर्फ में लगवा दी थीं।

ठीक साढे सात बजे तैयार होकर माधवी उनकी बाट जोहने लगी। कोठी के बाहर ही लॉन में बैठने के लिये कुर्सियों लगाई गई थी। सन्धया की सघनता में माधवी का एकाकी मन खिन्नता सी अनुभव करने लगा। विक्षुब्धा सी वह इधर-उधर टहलने लगी। गुलाब का एक नन्हा सा फूल डाली के घूंघट में दांत निपोर रहा था। माधवी ने तोड़ कर उसे जूड़े में खोंस लिया। शून्य डाली जैसे रो पड़ी। माधवी को पश्चाताप हुआ। उसे लगा, फूल को डाली से विलग करके अत्याचार किया है। उसने, फिर सोचा, ऐसे ही भाग्य ने एक दिन मुझे मां से जुदा कर दिया, फिर पिता जी से। किन्तु यहीं नहीं रुका दुर्दैव, एकाकी जीवन का अभिशाप देकर उसने अपने अत्याचार की पराकाष्टा कर दी। वह देखने लगी वधु के रूप में अलंकृत एक मुख, वह किसी और का नहीं उसका अपना था, माधवी का। शीतल मन्द समीर का एक झोंका आया साथ ही हार-सिंगार के नन्हें-नन्हें सुमनों की बौछार। वृक्ष के नीचे जाकर अंजलि भर पुष्प उठा कर उन्हें फिर वायु के संग उड़ा दिया। कितनी देर यही क्रीड़ा करती रही। सहसा रेखा के स्वर ने उसे चौंका दिया, वाह दीदी, वन सुन्दरी सी क्या क्रीड़ा कर रही हो?'

माधवी ने फूलों की एक अंजलि भर कर रेखा पर बरसा दी। वे लघु श्वेत प्रसून आशीर कणों के समान नव विवाहिता रेखा पर बिखर गये। सन्ध्या के अनुसार रेखा ने साधारण सा श्रृंगार किया था और हल्के रंग की ही साड़ी पहनी थी। वह अत्यन्त मोहक लग रही थी।

'जब तक भोजन तैयार नहीं होता, यहीं बैठ जाये। क्यों डा० साहब ?' उसकी बात का अनुमोदन करते हुए डा० रमेश ने कहा, आप ठीक ही कहती हैं। बरसात में बाहर की वायु अधिक सुखद होती है विशेषकर शाम के समय।'

रेखा को परिहास करते हुए माधवी ने पूछा, 'वैवाहिक जीवन कैसा लगा रेखा ?'

प्रश्न पूछा गया रेखा से परन्तु उत्तर दिया रमेश ने, 'मुझ से पूछिये न दीदी, अत्यन्त सुखद।'

रेखा पति की ओर देख मुस्करा दी सलज्ज भाव से। इधर-उधर की गप्पें चलने लगीं। फिर शिमला की चर्चा चल तो डा० गुप्ता बोले, 'मैं बहुत जगह घूमा फिरा हूं किन्तु यों लगता है कि सौंदर्य, वैभव और फैशन की जितनी होड़ दिल्ली और शिमला में है उतनी कहीं नहीं दीखती। वहां तो विपन्नता, दैन्य और दुख का कहीं नाम ही नहीं दीखता।'

'जी हां मैं भी शिमला हो आई हूं, मैं जब शाम को माल पर घूमने जाती तो ऐसा अनुभव करती कि जैसे इन रंगीन तितलियों में मेरा कोई स्थान ही नहीं। जिनके घर में मैं ठहरी थी उन्हीं की बहु मेक-अप में एक घन्टा लगाती थीं और मैं पांच मिनट में तैयार।'

'दीदी तुम तो एक दम तपस्विनी हो।' रेखा ने कहा।

'तपस्विनी नहीं रेखा परन्तु प्रत्येक वस्तु की सीमा रहना ही समाज हित में श्रेयस्कर है। सीमा का उल्लंघन उच्छृंखलता को जन्म देता है और तब उसकी प्रतिक्रिया भी होती है।'

'मैं आपसे सहमत हूं दीदी। शृंगार या प्रसाधन बुरा नहीं, यह तो मनुष्य की सामाजिक रुचि-कुरुचि का द्योतक

है। मनुष्य सौंदर्य का उपासक है इसलिये प्रारम्भ से ही वह अपनी रुचि को परिष्कृत करता रहा है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मनुष्य अपने अमूल्य समय को इन व्यर्थ के झझटों के लिये नष्ट करता रहे।' डा. गुप्ता ने कहा।

'इसके साथ यह भी तो देखना है कि देश का कितना धन इन सब में व्यय होता है। अब तो खैर यह उपकरण भारत में बनने लगे हैं किन्तु पहले तो अतुल धन-राशि विदेशी कम्पनियां खींच कर ले जाती थीं।'

'फिर इनका अधिक प्रयोग स्वास्थ्य के लिये भी हितकर नहीं। अधिक पाउडर का प्रयोग त्वचा को विकृत कर देता है। अनुकरण तो हम पाश्चात्य देशों का करते है किन्तु वहां की महिलाएं इस विषय में सतर्क हैं वे रात को कृत्रिम मेकअप उतार कर, कई प्रकार के कोमल करने वाले लोशन या तरल पदार्थ लगाती हैं।'

'स्त्रियां तो एक ओर अब तो पुरुष भी इस ओर अग्रसर होने लगे हैं। हमारे पड़ोस में एक युवक आया था वह शाम को जब भी निकलता अधरों पर हल्की लिपस्टिक होती।' श्रीकान्त बोला।

'युग आयेगा जब स्त्रियां प्रसाधन छोड़ देंगी और पुरुष अपनायेगा' परिहास पूर्ण स्वर में माधवी ने कहा

'माधवी दीदी इसका तात्पर्य यह होगा कि स्त्री अपना पन छोड़ देंगी, अपना स्वभाव त्याग देंगी।

तभी माया ने आकर भोजन तैयार होने की सूचना दी। माधवी ने उठते हुए कहा, 'अब और देर नहीं करनी चाहिये पहले ही काफी समय हो गया।'

सभी उठ कर भोजन के कक्ष में पहुंच गये । डा. गुप्ता ध्यान से माधवी के डाइनिंग रूम (भोजन कक्ष) की सामग्री देख रहे थे । सारा सामान अत्यन्त मूल्यवान एवं सुरुचि पूर्ण था । खिन्न सी हंसी हंसते हुए कहा माधवी ने, 'क्या देख रहे हैं यह सब मेरे पिता जी का क्रय किया है और अब उनकी केवल स्मृति-मात्र रह गई है ।'

डा गुप्ता ने प्रत्युत्तर देना उचित न समझा । शायद इससे माधवी के भाव अधिक छलक जाते । भोजन मेज पर आ चुका था ।

'दीदी मैंने कहा था व्यर्थ कष्ट न करना तुमने इतने व्यंजन इत्यादि बनवा दिये ।'

'बातें बहुत सीख गई हो रेखा ।'

खाने के मध्य भी हल्की फुल्की बातें चलती रही । भोजन के पश्चात हाथ धोकर पोंछते हुए डा गुप्ता बोले, 'आपकी कोठी तो खूब लम्बी चौड़ी है । सारी दिखाइये तो ।'

माधवी कक्ष कक्ष घूम कर उन्हें दिखाने लगी । कोठी में सत्तारह अट्ठारह कमरे थे और भी सब प्रकार के सुख-विश्राम के साधन जुटाये गये थे । सब से अन्त में माधवी अपने निजी कक्ष में उन्हें लाई । मकरन्द का चित्र देख कर डा. गुप्ता ठिठक कर रह गये । मूक भाव से कुछ क्षण निरीक्षण करते रहे फिर पूछा, 'यह आपके कौन हैं ?'

माधवी के कान जैसे बहरे हो गये थे । वह स्वयं भी चित्र को अपलक भाव से देखने लगी । फिर झटपट सम्भल कर बोली, 'क्या बताऊं कि कौन हैं ? मेरे जीवन की अमूल्य निधि इन्हीं की स्मृति है डा. साहिब ।' माधवी के स्वर में भावुकता थी ।

डा० साहब ।'

'इनका नाम मकरन्द है क्या ?'

'आप जानते हैं इन्हें ?' माधवी की उत्कण्ठा छलक रही थी ।

डा० गुप्ता समझ गए कि माधवी की तपस्या के पार्श्व में अवश्य कोई पुण्य-वार्ता है । उन्हों ने बताया कि दिल्ली में जहां वह रहते थे उन्हीं के पड़ौस में एक और डाक्टर रहते थे । उनका एक चचेरा भाई मकरन्द उनके पास रहता था । वह अपना मानसिक स्वास्थ्य खो बैठा था और वे लोग उसे पागल कहते थे । परन्तु वह ऐसा पागल न था जो मारता या काटता । वह शान्त भाव से घूमा करता और स्वयं से बातें करता रहता । इस विक्षिप्ता वस्था में भी वह फर्राटे की इंगलिश बोलता था । बच्चों से उसे प्यार था । बड़ों से अतीव कम बोलता किन्तु बच्चों की इच्छाओं का दास हो जाता । पूछने पर पता लगा था कि पिता की मृत्यु के उपरान्त कोई अन्य नातेदार न होने से वह उन्हीं के पास टिका था । पिता शायद इन्जीनियर थे और जो कुछ भी उनके पास था अपने इस पागल बेटे के नाम कर गये थे ।

डा० गुप्ता के शब्द समाप्त होते-होते माधवी व्यथित भाव से रो पड़ी । रेखा उसे समझाने का प्रयास कर रही थी । बहुत समझाने पर माधवी तनिक स्वस्थ हुई । फिर कहा, 'आप उनका पता बतला सकेंगे डाक्टर साहिब ।'

जेब से पेन निकाल कर काग़ज़ पर डा० गुप्ता ने मकरन्द का पता लिख दिया । इसके पश्चात् माधवी ने श्रीकान्त से प्रश्न किया, 'आप को कुछ दिन का अवकाश होगा श्रीकान्त भाई ?'

'क्या करना होगा कहिये ?'

आपको मेरे साथ दिल्ली चलना होगा ।'

'दिल्ली ।'

'मकरन्द को लाने जाऊंगी रेखा, इस विक्षिप्ता वस्था में भी वह मेरे शून्य-एकाकी जीवन का प्रकाश स्वम्भ बनेगा ।'

माधवी के इस विचार की आलोचना करने की आवश्यकता भी नहीं थी । इस लिये सभी चुप हो रहे । इस निस्तब्धता को भंग कर श्रीकान्त ही बोला, 'आप जब कहिये तभी कार्यक्रम बना लिया जाये ।'

'दो एक दिन में नारी मन्दिर की व्यवस्था करके फिर चलेंगे ।'

'नारी मन्दिर को मैं सम्भाल लंगी दीदी तुम चिन्ता न करो ।'

'डा० साहिब से छुट्टी मिल जायेगी ।'

माधवी के इन शब्दों ने वातावरण की नीरसता को कुछ अल्प कर दिया । डा० गुप्ता बोले, 'घर में इतना काम ही क्या होता है माधवी दीदी । एक नौकर है, एक महरी और हम दो प्राणी । मैं प्रातः ही अस्पताल चला जाता हूं सो दो तीन घन्टे तो यह नियमित रूप से दे सकती है आपके नारी मन्दिर में ।'

रेखा पति के इस प्रोत्साहन से प्रफुल्लित हो उठी । डा० गुप्ता उन पतियों में नहीं थे जो विवाह के उपरान्त नारी को बिलकुल अपनी इच्छा की दासी बना लेना चाहते हैं । उनके मतानुसार नारी भी सवेच्छा की स्वामिनी है, उसे भी अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने का अधिकार है । हां ! यह अलग बात है कि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के हितार्थ अनुकूल बनने का

प्रयास करें और कुछ त्याग करने के लिये प्रस्तुत हो। कई पुरुष विवाह के पश्चात नारी के रहन–सहन बोल-चाल, यहां तक कि पहनने ओढ़ने में भी हस्तक्षेय करते हैं। वे चाहते हैं कि पत्नी कठपुतली की भांति उनकी आज्ञा का पालन करे। डा० गुप्ता को यह ढंग पसन्द नहीं। अत: वे बोले, 'हां यह नहीं कह सकता कि कब तक कर सकेगी ?'

'क्यों।'

'तीन वर्ष मुझे यहां हो गये, अब बदली का आदेश आने वाला है।'

'यह तो बुरी सूचना दी आपने, हमारी रेखा को आप हम से दूर ले जाना चाहते हैं।'

'यह तो राजकीय नियम है मेरे बश की बात तो है नहीं।'

दस बज गए थे। इसलिये माधवी का धन्यवाद करते हुये डाक्टर साहब ने कहा, 'भोजन की इस सुन्दर व्यवस्था केलिए धन्यवाद माधवी दीदी।'

'यह शब्द कह कर आप मेरे आनन्द को आधा कर रहे है डाक्टर साहिब।'

उन लोगों के जाने पर माधवी आकर विस्तर पर लेट गई। चतुदर्शी की रात थी। नभ में इन्दु मुस्करा रहा था। माधवी को आज उसमें मकरन्द की छाया दिखाई दी। वह कल्पना करने लगी अपने ही घर में मकरन्द के घूमने फिरने की। वह पागल ही सही उसकी दृष्टि के सम्मुख तो होगा। उसका मन किसी के लिये चिन्तन करेगा, जब वह बाहर जायेगी तो घर लौटने का कोई आकर्षण तो होगा। अब माधवी के लिये भौतिक या मानसिक प्रेम का प्रश्न कहां था।

बहुत दिन हुए उसने अपनी सभी तमन्नाओं को समाधिस्थ कर दिया था। उन्हें जाग्रत करना ठीक नहीं, वह वहीं विश्राम पाती रहें, मन के किसी शून्य कोने में। फिर भी मकरन्द को लाकर उसे शान्ति मिलेगी। स्निग्ध ज्योत्सना रजत आवरण सी सृष्टि के आंगन में बिछ रही थी। नेत्र मूंद कर हृदय के क्षेत्र में वह मकरन्द को पुनः पुकारने लगी। उसका शुष्क जीवन सहसा सरस हो गया।

२९

छः मास के दुर्बल तथा अस्वस्थ शिशु को लेकर जब एकाएक साधना मां के द्वार आकर खड़ी हो गई तो सावित्री देवी एकाएक विश्वास न कर सकीं। किन्तु एक क्रूर सत्य की भांति उन्हें विश्वास करना ही पड़ा। साधना की अपनी स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। मां ने लपक कर बेटी को हृदय से लगा लिया और जैसे रोकर बोली,

'यह तेरी क्या हालत है बेटी ?'

'मां धैर्य न खोओ, मुझे बैठ तो लेने दो, अब तो सदा के लिये तुम्हारे दर पर आ गई हूं।'

'सदा के लिये ?' मां और भी तड़प कर बोली।

'हां मां।'

बच्चा रो रहा था। उसे सरिता को देते हुए साधना ने कहा, 'सरो घर में दूध तो होगा, इसे पिलादे बहन।

सरिता बच्चे को लेकर चली गई। साधना जो अभी तक पत्थर सी बैठी थी। फूट फूट कर रो पड़ी और साथ ही मां, बहिनों सभी को रुला डाला। सावित्री देवी सहमी सी देखती रहीं। फिर बेटी के नहाने खाने का प्रबन्ध करने लगीं। वस्त्रों के नाम साधना केवल दो चार अपनी धोतियां एवं बच्चे के वस्त्र लाई थी। आभूषणों के नाम पर एक छल्ला भी उसके शरीर पर न था। कांच की दो, दो चूड़ियां अवश्य थीं उन दुबली-पतली बांहों में। हाथ मुंह धो कर साधना कुछ स्वस्थ हुई किन्तु बोलने को उसका मन ही नहीं था। मां ने और छेड़ना उचित न समझा। क्या हो गया जो स्थिति यहां तक आ पहुंची। अपनी बेटी की सहन शीलता पर उन्हें विश्वास था। बा. रामनाथ के आने पर साधना के आगमन के कारण पर पुनः चर्चा हुई। साधना ने कहा, 'मां तुम्हें सब बताऊंगी, केवल कुछ दिन मन को स्थिर होने दो।'

हारकर सावित्री देवी चुप हो रहीं। चौथे दिवस साधना के ससुर का पत्र आ पहुंचा कि साधना वहाँ नहीं रह सकी इसका दुख उन्हें अवश्य है किन्तु स्थिति ऐसी है कि और कोई समाधान हो भी नहीं सकता।

पढ़ कर बा. रामनाथ ने सिर थाम लिया। यह एक नई समस्या आई। विवाह के दो वर्ष अनन्तर ही बेटी द्वार पर पुनः आ बैठेगी इसकी कल्पना तक भी न थी। फिर अब तो शिशु भी था। अपने ही परिवार की आवश्यकता पूर्ति कठिन थी अब यह और उलझन आई। कैसी विडम्बना है लड़की का वही घर होता है बाद में एक दम पराया हो जाता है। माता-पिता ही उसे बोझ समझने लगते हैं।

साधना का हृदय अभी अत्यन्त विषण्ण था। समस्त दिन

खिन्न और अस्त व्यस्त रहती, दिन में एक दो बार अवश्य रोती। बहुत होता तो भगवान के सम्मुख बैठकर गीता इत्यादि पढ़ती रहती। बच्चे का नाम 'पप्पू' था और सरिता तथा नीला उसे हाथों-हाथ लिये रहती। यहाँ वह कुछ सुधर गया था। कुछ मोटा-मोटा एवं गोरा-गोरा हो गया था। सावित्री देवी अलग खिन्न रहती। उन्हें बार-बार दैव पर क्रोध आता जो एक दिवस भी सुख-चैन का रहने नहीं देता।

माधवी को जैसे ही ज्ञात हुआ वह भागी आई।

'तुमने मुझे सूचना क्यों भिजवाई साध?' उलाहने से माधवी ने कहा।

'क्या करूं दीदी चित्त स्थिर ही नहीं था।'

'हमें तो यह कुछ बताती नही माधवी बेटी, तू ही पूछ ले। यह कहती है सदा के लिये आ गई हूं। ऐसे भी कभी चलता है?'

दोनों सखियों को छोड़ सावित्री देवी भीतर चली गई क्योंकि धोबी कपड़े लेकर आ गया था। साधना कहने लगी, 'दीदी जैसी अवस्था थी सो तो तुम देख हीं आई थी। मैंने भी निर्णय कर लिया था कि जैसे भी हो सहुंगी। पिता जी की आर्थिक कठिनाई का ध्यान मुझे सदा रहता था। इसी मध्य उनकी प्रेयसी की मां का देहान्त हो गया और वह इस संसार में अकेली ही रह गई। एक दिन घर आते ही सास जी से बोले, 'मां तुम्हारी इस बहु के साथ मेरी किसी प्रकार पट नहीं सकती।'

'बेटा बहु तो मेरी लक्ष्मी है, हीरे जैसा लाल उसकी गोद में है। कैसी बात तू कहता है।' मां ने कहा।

'तुम्हारे लिये वह लक्ष्मी, सरस्वती सब हो सकती है मेरे लिये नहीं । तुम्हीं ने जबरन यह विवाह करवाया था । मैं दूसरा विवाह करवाने जा रहा हूं ।' वे बोले

मैं भीतर खड़ी सुन रही थी । मेरा हृदय धक्क से रह गया । पत्नी सब कुछ सुन सकती है नहीं सुन सकती पति के दूसरे विवाह की बात । मां गरज कर बोली, 'मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता ।' किन्तु इस का उन पर कोई प्रभाव न हुआ । मां बड़बड़ाती रहीं और वे मेरे पास भीतर आकर बोले, 'सुन लिया न तुमने । इस घर में अब तुम नहीं रह सकोगी ?'

'जी हां, किन्तु यह मेरा घर है, यहाँ मेरा अधिकार है ।' मेरे मुख से निकला

'उहं अधिकार, स्त्रियों का भी अधिकार होता है । मैं कल ही तुम्हारी सौत को ला बैठाऊंगा ।'

मैंने विनय से कहा, 'मुझ से क्या अपराध बन पड़ा है कहिये तो ।'

'अपराध, बस यही कि मैं तुम से प्यार नहीं करता और ब्याह को मैं प्यार का बन्धन मानता हूं ।'

यह सब यहीं ठप्प हो गया । और एक दिन सचमुच ही वे उसे घर ले आये । कला तथा मां दोनों ने अवरोध किया । किन्तु वे माने नहीं । कला ने तो यहां तक कह दिया कि कानून न वह दूसरा विवाह नहीं करवा सकते जब तक दो वर्ष पत्नी से विलग होकर तलाक न लियाजाए । इस पर बोले, 'मैं दो वर्ष इस का मुख न देखूंगा ।'

'अब तुम्हीं कहो इस स्थिति में इतना अपमान सह कर मैं कैसे रहती वहां । खिन्न हो कर उनकी मां कला सहित बड़े

लड़के के पास चली गईं। मैं क्या करती वहां ? जब चली हूं दीदी, कैसे उस दृष्य का वर्णन करूँ, कलेजे पर छुरियां चल जाती हैं, सच। वे और उनकी प्रेयसी मेरे ही कक्ष में बैठे हास परिहास कर रहे थे। बच्चे को चार मास तक उन्होंने बुलाया तक न था। मैं क्या करती दीदी। जड़ नहीं थी दीदी, मेरे भीतर चेतना थी, मानवात्मा थी।'

साधना पुनः रोने लगी थी। उसका जीवन ही जैसे अश्रुओं का अथाह सागर हो गया था। काम समाप्त करके सावित्री देवी भीतर आईं तो माधवी ने कहा, 'साधना ने आकर बहुत ही अच्छा किया है मौसी जी।'

'क्या कहती हो ?' सावित्री देवी ने नेत्र फाड़कर माधवी की ओर देखा। कभी लड़की का ससुराल छोड़ना भी हितकर हो सकता है यह उनकी समझ से परे था। तब माधवी ने सारी वस्तु स्थिति बता कर कहा कि वास्तव में अब स्थिति नियन्त्रण के बाहर थी। नहीं तो साधना जैसी लड़की कर्तव्य से हटने वाली न थी। किन्तु मां के सम्मुख केवल आर्थिक तंगी ही मुख बाये खड़ी थी। परितोष अब दसवीं श्रेणी में पहुंच गया है। किताबों का व्यय ही कम नहीं और सरिता का ब्याह भी अगामी वर्ष करना होगा। सावित्री देवी हां या ना कुछ भी न कह सकीं। अनमने मन से बोलीं, 'हम यह बातें क्या जाने बेटी, नया युग है, नयी बातें।'

'जी हां। समय के साथ नियम और परम्पराएं सदा परिवर्तित होती रही हैं।'

'माधवी दीदी मुझे कहीं काम खोज दो। मैं किसी के ऊपर बोझ नहीं बनना चाहती।'

'सो तो हो जायेगा। मैं कल ही किसी विद्यालय की मुख्याध्यापिका से मिल कर पूछूंगी। उदास बिल्कुल न होना। ईश्वर करेगा तो सब ठीक हो जायेगा।'

'दीदी को रोने के अतिरिक्त कोई कार्य ही नहीं रहा।' सरो बोली।

'पगली है, क्या दुर्बलता प्रदर्शित करने से मनुष्य स्थितियों पर विजय पा सकता है। फिर सुख-दुख का संग शाश्वत हैं। जीवन में इनकी क्रीड़ा चलती ही है। देखो पन्त जी ने लिखा है—

अविरल सुख है उत्पीड़न,
अविरल दुख है उत्पीड़न।

'दीदी आज कल कविता की ओर रुझान दीखता है।' साधना ने कहा। दुख में भी मुस्कान उसके क्षण मुख पर खेल गई थी।

'हां साध मुझे स्मरण हो आया, तू कविता लिखती है न आजकल जितने भाव हृदय को पीड़ित करें सब को लेखनी की नोक पर उतार दिया कर समझी। हृदय बिल्कुल हल्का हो जायगा।'

'ब्याह के बाद कभी लिखा ही नहीं दीदी किन्तु अब शायद लिखना ही पड़ेगा नहीं तो पागल हो जाऊंगी।'

नन्हा शिशु जाग पड़ा था। सरिता उसे ले आई। उसकी दो नन्हीं दंतिया चमक रही थीं। माधवी ने लेकर उसे चूम लिया कहा, 'बड़ा प्यारा है साधा। रंग तो बिल्कुल तुम्हें पड़ा है। हां नाक रंजीत जैसी है।

'अभागा है दीदी।'

'ऐसा न कह साध, तेरे शून्य जीवन का एक मात्र अवलम्ब यही होगा जैसे यशोधरा का राहुल था। इसके लिये यह पुनः कभी न कहना। तेरे उजड़े उपवन में यही कोयल बन कुहुकेगा।

'अच्छा दीदी।'

पप्पु साधना की ओर जाने का उपक्रम करने लगा। माधवी ने जकड़ते हुये कहा, 'मां को पहचानता है दुष्ट अभी से।' और उसने उसे साधना की गोद में दे दिया।

'अब चलूं।' माधवी ने जाने की आज्ञा चाही।

'जल्दी क्या है बेटी ?' सावित्री देवी ने टोका।

'आज कल अकेली नहीं हूं।'

'कौन आगया है दीदी ?'

'माधवी अपने मकरन्द को ढूंढ लाई है साधना।'

'मकरन्द।' आश्चर्यांचित हो साधना बोली। फिर हर्ष से कहा, 'दीदी तुम्हें बधाई हो।'

'बधाई तो स्वीकार है। किन्तु वे मुझे पहचानते नहीं हैं।

'पहचानते नहीं हैं ?'

'हां साधना, उनके तीन ही काम हैं। घूमना, रेडियो सुनना और सोना। खाने का समय कोई खिलादे तो खा लिया नहीं तो परवाह नहीं। मैं कई बार अतीत की चर्चा छेड़ती हूं पर सुनते रहते हैं मूक भाव से। यन्त्र चालित सा जीवन चलता है उनका।

'दीदी तब तो तुम्हें कठिनाई होती होगी ?'

'कठिनाई, नहीं साध मुझे शान्ति मिलती है एक प्रकार की। मस्तिष्क हर समय सोचता है कि घर में कोई है जिसकी देख-रेख की उत्तर दायी मैं हूं।'

माधवी के जाने पर साधना बच्चे को लेकर दुलराने लगी। वह जब उसके अंक में आ जाता है वह अपने को विस्मृत कर जाती है। उसका मातृत्व एक सन्तोष अनुभव करता है। वह उसके अवलम्ब पर समस्त जीवन काट सकती है। उसने सोचा।

३०

साधना को एक प्राइवेट स्कूल में काम मिल गया। वेतन तो थोड़ा ही था, केवल सत्तर रुपये। किन्तु माधवी ने सलाह दी थी कि वह आगे अपनी पढ़ाई आरम्भ कर ले क्योंकि बी० ए० कर लेने पर उसका स्तर भी उन्नत हो जायेगा और वेतन भी बढ़ जायेगा। जब जीवन में ऐसे दुर्दिन आ ही पड़े हैं तो फिर व्यर्थ भावुकता में आ कर रोने में दिन नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं हो सकती थी। बी०.ए०. के पश्चात कोई प्रशिक्षक ले लेने से फिर जीवन-नौका निश्चित धारा में बहने लगेगी। साधना स्कूल जाने लगी। परन्तु सावित्री देवी सदा खीझी-खीझी रहतीं। बच्चे को भी सम्भालना पड़ता घर का काम भी करना पड़ता। शाम को तो साधना और सरो सम्भाल लेती थीं। साधना कुछ नहीं बोलती। उसने अपनी पढ़ाई भी शुरु कर ली थी। कभी-कभी मां की खीझ भरी बातें सुन कर खिन्न हो उठती। पड़ोस की स्त्रियां सावित्री देवी के पास प्रायः आ बैठती थीं। साधारणतया स्त्रियों को इधर-उधर की बातें करने का स्वभाव भी होता है। एक ने दूसरी

की चुगली खाते हुये कहा, 'फलां कहती थी कि साधना के पति ने उसे घर से निकाल दिया है।'

सावित्री देवी सुनकर जल भुन गई। कहा, 'लोगों को जाने क्यों आग लग जाती है तनिक सी बात पर, क्या लोगों की बेटियां दो चार मास मायके नहीं रहतीं!'

'किन्तु वह तो नौकरी करने लगी हैं।'

'हां करती है और हजार बार करेगी।'

कुपित सी होकर पड़ोसिन चली गई। सावित्री देवी बड़ बड़ाती हुई भाग्य को दोष देने लगीं। साधना कोई पुस्तक पढ़ रही थी पुस्तक फेंक दी। अक्षर घूमते हुए लगने लगे। अभी तो आये केवल दो मास हुए हैं और अभी से चर्चा होने लगी। यह संसार व्यर्थ ही दूसरों के कार्य में टांग अड़ाता है। कोई सुखी रहे दुखी रहे, किसी को क्या? किन्तु दूसरों की बातें किये बिना जग को चैन कहां? बातें भी तो एक की दो और दो की चार बनती हैं। बाहर आकर पूछा, 'क्या बात है माँ?'

'उबल कर मां बोली, 'तेरे लिये ही तो सारी बातें मुझे सुननी पड़नी हैं। न तू यह कदम उठाती न यह नौबत आती। सब की लड़कियां ससुराल रहती हैं, जैसी भी दशा हो वैसी रहती है। कोई मायके उठ कर नहीं भाग आती। पड़ोस की लीला का पति कितना शराबी, कबाबी है किन्तु वहीं रहती है। अब चार बच्चों की मां है। मां-बाप की जान खाने तो नहीं आई।'

साधना की वाणी मूक रह गई। मां क्या सचमुच चाहती है कि 'वह' वहीं पर पति की ठोकरें सहती रहे। उसका

पढ़ा लिखा किस कार्य आयेगा यदि वह अपमान के प्रतिरोध में खड़ी न रह सकी। साहस कर माँ को समझाते हुए कहा, 'मां, लीला और मुझमें कितना अन्तर है।'

'जानती हूं लीला वह अढाई अक्षर नहीं पढ़ी जो तू पढ़ गई है।'

सावित्री देवी मानसिक क्षोभ से जल रही थी। अपने दुख के सम्मुख उन्हें ध्यान ही न हुआ कि साधना पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हो सकती है। खून के घूंट पीती हुई वह फिर माँ की दृष्टि से ओझल हो गयी। अश्रुओं ने नयनों की कारा तोड़नी चाही किन्तु साधना ने अब खड़े होने का निश्चय कर लिया था। मन को झिड़क कर कहा—देख और दुर्बलता मत दिखा, बहुत हो चुकी अब कठोर हो जा और चट्टानें भी तुझ से टकरा कर चूर हो जायें। निकट ही पप्पू हाथ पांव, पटक कर केलिया कर रहा था। साधना मुग्ध भाव से उसके साथ लेट गई और कस कर हृदय से लगा लिया।

जैसे ही मंगल का प्रसाद चढ़ाने सावित्री देवी पास के मन्दिर में गई कि साधना ने अपने साधारण से सामान को उठाया और माधवी के यहां जा पहुंची। मकरन्द कुर्सी पर बैठा रेडियो सुन रहा था। उसने शुष्क दृष्टि से साधना की ओर देखा फिर वैसे ही निर्द्वन्द भाव से बैठा रहा। भीतर से आती हुई माधवी ने पूछा, 'यह क्या बहिन ?'

'दीदी तुम्हारे नारी मन्दिर में अनेक निराश्रय, अनाथ बहनों को स्थान मिलता है मुझे भी दे दो।'

'किन्तु घर ?'

'घर अब नहीं रहुंगी। माता-पिता को मेरे अर्थ लांछना

सहनी पड़े यह मेरे लिये असह्य है । तुम वहीं मेरा प्रबन्ध करदो दीदी ।'

'साधना, मेरे घर में बहुत स्थान है तेरे लिये ।'

'न दीदी, अब हीन भाव और न बढ़ने दो । मैं वहीं रह कर चैन पाऊँगी ।'

'तब तेरी जो इच्छा हो बहिन ।'

माधवी साधना को नारी मन्दिर छोड़ आई । एक स्वच्छ कक्ष में रहने की सुव्यवस्था कर दी तथा एक स्त्री जानकी को उसका काम करने के लिये कह दिया । माधवी ने वहां के भोजनालय का समस्त प्रबन्ध उसके हाथों में दे दिया । प्रातः वह पढ़ाने चली जाया करेगी और शाम को तो कोई व्यस्तता होनी चाहिए नहीं तो उसका रिक्त मस्तिष्क केवल सोचा ही करेगा और ऐसी अवस्था में सोचना श्रेयस्कर नहीं ।

उधर जब मन्दिर से लौट कर सावित्री देवी आई तो विस्मित रह गई । साधना और बच्चा दोनों ही नहीं थे । सरो ऊपर पढ़ रही थी । नीला और परितोष बाहर खेलने गये थे चिल्ला कर सावित्री देवी ने पुकारा, सरो ! सरो ! ! साधना कहां है ? सरो भागती आई ऊपर से । घर कोई इतना बड़ा तो था ही नहीं जो वह कहीं लोप हो जाती । खोजा तो साधना के वस्त्र भी गायब । अब तो सावित्री देवी भयभीत हो स्वयं को ही दोष देने लगी । हाय ! मेंने क्यों ऐसे कुशब्द कहे । वह तो आरम्भ से ही स्वाभिमानिनी थी । यदि कहीं डूब कर मर गई तो..... हे मेरे राम ! इस कल्पना ने उसे थर्रा दिया । वह माँ थी ऊपर से कटु वचन कह कर भी जो हृदय से कभी सन्तान का अहित नही सोचती ।

'मां माधवी दीदी से पता किया जाए ।'

'किसे भेजुं, तेरे पिता जी भी तो लौट कर नहीं आये ।' पीछे से रामनाथ बोले, 'अभी बहुत रात तो नहीं हुई सावित्री, घबराई हुई क्यों
हो ?'

'साधना पप्पु सहित न जाने कहां चली गई है ?'

'चली गई, मै पहले ही जानता था तुम मेरी बेटी को टिकने न दोगी ।' राम नाथ जैसे पागल होकर बोले ।

'जिस दिन से आई थी उसी दिन से व्यंग्य विद्रूपों से उसे छलनी कर रही थी तुम ।'

व्यथित हो सावित्री देवी बोलीं, 'अच्छा मैं उसकी शत्रु ही सही अब लड़ने का समय कहां है । माधवी के घर से पता करो शायद उसी के पास गई हो ।

'पत्र, दीदी का पत्र ।' सरिता चीखी । साधना के सिरहाने के नीचे एक पत्र था ।

'सरिता तू ही पढ़ दे मेरी तो हिम्मत नहीं पड़ती ।' पिता ने कहा, सरितापढ़ने लगी—

मां ,

मैं जा रही हूं नारी मन्दिर ।

मेरे लिये सारा परिवार इतना दुख और क्लेश सहे यह मैं नहीं देख सकती । फिर पास-पड़ोस वालों के विद्रूप और व्यंग्य, कटूक्तियां सभी आप को सुननी पड़ती हैं केवल मेरे लिए । इसलिये मैंने निश्चय किया कि नारी मन्दिर में रहुंगी । जहां मेरे जैसी अनेक निराश्रिता बहनें रहती हैं । मुझे आपके प्रति कोई क्षोभ नहीं, शिकायत नहीं, फिर इसलिये आप किसी प्रकार का दुर्भाव हृदय में न लायें । न ही मेरे लिये किसी प्रकरा

कोचिन्ता करें। मैं यहां प्रसन्न रहुँगी। अपने ही जैसी शोषिता एवं पीड़िता बहिनों की देख कर मेरा मन शान्ति लाभ करेगा। मैं पुनः प्रार्थना करूंगी कि मेरे विषय में अधिक चिन्ता न करें और न मुझे घर लौटाने की चेष्टा ही करें।

आपकी साध

पत्र सुन कर राम नाथ खूब रोये। आज अपनी विवशता और विपन्नता पर उन्हें जी भर कर दुख हुआ। तभी किसी ने कहा है कि माता-पिता तो केवल जन्म दाता होते हैं, भाग्य विधाता नहीं होते। उनकी साधना जैसी सुन्दर व सुशील कन्या कितना दुख सह रही है। लड़की सुखी हो तो माता-पिता सुखी होते हैं। सावित्री देवी ने पति को समझाते हुये कहा, 'इतना दुख न करिये, मैं सुबह ही उसे घर ले आऊंगी

रामनाथ उसी पर बरस पड़े। बोले, 'तुम्हारी तो जिह्वा वश में नहीं रहती। लाख बार समझाया कि शिक्षित लड़कियों से और ढंग से व्यवहार करना चाहिये। तुम तो सब को एक ही लाठी से हांकती हो।'

'मैंने तो कुछ भी नहीं कहा, साथ की पड़ौसन की दो बातें सुन कर मुझे क्षोभ हो आया। दो शब्द कह ही दिये तो क्या अन्धेर हो गया।'

'अन्धेर।' फिर जैसे अपने से कहा 'इसका दोष भी नहीं। यह स्त्रियां यह समझती नहीं कि सिर झुका कर लात खाने के दिन गये।'

सावित्री देवी मुंह फुला कर भीतर जा बैठीं। वातावरण अतीव विक्षोभ पूर्ण हो गया था। उस दिन खाना वैसे ही पड़ा रहा। सरिता ने नीला और परितोष को खिला दिया शेष

तीनों निराहार रहे। रामनाथ भी वस्त्र बदल कर बिस्त्र पर जा पड़े।

अगली प्रातः ही रामनाथ व सावित्री देवी नारी मन्दिर में गये। बाहर ही जानकी पप्पु को टहला रही थी। सावित्री देवी ने लपक कर दौहित्र को लेकर वक्ष से लगा लिया। बाबू राम नाथ ने पूछा, साधन कहां है ?'

'बहिन जी भीतर हैं, विद्यालय के लिये तैयार हो रही हैं। आपको भीतर ले चलुं ?'

'चलो'

साधना तैयार हो रही थी। बिना दर्पण के ही कंघी कर रही थी। कल ही तो यहां आई थी और अभी ठीक से टिक भी न पाई थी। फिर इन दिनों उसे इन प्रसाधन उपकरणों के प्रति कुछ विरक्ति भी हो गई थी। उसने अपने रहन-सहन, वस्त्र इत्यादि पर ध्यान देना ही छोड़ दिया था। माता-पिता को देख कर उसने कंघी छोड़ दी। लम्बी केश राशि पीठ पर लहरा रही थी। भाव विह्वल होकर राम नाथ ने उसे कहा, 'तू घर क्यों छोड़ कर चली आई बेटी ?'

साधना कोई उत्तर दे—इसके पूर्व ही सावित्री देवी बोली, 'मां की बात का भी बुरा मानता है कोई।'

'मां, मैंने बुरा नहीं मनाया। सच मानो। किन्तु अब घर नहीं जाऊंगी।'

'क्यों ?'

'यह तो मुझे पहले ही सोच लेना चाहिये था। मेरे लिये घर नहीं आश्रम ही ठीक था।'

सावित्री देवी के हृदय को तीक्षण छुरी से कोई कुरेद

रहा था। तड़प कर कहा, 'तुझे घर चलना ही होगा, नहीं तो यहीं धरना देकर बैठ जाऊंगी।'

'कैसी बात करती हो माँ, घर में छोटे बच्चे हैं। तुम्हें मेरी शपथ, मैं किसी से अप्रसन्न नहीं हूं। मैं तो केवल परीक्षण करना चाहती हूं कि भाग्य कितना सता सकता है मुझे।'

माता-पिता ने बहुत समझाया किन्तु साधना पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपनी बात पर अटल रही। हार कर रामनाथ पत्नी सहित लौट गये परन्तु यह वचन लेकर कि वह सप्ताह में दो बार घर अवश्य आया करेगी, भाई-बहिनों को देखने के लिये; और साधना ने यह स्वीकार कर लिया।

३१

सूर्य की रश्मियां आकर श्रीकान्त के कुन्तलों से खेलने लगीं थी और वह अभी तक सो रहा था। चौंके में खट खट की ध्वनि आ रही थी शायद मां कुछ कूट रही थीं। वहीं से उन्होंने पुकारा, 'श्रीकान्त उठ! तो बेटा, आठ बज रहे हैं।'

'मां आज छुट्टी है।' कक्ष में सोये सोये ही श्रीकान्त ने उत्तर दिया।

'उठते हो कि नहीं भय्या, हम लोग घर से तैयार होकर आ गये और यह अभी तान लगाये हैं।'

नेत्र मलते हुए अगड़ाई लेकर श्रीकान्त उठ बैठा और सामने बहिन बहनोई को देख कर मुस्कराने लगा। डा॰

गुप्ता ने हंस कर कहा, 'देखा रेखा, यह मजे हैं न कुंआरे रहने के। एक तुम हो प्रातः ही मुझे नहाने धोने का हुक्म दे देती हो।'

तभी सरला देवी ने आकर बेटी और जमाता की वन्दना स्वीकार की और कहा, 'रमेश कोई अच्छी सी लड़की देखकर इसका ब्याह क्यों नहीं कर देते।'

'माँ को ब्याह के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं।' कहकर श्रीकान्त तौलिया उठाकर नित्य कर्म आदि के लिये भाग गया।

'हम लोग आज पिकनिक के लिये जा रहे हैं मां।' रेखा ने कहा।

'किधर ?

'जिधर भी चल पड़ें। हमें तो केवल इतवार को ही छुट्टी होती है। न कोई तीज न त्योहार, डाक्टर के लिये कोई छुट्टा नहीं। अतः इतवार आते ही घर रहने का मन नहीं होता।

'ठीक कहते हो बेटा, वैसे भी परिवर्तन मानसिक स्वस्थ्य के लिये अच्छा होता है।'

'किन्तु मां जी आप तो सदैव इसी घर में जुटी रहती हैं।'

'अवस्था भी होती है न रमेश, मेरे परिवर्तन और ढंग के होते हैं। रसोई छोड़कर तुम से बातें करती हूं यह भी परिवर्तन है, कभी पूजा गृह में चली जाती हूं, कभी सत्संग में; यह सब परिवर्तन ही तो है।

आधे घण्टे में श्रीकान्त नहा धोकर तैयार हो गया। इस बीच उनके प्रातःराश के लिये सरला देवी ने पूरियाँ आलू और हलुआ तैयार कर लिया था।

प्रात: राश के पश्चात अब संगी साथियों का चुनाव हुआ। डा. गुप्ता ने एक मित्र का नाम लिया उसका विवाह हुए भी अभी एक मास ही हुआ था। रेखा ने माधवी का नाम सामने रखा। बस छ: ही काफी हैं नहीं तो धमा–चौकड़ी सी हो जाती है कुछ भी आनन्द नहीं आता। डा. गुप्ता उस मित्र को बुलाने चले, वह भी डाक्टर था किन्तु पंजाबी नहीं था। गुजरात या विहार का रहने वाला था। नाम था डा. झा। उनका विवाह पंजाबी लड़की से हुआ था। रेखा और श्रीकान्त माधवी के यहाँ जा पहुंचे। अकस्मात उस दिन साधना भी आई थी। रेखा को उसके वहां होने का कतई ज्ञान न था। विवाह के पश्चात से वह दस–पन्द्रह दिन तक माधवी से मिल ही नहीं पाती थी।

साधना के मुख पर छाई निराशा और अवसाद की रेखा देखी। स्नेह से पूछा, 'साधना कब से यहां हो?'

'जब तुमने देख लिया रेखा।'

माधवी ने संकेत से रोक दिया कि इस विषय में और न पूछे। विषय परिवर्तन करते हुए रेखा ने कहा, 'दीदी आज पिकनिक पर चलो।'

श्रीकान्त बाहर मकरन्द के पास था। कभी कभी श्रीकान्त उससे अतीत की बातें करता था शायद उसकी चेतना लौट आये।

'क्या आवश्यक है रेखा? कौन कौन चल रहे हैं?'

'साध भी चलेगी। और भी कुछ लोग हैं दीदी तुम न नहीं कर सकोगी।

माधवी कई दिनों से बाहर नहीं गई थी। बस नारी मन्दिर और घर। इस परिचित वातावरण से वह सचमुच

कुछ समय के लिये मुक्ति चाहती थी किन्तु साधना जो बैठी थी। माधवी असमंजस में पड़ी थी कि साधना बोल उठी, 'रेखा बहिन, तुम माधवी दीदी को अवश्य ले जाओ पर मैं नहीं जा सकुंगी। बच्चे के साथ कैसे जा सकती हूं।'

कह कर साधना चली गई। माधवी के मुख से साधना के जीवन की दुखान्त की सुन कर रेखा वास्तव में दुखी हुई। जिन्हें मनुष्य प्यार करता है उसके दुख से उसे अवश्य दुख होता है।

माधवी तैयारी करने लगी। रेखा ने कहा, 'टोकरी में आलू और पूरियां हम मां से डलवा लाये हैं और घर से मैं मट्ठियां और दाल के लड्डु लाई हूं। सांझ को लौटेंगे। दीदी तुम क्या ले जाओगी।'

'मेरे पास तो नारियल की बर्फी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रेखा।'

'बहुत स्वादिष्ट होती है दीदी, डाक्टर साहब खूब पसन्द करते हैं।

कुछ न कुछ डा. झा भी ले आयेंगे। हां! स्टोव और केतली इत्यादि तुम ले चलो।'

तो यह बड़ी काश्मीरी टोकरी ले लो। मैं वस्तुएं लाये देती हूं, तुम ढंग से रखती जाओ।'

'अच्छा दीदी।'

माधवी सामान जुटाती रही और रेखा रखती गई।

डा. गुप्ता ने बाहर से ही पुकारा, 'अरे अभी तक तैयारी नहीं हुई क्या?'

नहीं, दस पन्द्रह मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।' रेखा ने आकर कहा।

'बिल्कुल झूठ डा० साहब, यहाँ बिल्कुल तैयारी है। माधवी भी बाहर निकल आई।

''क्या निश्चय हुआ जाने का ?'

'मेरी मानिये रमेश जी तो किसी गांव में चलिये, जहां विशाल वटवृक्ष के तले कहीं कुआं हो। छाया के साथ जलकणों से लदी शीतल पवन हो। चतुर्दिक प्रकृति के मुक्त दर्शन हो।

'भाई तुम अपनी साहित्यिकता फिर छांटने लगे।' डा. गुप्ता ने कहा।

'मेरी भी यही राय है डा साहब। चलिये मैं आपको अत्यन्त सुन्दर गांव में ले चलती हूं।'

सर्व सम्मति से यही प्रस्ताव पास हो गया। दो मील तक रिक्शा पर गये फिर आगे पैदल। ऊंची-नीची पगडन्डियों पर चलते हुए डा० गुप्ता और उनके मित्र खीझ रहे थे। विशेष कर डा० झा की पत्नी ने ऊंची ऐड़ी की सैंडल पहन रखी थी। उन्हें गिरने का डर था, कभी ऐसी उबड़ खाबड़ राह पर चली नहीं थीं। परन्तु निश्चित स्थान पर पहुंच कर सब जैसे भूल गया। नीचे रहट वाला कुंआ था ऊपर छाया का विस्तृत वितान बनाता वट वृक्ष। हरे हरे पत्ते झूम रहे थे। कुछ नन्हीं नन्हीं लाल कोंपले अतीव मन लुभावनी थी। उनका वर्ण सचमुच शब्दों में बांधा नहीं जा सकता था। श्रीकान्त ने कहा, 'केवल प्राणियों के ही नहीं अद्रिजों के शिशु भी कितने आकर्षक होते हैं।'

कुंए के मालिक से आज्ञा लेकर एक किनारे पर दरी बिछा दी गई और मन्डली जम गई। रहट चल रहा था। बैलों की जोड़ी अत्यन्त पुष्ट और सुन्दर थी। एक छोटा दस-बारह वर्ष का बालक टाट की गद्दी पर बैठा उन्हें हांक रहा था।

पानी इतना निर्मल और उज्जवल जैसे दूध की फेन हो।

'बड़ी सुन्दर जगह है माधवी दीदी, पहले भी कभी आई हैं इस गांव में ?'

'हां, नारी मन्दिर में यहीं की एक स्त्री रहती थी, वह लाई थी। यह शायद उसी के पति का कुआं है।'

इतने में कुंए का स्वामी आ गया। उसने आते ही माधवी दीदी को पहचान लिया। कहा, 'आज तो हमारा गांव धन्य हो गया देवी जी, जो आपके पवित्र चरण इस भूमि पर पड़े हैं।'

'तुमने मुझे पहचान लिया ?'

'आपको नहीं पहचानुगां, अपनी जीवन दाता को। कहिये क्या सेवा करूं ?'

'हम शाम तक यहां ठहरेंगे बस।'

'अहो भाग्य, यहां गांव में आपके लायक क्या होगा, किन्तु घर की भैंस का माखन और दहीं तो होगा। लाता हूं।'

और वह लौटते पैर ही चला गया। डा० झा बोले, 'गांव वालों में आव भगत की मात्रा शहरियों की अपेक्षा अधिक होती है क्यों गुप्ता ?'

रेखा खाद्य सामग्री की टोकरी खोल रही थी। माधवी उन्हें लेकर रख रही थी। एकाएक रेखा के मुख से 'ओह' निकला।

'क्या बात है ?' श्रीकान्त पास आ गया।

'प्लेटें तो वहीं रह गईं। अब किस में खायेंगे ?'

'तो क्या हुआ, वट वृक्ष के पत्ते तोड़ कर अभी पत्तल बन सकती हैं।'

'कौन बनायेगा ?'

'मैं तुम तिनके तो बीन लाओ ।

श्रीकान्त उछल-उछल कर पत्ते तोड़ने लगा और रेखा तिनके बीनने चली। माधवी ने डा० गुप्ता को पुकारा, 'आप भी जाइये न डाक्टर साहब, रेखा की सहायता कीजिये न ?'

'ऐसा भी क्या बड़ा काम है माधवी दीदी, फिर स्त्रियां तो आजकल मर्दों के सभी कार्य सम्भाल रही हैं।'

'तो आप स्त्रियों के काम सम्भाल लेंगे; तो आइये भोजन परोसने का कार्य आपके जिम्मे।'

'तो क्या मैं परोस नहीं सकूंगा, आप हट तो जाइये।'

और माधवी सच ही हट गई। श्रीकान्त ने ढेर सारे पत्ते एकत्रित कर लिये, रेखा तिनके बीन लाई। चार चार पत्ते जोड़ कर श्रीकान्त ने बड़े सुन्दर पत्तल बना लिये, फिर धोकर उन्हें साफ कर लिया। सबके लिये अलग अलग पत्तल बिछा दी गई। डा० गुप्ता भी कमीज की बाहें चढ़ा कर परोसने बैठे। रेखा माधवी और पति की बात चीत से अनभिज्ञ थी। उठकर बोली 'उठिये मैं परोस दूं।"

'नहीं रहने दो रेखा, आज इनकी परीक्षा होगी।'

'अच्छा तो भोजन आरम्भ किया जाये भूख खूब लग आई है।'

'किन्तु माखन और दही ?' डा० झा की पत्नी बोली।

इतने में दही और माखन आगया, साफ स्वच्छ कटोरों में। देखते ही सब के मन खिल गये।

हंसी खुशी की बातों में भोजन समाप्त हुआ। जूठी पत्तलें उठा कर एक ओर फैंक दी गई। अब उनकी सुविधा ज्ञात हुई। प्लेटें होती तो धोने का कष्ट करना पड़ता। खा पीकर ताश चलने लगी। अब ताश तो एक ही थी। निर्णय

हुआ कि 'भाबी' का खेल खेला जाये। अन्त में जो भाबी बने कल उसी के घर शाम की चाय पी जाये। तीन चार बजे तक ताश चलती रही। सर्वान्त में श्रीकान्त भाबी बन गया। खिलखिलाहट से ग्राम का वातावरण भरपूर हो गया। डा० गुप्ता ने पत्नी से कहा, 'लो तुम्हारे भय्या भाबी लाने से तो रहे स्वयं भाबी बन गये।'

फिर चाय का आयोजन हुआ। इसके उपरान्त कुंए के स्वामी ने आकर कहा, 'देवी जी घर में चरण-रज देकर जाइयेगा।'

'हां! हां! तुम्हारी पत्नी से मिल कर जाऊँगी।'

'यह तो आपकी पूजा करता है माधवी दीदी। श्रीकान्त ने कहा।

'यही तो इनकी सरलता है श्रीकान्त भाई। यह असल में अतिशय मद्य पान करता था। इसकी पत्नी बेचारी अत्यन्त भलीमानस है; इसके दुर्व्यवहार से तंग आकर घर छोड़ दिया था। जिस दिन नारी मन्दिर में प्रविष्ट हुई थी वह, शरीर पर बड़े-बड़े नील के दाग थे, इतना मारता था। किन्तु एक वर्ष पश्चात ही इतना बीमार हुआ कि डाक्टरों ने जीवन की आशा ही त्याग दी थी। यह इसकी पत्नी की सेवा थी जिसने इसे नवजीवन दान दिया। जैसे ही उसे ज्ञात हुआ कि पति की अवस्था शोचनीय है, अगली पिछली शिकायतें छोड़कर भागी आई। भारतीय नारी की निष्काम भावना मैं तो उसी दिन देख सकी।

'देवी जी सत्य कहती हैं बाबू जी, मेरी पत्नी साक्षात देवी निकली।'

'अब भी मारते हो ?'

'शिव ! शिव ! वह तो नशे में मारता था बाबूजी ।' कुआ काफी चल चुका था। वह बैल खोल कर ले गया और बच्चे को वहीं छोड़ गया ताकि घर का पथ प्रदर्शन कर सके।

केवल माधवी और रेखा ही उसके घर गईं। घर क्या था स्वच्छता का नमूना था। कच्ची मिट्टी का था अधिक, पक्की ईंट के कमरे तो दो ही थे। किन्तु लिपाई-पुताई अत्यन्त सुन्दर थी। श्वेत मिट्टी से लिपे स्थान पर पीले या रंग बिरंगे बेल बूटे बने थे जो ग्रामीणों की कलात्मक रुचि का परिचय देते थे। चलते समय उन लोगों को हरी सब्ज़ी की एक टोकरी उपहार स्वरूप दी गई। भला गांव में और क्या हो सकता था ? उस दिवस का आनन्दमय अमिट छाप लेकर वे लौट रहे थे। किन्तु श्रान्त भी हो चुके थे। अबकि बार रिक्शा के लिये अधिक यत्न करना पड़ा। पक्की सड़क पर लगभग आध मील चलने के उपरान्त रिक्शा मिलीं, वह भी दो। दोनों डाक्टर पत्नियों व सामान सहित उन में चढ़ा दिये गये। रह गये माधवी और श्रीकान्त, वे रिक्शा की प्रतीक्षा करने लगे। दस-पन्द्रह मिन्ट बीते होंगे कि रिक्शा आ गई। दोनों चढ़े और चढ़ते ही माधवी बोली, 'इस की रिक्शा भी एकदम उड़न खटोला है श्रीकान्त भाई।'

'कितने साल हो गये चलाते कभी मुरम्मत नहीं करवाई।'

'देखने में पुरानी लगती है साहब, पुर्जे इत्यादि सब ठीक हैं।'

चर्र, चर्र और खर् खर् करती रिक्शा चलने लगी।

'साधना के जीवन पर मुझे तो तरस आता है श्रीकान्त जी, इतनी प्रतिभाशालिनी लड़की का क्या भविष्य हुआ !' माधवी बोली।

श्रीकान्त जैसे सोते से चौंक उठा। बात का उत्तर देने की सोचने लगा। वाह्य अपेक्षा से उसने कहा, 'दीदी हमारे समाज में लड़कियों की प्रतिभा और गुण की अभी कम ही कदर होती है।'

पर भीतर से उसे कुछ चुभ रहा था। साधना को कितना शौक था लिखने का किन्तु अब सब मर गया होगा। पूछूंगा किसी दिन कि अब लिखती है कि नहीं। अपने मासिक के लिये उसने अर्थ व्यवस्था कर ली थी और वह अगामी मास उसका मुहूर्त करना चाहता था। कि माधवी बोल उठी—

'एक बात मेरे मन में आती है श्रीकान्त भाई।'

'क्या ?'

'यही कि यदि तुम जैसे साहित्यिक व्यक्ति के साथ साधना का विवाह हो जाता तो उसके जीवन की रूप रेखा ही बदल जाती।'

क्या हो गया है माधवी को। ऐसी असामाजिक बात कहते माधवी की जिह्वा क्यों नहीं रुकी। सम्भल कर बोला, 'यदि का प्रश्न नहीं दीदी, जो हो ही नहीं सकता था उसके लिये व्यर्थ चिन्तन क्यों ?'

'चिन्तन नहीं, यों ही मन में आगया।'

'साधना का निर्वाह कैसे होता है ?'

'बताया तो था कि विद्यालय में नौकरी करती है। छोटा बच्चा है कितनी कठिनाई है। मैं तो उसकी ओर से उसके पति पर खर्चनामें का दावा करने वाली हूं।'

'अवश्य करना चाहिये।'

तभी जैसे भूकम्प आ गया। एक लम्बी चीख के साथ माधवी झाड़ियों में जा गिरी और श्रीकान्त सड़क पर। रिक्शा

का पहिया उतर गया था और रिक्शा वाला घबराया सा खड़ा था। रिक्शा औंधो पड़ी थो। श्रीकान्त ने भाग कर माधवो को उठाया। उसको एक टांग बिल्कुल नहीं चल रही थी। जिस टांग की ओर वह गिरो थी उस में काफी चोट आई थी। झाड़ियों में गिरने से ज़ख्म भी हो गये थे। रिक्शा वाला भय से विवर्ण हो रहा था। उसका दोष भी क्या था, उस गरीब की एक मात्र पूंजो रिक्शा ही टूटी पड़ी थी। उसे तो उसकी मुरम्मत की ही सोच पड़ी थो। सहारा लेकर माधवी उठी परन्तु हाय, हाय, कर उठो। श्रीकान्त ने उसका एक हाथ कन्धे की ओर ले जाते हुये कहा, 'अपना पूरा बोझ मेरे ऊपर डाल दोजिये दोदी।'

माधवी ने वैसा ही किया। इस निर्जन स्थान में दूसरी रिक्शा न जाने कब मिले। इस चिन्ता में माधवो ने कहा, 'कैसे पहुंचेंगे ?'

'अपा चिन्ता न कीजिये, आपके भाई में आपको भुजाओं में उठाकर ले जाने की शक्ति है।' किन्तु कुछ क्षणोपरान्त ही रिक्शा मिल गई।

रेखा इत्यादि सब इनको प्रतीक्षा में घबरा रहे थे। आते ही रिक्शा घेर कर खड़े हो गये। माधवी का रंग पीला हो गया था और सलवार पर खून के छींटे थे। डा० गुप्ता ने पूछा, 'क्या हो गया ?'

'एक्सीडेन्ट।'

घर लेजा कर माधवी की मरहम पट्टी की गई। श्रीकान्त उस रात माधवी के निकट रहा। माधवी ने रोकना चाहा तो बोला, 'चुप रहिये दोदी, जब भाई कहा है तो भाई के अधिकार को स्वीकार करना ही होगा।'

अगले दिन श्रीकान्त को कॉलेज जाना था। वह एक स्थानीय कॉलेज में प्रशिक्षक हो गया था। इसलिये माधवी ने साधना को बुला लिया था। विद्यालय से आठ दिन का अवकाश उसने ले लिया था। भला माधवी पर संकट आये और साधना सहायता न करे। कैसे सम्भव हो सकता था? आठ दिन तक माधवी चारपाई से हिल तक न सकी। साधना ही सब काम काज देखती। समय पर उसकी चोटों को सेंकती, उसके वस्त्र बदलवाती और मकरन्द को देखती। मकरन्द एक दो बार आया भी किन्तु दूर से ही देख कर चला गया विना कोई भाव प्रदर्शित किये। माधवी दीर्घ श्वास लेकर रह जाती। अब माधवी छड़ी का सहारा लेकर कुर्सी पर बैठने लगी। जिस दिन माधवी उठी साधना ने उसी दिन रोटियां पकवा कर गरीबों में बंटवाई।

'तू तो एक दम बूढ़ी बन गई है साध।' माधवी ने स्नेह से कहा। 'दीदी जाने कौन सा ग्रह तुम पर कुपित था। शुक्र है भगवान का तुम बच गई। मैं तो रात दिन तुम्हारे लिये प्रार्थना करती थी।'

'पप्पु कहां है ?'

'सोया पड़ा है, अब तो शैतान हो चला है।'

उठे तो मेरे पास लाना बहिन।'

'मैं देख आऊं, रसोई में क्या बन रहा है।'

साधना चली गई। माधवी देखती रही उसकी पीठ पर पड़ी सुन्दर वेणी को। मकरन्द धीरे से आकर पास वाली कुर्सी पर बैठ गया। माधवी ने चाहा कि वह उससे पूछे—कैसा हो माधवी ?

किन्तु मकरन्द केवल मुस्कराता रहा, मुस्कराता रहा। उसकी यह मुस्कान किसी समय माधवी को बहुत अच्छी लगती थी। आज भी लगती है पर वह उसके जीवन का आश्रय नहीं बन सकती। माधवी के नेत्र कोर जलकणों से पूरित हो उठे।

३२

'आज मेरे पत्र का मुहूर्त है साधना जी। आप कुछ लिख कर देंगी ?' माधवी के निकट बैठी साधना को लक्ष्य करके श्रीकान्त ने कहा। सुन कर साधना कुछ संकुचित हो गई। वह पप्पु का स्वैटर बुन रही थी। यन्त्र चालित उंगलियां सिलाइयों से खेलती रहो। उत्तर न पा कर श्रीकान्त ने कहा, 'क्या उत्तर की आशा न रखी जाये ?'

अब साधना की बोली खुली। कहा, 'चिरकाल से कुछ लिखा नहीं श्रीकान्त जी।'

'क्यों ?'

'क्यों, यह शब्द साधना को चुभा। यह पुरुष क्या नारी की विवशता को समझ नहीं पाते। लड़कियों के लिये साहित्य –साधना आवश्यक नहीं हो सकती। उसे स्मरण हो आया कि ब्याह के पश्चात जब रंजीत ने उसकी कापी देखी तो व्यंग से कहा था, 'अच्छा यह पागल पन का रोग तुम्हें भी है।'

'पागलपन।' आश्चर्य से पति की ओर देख कर उसने कहा था। उसके हृदय की अभिव्यक्ति पागल पन हो गया। और

फिर उसे यह भी याद आया कि एक दिन क्रोध से रंजीत ने उस की कापी ही खिड़की से बाहर फेंक दी थी। वह कापी क्या थी मानों उसका हृदय ही था। किन्तु विवश सी साधना चुप रह गई थी। फिर गृहस्थ का ऐसा झंझट उसके इधर उधर हुआ कि कुछ लिख नहीं पाती थी और जब लिखने को रुचि होती तो घर का काम काज आ पड़ता। हार कर उसने लिखने का विचार ही छोड़ दिया था। भाव उमड़ते तो उन्हें दबा देती, मसल देती। यहां आकर माधवी के आग्रह से उसने पुनः लेखनी सम्भाली थी परन्तु हृदय इतना व्यथित एवं विक्षिप्त था कि शब्द लेखनी की नोक पर आकर रुक जाते। भावों का इतना तीव्र ज्वार आता कि किनारों के बन्धन टूट जाते। धैर्य बांध कर उसने कहा, 'कभी लिखती थी, यह तो अब केवल स्वप्न ही दीखता है श्रीकान्त जी। फिर भी आप कहते हैं तो लिखूंगी।'

साधना ने पलकें उठा कर देखा। उस निराश दृष्टि ने उसे विक्षिप्त सा कर दिया। माधवी अब धीरे धीरे चलने लगी थी। घुटने के पास की हड्डी अभी भी दर्द करने लगती थी। अतः बाहर नहीं निकलती थी। आज कल उसकी दिनचर्या पढ़ने तक ही सीमित थी। लिखने की बात चली तो वह भी सहयोग देती हुई बोली, 'आजकल मैं भी लिख सकती हूं साध। इतना साहित्य इन दिनों मैंने पढ़ा है जितना कभी नहीं पढ़ा। इस प्रकार यह दुर्घटना मेरे लिये हितकर ही प्रमाणित हुई है।'

'देने वाला जो देता है सोच समझ कर ही देता है दीदी। हम ही उसे स्वीकार करने में कतराते हैं।'

'ठीक है बहिन, यदि हम मूक भाव से उसके दान को स्वीकार कर सकें तो जीवन के दुख भी वरदान बन सकते हैं।

नि:सन्देह मनुष्य को सुख के क्षण अधिक आकर्षक लगते हैं किन्तु दुख के क्षण भी कम मूल्यवान नहीं। वे हमारे पथ प्रदर्शक बनते हैं।' माधवी ने कहा।

'दीदी आप तो दार्शनिक होती जा रही हैं।'

माधवी इस विशेषण पर हंस पड़ी। उसने कहा, 'सच श्रीकान्त भाई यह मेरी अनुभव सिद्ध बातें हैं। इस दुख और अवसाद को हम जितना हल्के हल्के ग्रहण करने का प्रयास करेंगे यह उतना ही हलका होता जायेगा।'

''दीदी अब तो तुम ठीक हो गई हो, नारी मन्दिर जाने की आज्ञा कब मिलेगी ?'

'मैं बड़ी स्वार्थी हूं बहिन, अपने सुखार्थ तुम्हें बांध रखा है। तुम पढ़ भी नहीं सकी इतने दिन।'

'दीदी लज्जित तो न करो, तुम्हारे लिये मैं अपनी सैकड़ों पढ़ाइयां न्यौछावर करदू। मैंने तो साधारण रूप में कहा था।'

'नहीं साध, तुम कल से अपनी नियमित दिन चर्या आरम्भ करो। पप्पु तंग तो करता होगा ?'

'दीदी बिल्कुल नहीं, सारा दिन जानकी के पास खेलता रहता है। अब तो बैठता है और रेंगने की कोशिश भी करता है।

श्रीकान्त चुप-चाप बैठा दोनों की बातें सुन रहा था। वह बीच में क्या बोले। उत्सुकता वश उसने मेज़ पर पड़ी कापी उठाली। माधवी इन दिनों संस्कृत सीख रही थी। कापी के नीचे ही प्रथम 'संस्कृत बोध' रखा था। विस्मय से श्रीकान्त ने पूछा,

'संस्कृत सीख रही हैं दीदी ?'

हां भाई चिरकाल से इच्छा थी इसे सीखने की ' हिन्दी में गीता का अध्ययन मैं नित्य करती हूं । पर अपनी आत्म कथा में गांधी जी लिखते हैं कि महामना मालवीय से गीता का संस्कृत पाठ सुन कर जो आनन्द उन्हें आया उससे उन्हों ने अनुभव किया कि प्रत्येक भारतीय को संस्कृत आनी ही चाहिये ।'

'यह शुभ लक्षण हैं दीदी ।'

'श्रीकान्त भाई, आपने तो संस्कृत का एम० ए० किया है और सुना है आप का श्लोक पाठ अत्यन्त सुन्दर है। कुछ सुनाइये ।'

'इस समय ? कभी प्रातः काल सुनाऊंगा ।'

'समय तो मन का होता है, आप इसी समय सुना दीजिये । मैं 'फिर' में विश्वास नहीं करती ।' माधवी ने आग्रह से कहा ।

'अच्छा ! व्याख्या सहित या केवल श्लोक ?'

'जी नहीं व्याख्या सहित ।' यह साधना के शब्द थे ।

श्रीकान्त ने पांच श्लोक सुनाये । स्वर माधुर्य उसने पाया था ।

श्रीकान्त ने उन श्लोकों को चुना जिनमें गीता के मुख्य सिद्धांत एवं सार आ जाते थे । पहला श्लोक था—

कर्मणयेवाधिकारास्ते मां फलेषु कदाचन
मा कर्म फलहेतुर्भू मा तेसंगोऽस्त्वकर्मणि ।

केवल तुझे कर्म का अधिकार है, फल की कामना मत कर–कितना श्रेष्ठ विचार है मनुष्य की मानसिक शान्ति के लिये । किन्तु आधुनिक युग में फल की इच्छा पहले और कर्म पीछे । इससे अशान्ति प्रसार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है !

'बहुत आनन्द आया। यों कीजिये श्रीकान्त भाई, मुझे संस्कृत पढ़ा दिया करें।

'कुछ दिन ठहर जाइये।'

'क्यों ?'

'ओह ! बताना तो भूल गया। डा० गुप्ता बदल कर हिसार जा रहे हैं। सात-आठ दिन तो उन्हें भेजने-भिजवाने में लग जायेंगे।'

'तो रेखा अब जा रही है वास्तविक ससुराल। उससे कहिये मिले बिना न जाये।'

'आपका सन्देश दे दूंगा।'

श्रीकान्त चला गया तो साधना अपनी तुलना रेखा से करने लगी। उसके मुकाबले में रेखा कितनी सुखी है। मनोनुकूल पति मिलना नारी के लिये एक स्वर्गीय वरदान ही समझना चाहिये। उसने कितना सहा केवल पति की अनुकूलता प्राप्ति के लिये किन्तु पति का प्रेम उसके भाग्य में था ही नहीं। वह कितना भी करे रंजीत को किसी प्रकार भुला नहीं पाती। पप्पु के सम्मुख आते ही रंजीत उसके नेत्रों के सामने आ जाता। क्यों न आये, उसके मन ने रंजीत को सर्वप्रथम पुरुष एवं पति के रूप में स्वीकार किया था और उसी के आधार पर भविष्य के स्वर्णिम नीड़ बनाने का प्रयास किया था। यह और बात है कि आंधी के एक ही अल्हड़ झोंके ने उसके नीड़ को भूमिसात कर डाला फिर भी पंछी को जीवन साथी की स्मृति तो आयेगी ही।

नारी मन्दिर में लौट कर साधना अपनी नियमित दिनचर्या में जुट गई। उसकी परीक्षा में केवल दो-तीन मास रह गये थे। वह चाहती थी कि किसी प्रकार बी० ए० कर जाये तो जीवन

की नाव समगति से बहने लगे। उसे इसी बात की चिन्ता खाये जा रही थी कि किस सुदिन में वह स्वावलम्बी बन सकेगी। प्रातः के पांच घन्टे विद्यालय में लग जाते। मध्याह्न को कुछ पप्पु की देख रेख और कुछ इधर-उधर के काम। सांझ का वातावरण तो नारी मन्दिर का अत्यन्त दर्शनीय होता। उसने वहाँ सम्मिलित प्रार्थना की विधि प्रचलित की। ईश्वर के विषय में भिन्न भिन्न विचार रखने वाली स्त्रियां एकत्रित हो जाती और अपनी इच्छानुसार शब्द और भजन गीत गातीं। उनमें सभी भावनाओं का समावेश होता। कोई वेष्णव हो, शैव हो, सिक्ख हो किसी में भेद भाव न होता। साधना स्वयं भी मीरा के भजन अच्छे गाती थी। प्रति सन्ध्या वह अवश्य अपने मधुर स्वर से महिलाओं को तृप्त करती था। मीरा का एक भजन तो उसे असीम पसन्द था और वह उसे खूब मस्त होकर गाती थी। कभी २ अध्यात्मिक पुस्तकों का पाठ और व्याख्या भी होती थी। शाम को प्रार्थना समाप्त ही हुई थी कि जानकी पप्पु को लेकर आई। कहा, 'बहिन जी, आज तो यह बहुत रो रहा है।'

'रो रहा है, ला तो।' गोद में लेते ही साधना तड़प उठी—'अरे इसे तो तेज़ ज्वर है।'

'इसी से तो रो रहा था। हाथ-पैर खूब तप रहे हैं।'

'तू माधवी दीदी के पास जा, कहना कोई डाक्टर भेज दें। समय-कुसमय इसे कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगी।' साधना घबरा गई थी। जानकी को भेज कर उसने विस्त्र स्वच्छ करके पप्पु को ढक कर लेटा दिया। मां के मृदुल हाथ लगते ही पप्पु ने कुछ शान्ति का अनुभव किया और निंद्रा के मधुर अंक में जा पुहुंचा। साधना बेचैन सी डाक्टर की प्रतीक्षा करने

लगी। पप्पू की छाती में से घर्र घर्र का स्वर आ रहा था। साधना ने सावधानी पूर्वक उसे ढंक दिया। अवश्य यह शीत का प्रकोप है ! हे भगवान ! मुझ निसहाय का यही एक मात्र धन है, इसकी सुरक्षा करना। डाक्टर आ पहुंचा था। निरीक्षण करके कहा.' न्यूमोनिया हो गया है।'

'एक दम, दोपहर तक तो ठीक था।'

'आज कल शीत के कारण यह रोग फैला हुआ है। आप चिन्ता न करें। केवल इतना ध्यान रखिये कि ठण्ड न लगने पाये ।'

'अच्छा डाक्टर साहब।'

दवाइयों का निर्देशन करके डाक्टर चला गया। दवा छः, छः घन्टे के पश्चात देनी थी। इसलिये साधना रात भर जागती रही। बैठे बैठे नींद के झोंके भी आये किन्तु चिन्ता का रूप इतना गहन था कि वह चौंक कर उठ बैठती और पप्पु की ओर देखने लगती। पप्पु कभी कभी बेचैन सा हाथ पटकाता था। जानकी पास की चारपाई पर निश्चिन्त सो रही थी। चाहे सोने के समय उसने साधना से अनुरोध किया था कि वह सोये और वह जागेगी। प्रभात ने जैसे ही वातायन से झांका कि साधना की निराशा आशा की किरणों से भयभीत हो पलायन कर चुकी थी। पप्पु की सांस जो उखड़ी उखड़ी थीं स्वस्थ गति कर रही थी। वह सो रहा था। ज्वर तो अभी था किन्तु न वह बेचैनी थी, न वह ज्वर वैषम्य। नत मस्तक हो साधना ने कर्त्तार को नमस्कार किया। डा० ने आ कर देखा तो अवस्था खतरे से बाहर बताई फिर भी दस-पन्द्रह दिन के लिये पप्पु के स्वास्थ के प्रति सतर्क रहने की चेतावनी देदी। साधना सोचती कि क्या सचमुच भाग्य उसके साथ खिलवाड़ कर रहा है। इधर

परीक्षा सिर पर उधर पप्पु बीमार हो गया। उसने ठान लिया कि वह परीक्षा अवश्य देगी चाहे कितना ही निदर्य क्यों न हो जाये।

३३

सरला देवी बहुत दिनों के पश्चात श्रीकान्त की कमीजों को बटन टांकने बैठा थी। रेखा के जाने के पश्चात यह कर्त्तव्य उन्हें निभाना पड़ रहा था। श्रीकान्त का ट्रंक जो खोल कर देखा तो उन्हें खीभ सी हो आई। यह लड़का कभी ढंग से भी रहना सीखेगा। प्राय: सभी कमीज़ें खस्ता हालत में थीं किसी का कालर फटा था तो किसी के बटन टूटे थे। यों कभी कभी श्रीकान्त स्वयं भी सूई धागा ले कर बैठ जाता था किन्तु था वह लापरवाह इस में कोई संदेह नहीं। बर्तन साफ करने वाली महरी अपना वेतम लेने आई थी और अभी महीना होने में छ: दिन शेष थे। सरला देवी को कार्यव्यस्त देखकर निकट आ बैठी। पूछा, 'बाबू जी का ब्याह अब कब करेंगी मां जी ?'

'जब उसकी इच्छा होगी कर लेगा। मेरा कहना तो मानता नहीं।'

'कब नहीं मानता मां ?' पीछे से सहसा आकर श्रीकान्त बोला

'अरे तू आगया कान्त, यह महरी वेतन मांग रही है।'

'अभी तो महीना पूरा होने में समय है।'

'जी बाबू जी, क्या करूं । एकाएक बेटी की सास आ गई हैं और घर में आटा तक नहीं है। मैं तो कभी आप को तँग न करती किन्तु......... ।'

'दे दे बेटा, आवश्यकता पड़ने पर ही कोई मांगता है।

श्रीकान्त ने जेब में से पाँच रुपये निकाले कर महरी को दे दिये। फिर लैटर बॉक्स खोला बन्द लिफाफा था एक और रेखा का पत्र। एक ही सांस में रेखा का पत्र पढ़ डाला और मां की ओर बढ़ा दिया। पढ़कर मां बोली, 'शुक्र है पत्र तो आया। कहा भी है कि पत्र शीघ्र दिया कर किन्तु आंख ओट पहाड़ जाते ही हमें भूल गई।'

'मां यह बदली भी एक ही झंझट होता है। एक स्थान से घर उखाड़ कर दूसरे स्थान पर ले जाना सरल नहीं होता।'

तदुपरान्त दूसरा पत्र खोला श्रीकान्त ने। पढ़ते हुए मुख के भाव ही परिवर्ति हो गये।

'कैसा पत्र है ?' मां ने पूछा।

'मामा किसी से बात कर रहे हैं मेरे विषय में। वे लोग आज ही पधार रहें हैं। लड़की एम० ए० है।'

'एम० ए० तो हो या न हो किन्तु भाई जी की तो बात ही निराली है। न सूचना, न खबर एक दम शाही हुक्म भेज दिया।'

'मां यही नहीं, लिखा है यदि यह सम्बन्ध स्वीकार न करूंगा तो नाता समाप्त।'

'क्या हो जाता है इन्हें। अपने लड़के तो स्वयं पत्नियों का चुनाव करते हैं और दूसरों पर इतना रोब। खैर कान्त जब वे लोग आ ही रहे हैं तो कुछ करना ही होगा। जलपान इत्यादि का प्रबन्ध।'

साढ़े दस की गाड़ी से वे लोग पधार गये और देख कर श्रीकान्त के आश्चर्य की सीमा न रही कि साथ में लड़की भी है। लड़की वैसी ही है जिन्हें श्रीकान्त तितली की संज्ञा देता था। साथ में पिता तथा एक भाई था। आते ही उन्हों ने बोर्ड पढ़ा

'मि० श्रीकान्त एम० ए०' फिर बेतकल्लुफ से भीतर आगये।

श्रीकान्त स्वागत के लिये प्रस्तुत था। बैठक में ला कर बैठाया। पूछा, आप लोग शायद दिल्ली से आ रहे हैं?'

'क्या आपके मामा जी ने कोई पत्र नहीं लिखा।'

'जी उनका पत्र मिल गया है।'

श्रीकान्त को अभी भी उस लड़की के विषय में संदेह था। वह उसे लड़की की बहन समझ रहा था। लड़की के पिता ने कहा, 'जी मैं पिता हूं और यह भाई! यह मेरी लड़की शोभा है जिसके लिये हम प्रस्ताव ले कर आये हैं।

लड़की की दृष्टि में लज्जा या संकोच नाम की कोई भावना नहीं थी। वह चंचल नेत्र नचा नचा कर घर के वातावरण का निरीक्षण कर रही थी। श्रीकान्त ने अब ध्यान से देखा, वह सकपकाई तो अवश्य, पर सलज्ज भाव वहां नहीं था। मां को बुला कर श्रीकान्त ने परिचय करवाया तो वे भी देखती ही रह गईं। जिन लड़कियों में लज्जा नहीं वे वास्तव अपनी जाति को सार्थक नहीं करती। पहले इसके कि श्रीकान्त कोई प्रश्न पूछे कि शोभा ने स्वयं ही पूछना आरम्भ कर दिया।

'कौन से कॉलेज में हैं आप?'

'किसी प्राइवेट कालेज में हूं।' श्रीकान्त ने अनिच्छा से कहा

'यह प्राइवेट कॉलजों वाले पूरा वेतन नहीं देते। आप कहीं और आवेदन क्यों नहीं देते ?'

'दिया तो था किन्तु सिफारिश का पुछल्ला न होने से इन्टरव्यू में चुना नहीं गया।

'डैडी आप का परिचय तो बहुत है। इन्हें कहीं अच्छी सर्विस भी तो मिल सकती है।'

'हां बेटी।' डैडी का सोना जैसे और तन गया।

'आपकी अपनी कोठी है ?'

'जी नहीं, मेरे पास केवल दो कमरे हैं। इससे अधिक मैं दे ही नहीं सकता।

'किन्तु आपके मामा जी ?' यह शब्द पिता के थे।

'मामा जी ने आपको ग़लत बताया। मैं एक ग़रीब प्रोफ़ैसर हूं, साधारण वेतन पाने वाला।'

'तो उन्होंने हमको धोखे में रखा मि. श्रीकान्त। किन्तु कोई बात नहीं है फिर भी रिश्ता हो सकता है। सच तो यह है मि. श्रीकान्त कि मेरी लड़की पढ़ी लिखी है, सुसभ्य है।

श्रीकान्त मुस्कराया। शोभा को उसकी मुस्कान भा गई। श्रीकान्त बोला, 'सभ्य से आपका क्या तात्पर्य है ?'

'आप इतना भी नहीं जानते। सभा सोसायटियों में जाती है। दो क्लबों की मेम्बर है और एक अच्छे कालेज में पढ़ाती है। सम्भव है इसका वेतन आपके वेतन से अधिक ही हो।

'तो फिर, आधुनिक युग में जिस लड़की में इतने गुण हों उसे तो झट पट अच्छा वर मिल जाना चाहिये। क्या कारण है कि मुझ जैसे तुच्छ पर आपकी कृपा दृष्टि हुई है।' श्रीकान्त की आंखो में व्यंग्य खेल रहा था

'सच्च कहने में हिचकना नहीं चाहिये । लड़की की एक आंख पत्थर की है ।'

'डैडी ।' शोभा ने जैसे पिता को डांट दिया ।

'क्या हो गया बेटी, सत्य कभी छुपा नहीं रह सकता ।'

श्रीकान्त उन लोगों को टालना चाहता था । पत्थर को आंख के विषय में सुनकर श्रीकान्त ने देखा कि शोभा के नेत्र काली एनक से ढके हैं किन्तु एक बात उसे समझ नहीं आई कि लड़की को दिखाने के लिये साथ २ लेकर घूमना कहां की बुद्धिमानी है । क्या कहीं इतनी बेहयाई भी हो सकती है । यह अच्छी आधुनिकता है कि मर्यादा भी न रहे । फिर लड़की में इतनी चंचलता है कि सन्देह हो जाता है कि ऐसी लड़कियां कभी गृह संचालन भी ठीक ढंग से कर सकेंगी । यह भी अच्छा था कि मामा जी की ग़लती को वे स्वयं अनुभव कर रहे थे । लड़की में दोष अवश्य था किन्तु उनके पास पैसा खूब था और आज कल पैसे के बल पर क्या नहीं हो सकता । वैसे श्रीकान्त का डील डौल व व्यक्तित्व उन्हें पसन्द आया था । इसलिये खुल कर शोभा के पिता ने कहा, 'अब आप की क्या राय है ?'

'जी हम लोग इतने आधुनिक विचार के नहीं है । और मैं बी० ए० से अधिक पढ़ी लड़की से ब्याह नहीं करूंगा ।' श्रीकान्त ने साहस से कहा ।

'और मैं भी ऐसे लड़के से शादी पसन्द नहीं करती जो बीसवीं सदी में रह कर उन्नीसवी सदी की बात करे ।' शोभा तुनक कर बोली

'आपको बीसवीं नहीं इक्कीसवीं शताब्दी में पैदा होना चाहिये था मिस शोभा ।'

नाराज़ हो कर वे लोग चले गये और जलपान की सामग्री धरी की धरी रह गई। हंस कर सरला देवी बोली,'आज तुझे क्या हो गया था कान्त। ऐबंग तो तू कभी नहीं हुआ।'

'मां ऐसी निर्लज्जता देख मेरा मन जल उठता है। ब्याह शादियां भी मछली मार्किट के सौदे हो गये।'

'मुझे लगता है कि मैं यह साध लिये ही मर जाऊंगी। बेटा अब तू शीघ्र ही विवाह करले।'

'मां तुम्हारी यह साध अधूरी नहीं रहेगी। किन्तु कोई मिले भी—

'हां तुझे तो कोई मिलती ही नहीं। मैं रेखा को आज ही लिख देती हूं कि कोई भाबी खोज ले। पर तू ना-नुच तो नहीं करेगा न ?'

'नहीं मां।'

बेटे के मुख से 'हां' सुन कर मां को अत्यन्त आल्हाद हुआ। कितने वर्षों से वे इस स्वीकृति के लिए तड़प रही थीं। आज उनके दैवता ने उनके मन की पुकार सुन ली थी। उत्साह से उन्होंने पूछा,'क्या खायेगा आज।'

'जो तुम चाहो मां।'

'मैं तो आज नहीं खाऊंगी बेटा। एकादशी है।'

'तो हम भी आज एकादशी करेंगे।'

'यह कैसे हो सकता है ?'

'हो क्यों नहीं सकता। मेरे पेट में कुछ गड़बड़ है। आज फलाहार ही सही।'

हर्षित मन से सरला देवी और काम देखने चली गईं। आज उनका उड़ने को मन हो रहा था। श्रीकान्त बहुत दिनों

के पश्चात अपनी लेखनी लेकर बैठा। वह एक पुस्तक लिख रहा था हिन्दी के विकास के विषय में। परन्तु मनःस्विति बनी ही नहीं। एकाएक उसके मन में कुछ घबराहट सी होने लगी। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या हो रहा है उसे ? द्वार पर दस्तक हुई उठा और किवाड़ खोले। उसको आदमी बुलाने आया था। सीढ़ियों से गिर कर पारस को चोट आ गई थी। यद्यपि प्रथम उपचार उन्होंने ने कर दिया था फिर भी अभिभावक का होना अनिवार्य था। चपल के फीते कसते हुये उसने मां से कहा, 'मां मैं जा रहा हूं पारस के चोट आ गई है।'

'क्या कहा पारस, मेरा बच्चा।

'मां मैं उसको देखने जा रहा हूं। शायद अस्पताल दाखिल करवाना पड़े।'

'यदि हो सके तो घर ही ले आना। मेरे नेत्र ही बच्चे को वहां कष्ट होगा।' मां ने आतुरता से कहा।

'देखूंगा मां।' शीघ्रता से श्रीकान्त निकल गया। मां ने पीछे से पुकारा, 'उसे अवश्य ले आना कान्त।'

व्यग्रता से सरला देवी प्रतीक्षा करने लगीं मन को तनिक चैन नहीं था। काम में भी मन नहीं लग रहा था। क्या करें, पारस का निरीह दृष्टिहीन मुख ज्यों ही सामने आता वे पुनः घबरा जातीं।

आधा घन्टा अर्धयुग सदृश्य गुजरा। श्रीकान्त चारपाई की डोली बनवा कर पारस को ले आया था। वह बेसुध पड़ा था। सरला देवी ने प्रेम-व्याकुल हो पुकारा 'पारस, पारस।' किन्तु पारस तो जाने किस लोक में था। उसके सिर पट्टी बन्धी थी।

अधिक चोट तो नहीं आई।' सरला देवी ने पूछा।

'नहीं माँ बहुत नहीं। दो चार दिवस में ठीक हो जायगा। रोज ही तो जाता था ऊपर फिरहरी सा कूदता हुआ। पैर ही फिसल गया।'

मां धीरे धीरे उसके उलझे सिर में प्यार-भरा हाथ फेरने लगी। एक घन्टे में ही उसे चेतना लौट आई। उठने का प्रयास करते हुए कहा 'मां।'

स्नेह गद् गद् कन्ठ से मां ने पूछा, 'पारस तूने मुझे पहचान लिया।'

'इतना स्नेह पूर्ण हाथ किस का हो सकता है मां तुम्हारे अतिरिक्त। मैं तो इन हाथों की कोमलता को सुगन्धि पहचान जाता हूं। भय्या जी कहां हैं।'

'मैं तेरे निकट ही हूं पारस।'

सिर पर बन्धी पट्टी छू कर पारस ने कहा, 'मैं गिर पड़ा था शायद। क्या अधिक चोट आगई है?'

'नहीं, तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे।'

'मां जी के स्नेह के अनुलेप से मैं शीघ्र ही ठीक हो जाऊंगा भय्या जी।'

'पारस, मैं अब तुझे यहीं रखुंगी बच्चा। कहीं नहीं भेजुंगी।

पारस अपना दुख भूल गया। उसके रुक्ष मुख पर हर्ष की रेखा नाच उठी। बोला, 'मां जी अब यह चरण छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगा। अब तो मैं और भी सुन्दर सुन्दर भजन सीख गया हूं। सुनाऊं मां जी।'

अन्धे बालक की निरीहता पर मां का मन मुग्ध हो गया। इसके हृदय में कितनो स्वच्छता, कितनी सरलता है! निर्लिप्त इतना कि अपने दुख को सर्वथा ही भूल गया है। और दूसरों

को प्रसन्न करने की कितनी लगन है। कहा, 'सब सुनुंगी पारस, सब सुनुंगी, तू ठीक हो जा।'

'नहीं मां जी अभी सुनिये। मुझे तनिक भी तो कष्ट नहीं है।

'सुन लो मां क्या बुरा है।'

और पारस गाने लगा सूरदास का एक प्रसिद्ध भजन—

नयन हीन को राह दिखा प्रभु,
पग २ ठोकर खाँऊ मैं।
चहुं ओर मेरे घोर अन्धेरा,
भूल न जाऊं द्वार तेरा।
एक बार प्रभु हाथ पकड़ ले,
चलत-चलत गिर जाऊँ मैं।

आनन्द विभोर सी सरला देवी सुन रही थीं। सूरदास के शब्दों में पारस की अपनी आत्मा मुखर हो रही थी। एक-एक शब्द जैसे हृदय की गहराई को स्पर्श कर रहा था। पारस चाहे भौतिक ज्योति से शून्य था किन्तु आत्मिक ज्योति उसके मुख को दीप्त कर रही थी।

३४

परीक्षा के बन्धन से मुक्त हो कर साधना क्रय-विक्रय करने निकली। इन्हीं दिनों में पप्पु के कपड़े बिल्कुल फट गये थे। अब वह कदम-कदम चलने लगा था। इसलिये बूट लेने भी आवश्यक थे। साधना ने माधवी दीदी को बाजार

जाने के लिये सन्देश भेजा तो ज्ञात हुआ कि दो एक दिन से उनकी तबीयत ठीक नहीं। इसलिये जानकी को लेकर ही बाज़ार जाना पड़ा। जाती बार वह माधवी का पता भी लेती जायेगी। पप्पु बाज़ार की चहल-पहल देख कर अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहा था। कभी नन्हें-नन्हें हाथों से तालियां बजाता, कभी किलकारियां मारता। प्रत्येक रंगीन और चमकदार वस्तु को वह ले लेना चाहता था। उछल-उछल कर, कूद-कूद कर उसने जानकी के लिये चलना कठिन कर रखा था। एक गुब्बारे वाला रंगीन गुब्बारे बेच रहा था। साधना ने दो छोटे गुब्बारे पप्पु को ले दिये। वह उनसे खेलने लगा।

दरबार साहिब के चौंक से जैसे ही साधना ने निकल कर जाना चाहा कि अपने नाम की पुकार ने उसे चौंका दिया। उत्सुक भाव से इधर-उधर देखा किन्तु भीड़ कुछ अधिक होने से कुछ भी समझ न पड़ी। तब तक पुकारने वाली लपक कर उसके निकट आ पहुंची। अरे यह तो गामती है जो जालन्धर में बिलकुल पड़ोस में रहती थी। चाह भरे भाव से साधना ने उसे मिलते हुए कहा, 'अरे गोमती है, कब आई तू यहां'

'आज ही आई हूं बहिन। मैंने तो तुम्हें दूर से देखते ही पहचान लिया। अच्छी तो हो। ओह राजा बेटा कितना बड़ा हो गया।'

गोमती ने पप्पु को गोद में खींच लिया। वह गोमती के पास से जाने के लिये ज़ोर लगाने लगा। गोमती ने जानकी की गोद में उसे दे दिया। गोमती के सम्पर्क से साधना की सोई स्मृतियां हरी हो गईं। जिन से उसने जीवन भर का

नाता जोड़ा था उनकी उसे वर्ष भर से कोई सूचना तक नहीं। उसका अन्तर जैसे आकुल हो रहा था। साहस कर उसने पूछा, 'गोमती बहिन, उनके घर क्या हाल चाल है।'

'क्या बताऊं तुम्हारे आने से तो घर ही वीरान हो गया। तुम्हारी सास और कला तो तुम्हारे सामने ही चली गई थीं। वहां तुम्हारी सास को सुना है गंठिया की बीमारी हो गई है। बेचारी चारपाई से उठ बैठ भी नहीं सकती। कला का ब्याह दिल्ली में ही कहीं हो गया है और रंजीत साहब अपनी चहेती के साथ गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।'

साधना ने चाहा कि अपने कान बन्द करले। उसे एक ठोकर सी लगी। कला उसे कितना प्यार करती थी फिर भी उसे कभी पत्र तक नहीं लिखा। शाम की गहराई बढ़ती जा रही थी। साधना ने पूछा, 'कब तक ठहरोगी यहां ? मेरे पास ही ठहरो न।'

गोमती ने बताया कि वह अपनी सास के साथ अमृतसर अमावस-स्नान के लिये आई है क्यों कि किसी अवसर पर उसकी सास ने यह मनौती की थी। यहां उसकी सास के नातेदार रहते हैं। अतः वह उसके पास ठहर तो नहीं सकती किन्तु एक दिन उसे मिलने ज़रूर आयेगी। साधना ने उसे नारी मन्दिर का पता बता दिया।

आगे बढ़ी तो साधना का समस्त शौक समाप्त हो गया। मन बुझ सा गया। चलते-चलते जानकी ने टोका, 'बहिन जी बूट नहीं लेगी।'

सामने ही बूटों की दुकान थी। हल्के कपड़े के बूट साधना ने पप्पु के लिये खरीदे। भारी बूट उसके पैरों की गति के लिये बाधक सिद्ध हो सकते थे। शीघ्रता से कुछ निक्कर

कमीज़ों का कपड़ा खरीद कर साधना लौट चली। अभी माधवी के यहां भी जाना था। गोमती के शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे। रंजीत को शायद उसका बिल्कुल ध्यान नहीं किन्तु वह नारी हो कर उसे कैसे विस्मृत करे। कैसे मन की गहराइयों से उसे निकाल फेंके।

माधवी लान में आराम कुर्सी डलवा कर विश्राम कर रही थी। उसके मुख पर मानसिक श्रान्ति के चिह्न थे। नेत्र मंद कर वह चिन्ता मग्न सी बैठी थी। पप्पु की तालियां सुन कर वह चौंकी। साधना को एकाएक वहां देख कर माधवी खिल उठी थी। उसने कहा, 'इस समय तो कुछ और भी मांग लेती मैं।'

'क्या मांग रही थी दीदी ?'

'तुम्हें देखना, साध, कुछ मानसिक श्रान्ति, कुछ एकाकीपन के कारण कभी कभी मैं विक्षिप्त हो जाती हूं।'

'तो साधना के लिये तुम्हारा एक शब्द ही पर्याप्त है। साधना तुम्हारे उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकती। उसका निर्माण ही तुम्हारे हाथों हुआ है।'

पप्पु उसके पास आने को उछल रहा था। उसे गोदी में लेकर माधवी बोली, शैतान होता जा रहा है।'

पप्पु माधवी के पास पड़ी अखबार से क्रीड़ा करने लगा। इस वयस् के शिशु प्रायः कागज और धागे से खेल कर बड़े प्रसन्न होते हैं। एक ही क्षण में समाचार पत्र के टुकड़े-टुकड़े करके पप्पु विजयी नायक के समान मुस्करा रहा था। कितनी मंजु मनोहर मुस्कान थी। विमुग्ध हो कर माधवी ने पप्पु का चुम्बन ले लिया। तनिक दूरी पर एक रंगीन चित्र फटा

पड़ा था, पप्पु उसे लेने को लालायित था । माधवी ने उसे नीचे उतार दिया । दो कदम चला कि भूमि पर गिरा, फिर चला और फिर गिरा । साधना माधवी दोनों हंस पड़ीं । शिशु हास्य के इस रहस्य को न समझ सका । कौतुहल से देखने लगा फिर रेंगता हुआ चित्र के निकट पहुंच गया ।

'साधना आज यहीं रह जाओ तो ।'

'अच्छा दीदी ।'

जानकी को सूचनार्थ नारी मन्दिर भेज दिया गया। माया बाहर आई तो माधवी ने एक केला लाकर पप्पु को देने के लिये कहा। माया केला ले आई । केला हाथ में लेकर पप्पु को पुकारा, 'राजा बेटा केला खायेगा ?'

अग्रिम दोनों दांतों की छबि बिखराता पप्पु रेंगते हुए भाग आया । मिट्टी से स्नात दोनों हाथों के छापे माधवी की साड़ी पर लगा दिया । हां, हां करते हुए साधना ने बच्चे को उठा लेना चाहा परन्तु माधवी ने रोक दिया । वह स्वयं बच्चे को खिलाना चाहती थी किन्तु बच्चा अपनी रुचि से खाने का इच्छुक था । केला हाथ में लेकर वह बड़े २ ग्रास खाने लगा। एक बार मुख भर कर फिर उगल दिया और हाथों से मुंह पर मल लिया।

'छिः छिः कैसा गन्दा है तू पप्पु ? आ तेरा मुंह धोऊँ ।' किन्तु पप्पु भाग खड़ा हुआ । साधना ने लपक कर उसे पकड़ा । माधवी ने हंस कर कहा, 'घुटुरन चलत, रेणु तन मन्डित, मुख दधि लेप किये कितना स्वभाविक चित्राकंन है । साधना ने पप्पु का हाथ मुंह धुलाया तो चिल्ला-चिल्ला कर आकाश सिर पर उठा लिया।

बहुत दिनों के पश्चात दोनों सखियाँ मिली थीं । साधना

का मन भी भरा था विशेषत: जब से गोमती से मिली थी। मन की बात करने के लिये रात्रि के एकान्त वातावरण से बढ़ कर और कोई सुन्दर समय नहीं होता। मकरन्द के शयन इत्यादि की व्यवस्था के पश्चात माधवी जब आई तो पप्पु सो चुका था। माथे पर एक घुंघराली लट मस्ती से मचल रही थी। साधना जाने कौन सी चिन्ता में खोई थी। द्वार का खटका सुन चौंक पड़ी।

'यह अच्छा कर्त्तव्य भार तुम पर पड़ा है दीदी।'

'हां साध इसने जीवन में कुछ आकर्षण तो ला ही दिया है। मैं तो कहती हूं मन के इस दबगं अश्व के वशीकरण के लिये कोई रज्जु चाहिये ही और यदि यह रज्जु मोह की हो जाये तो क्या बुरा है।

'मोह को ज्ञानियों ने पाश कहा है।'

'मोह से मुक्त कोई है भी? ज्ञानी कहलाने वाले क्या मोक्ष के मोह में ग्रस्त नहीं होते। ईश्वर का आकर्षण क्या मोह नहीं है। हां मोह का स्तर तनिक उच्च कोटि का होता है।

'दीदी मोह की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या तुमने की है। मोह को तोड़ना सरल नहीं, विशेष कर नारी के लिये। पुरुष इन बन्धनों को कठोर, निर्भय हो कर बिदीर्ण कर सकता है।'

माधवी समझ गई कि साधना का मन पीड़ित है। वह मूक ही बनी रही। साधना ने स्वयं कहा, 'पप्पु को देखते ही मुझे उनकी स्मृति का मोह हो आता है, तब हृदय पर जैसे हथौड़े चलने लगते हैं। किन्तु उन्हें मेरी तो क्या अपने रक्त की भी सुधि आती होगी? नहीं दीदी, पुरुष के लिये यह

सब सम्भव है । कोमलता तो नारी के भागों ही आई है ।'

'यह कोमलता नारी का वरदान है बहिन ।'

अभिशाप क्यों नहीं कहती जो नारी के जीवन को नरक और बोझ बना देता है । साधना ने रुद्ध कन्ठ से कहा ।

'नहीं बहिन जिस दिन यह कोमलता मिट जायेगी, समझो संसार से नारीत्व मिट जायेगा । हृदय की कोमलता ही नारी को पति एवं पुत्र के लिये मिटने को प्रेरणा देती है । यह शिशु तुम्हारे प्राणों का आधार है क्यों इसलिये कि हार्दिक कोमलता का एक तन्तु तुम्हें इससे बांधे है । मैं उन्मत्त मकरन्द के लिये तिल-तिल करके मिट रही हूं केवल इसलिये कि कभी एक मृदु सम्बन्ध का तार मैंने उसके साथ बांधा था ।

माधवी का स्वर सहसा भावुक हो उठा था । साधना ने जैसे ठोकर मार कर कहा 'दीदी, भगवान से याचना है कि तुम्हारा आदर्श सदैव बना रहे किन्तु मुझे यथार्थ को देखने का अवसर मिला है । ऐसे अवसर पर कोमलता सचमुच कष्टकर हो जाती है । पप्पु बड़ा हो रहा है । दो वर्ष पश्चात ही यह अपने पिता के विषय में प्रश्न करेगा तो क्या उत्तर दूंगी । शिशु को केवल मां का वात्सल्य ही नहीं पिता का सरक्षंण भी चाहिये । नवांकुर के लिये जल ही नहीं, धूप की सुरक्षा होनी भी आवश्यक है ।'

साधना की बात में तथ्य था । मनो वैज्ञानिक रूप से बच्चे का विकास ठीक से तभी हो सकता है जब माता-पिता का प्यार व सरक्षंण उचित रूप में प्राप्त हो । माधवी जानती थी कि उसके हठीलेपन का कारण केवल मात-स्नेह का न

पाना ही है । पिता जी ने यद्यपि सर्व प्रकारेण उसे सन्तुष्ट करने का प्रयास किया था तदपि मनके किसी अज्ञात कोने में उसकी कई लालसाएं सुप्त रह गई थीं जिन्होंने धीरे २ हठ का रूप ले लिया था । वह जिस बात पर अड़ जाती थी, अटल हो जाती थी ।

'कहती तो सत्य हो किन्तु परस्थितियों की विवशता का क्या किया जाये ।' माधवी ने स्वीकार करते हुए कहा ।

'हां दीदी ।' कह कर साधना ने चुप्पी साध ली ।

'नींद आ गई क्या ?' माधवी और कुछ बातें करना चाह रही थी ।

'नहीं दीदी नींद तो पलकों से कोसों दूर है । सुनो आज मुझे जालन्धर की एक पड़ोसिन मिल गई ।'

'कहां ?'

'बाजार में उसने मुझे पुकार लिया । मां जी के विषय में कहती थी कि गठिया हो गया है । और कला का विवाह हो गया है ।'

'रंजीत के विषय में क्या बताया ?'

'वह कहने वाली बात नहीं, वही पुरुष की निष्ठुरता और विलासिता की बात, अभी खूब रस मग्न हैं ।

'तेरा निर्वाह तो ठीक से हो रहा है ।'

'हो रहा है दीदी । बी॰ ए होने के पश्चात मेरे वेतन में बढ़ती हो जायेगी । श्रीकान्त ने भी पारिश्रमिक के रूप में दस-दस रुपये दिये हैं दो बार ।'

'अच्छा उसका पत्र चालु हो गया है न । मैंने भी तुम्हारी कहानियाँ पढ़ी थीं । कुछ करुणा और टीस का समावेश अधिक

है। साधना तू आशा और आल्हाद से युक्त साहित्य का सृजन क्यों नहीं करती।'

'साहित्य का सम्बन्ध मन से होता है। जब मन में करुणा और कसक का साम्राज्य हो तो साहित्य में हास्य का नृत्य कैसे हो सकता है ?'

माधवी ने इस बात को काटते हुए कहा, 'जब तूने साहित्य सृजन का कर्त्तव्य भार लिया है तो व्यष्टि से उठकर समष्टि की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। निराशा में सराबोर रह कर भी तू आशा की सन्देश वाहिका बन। यह सत्य है कि तू स्वयं वेदना के सागर में डूबी है तो क्या तू पार उतरने का प्रयास नहीं करती, थपेड़ों से संघर्ष नहीं करती, यह संघर्ष ही मानव का जीवन है। तू दूसरों को संघर्ष से टकरा कर साफल्य का संकेत दे।

'ऐसा ही होगा दीदी। धीरे-धीरे मैं मन को इसके हित प्रस्तुत कर रही हूं किन्तु दुर्बलता फिर दबा लेती है।'

'वहां मन तो लग जाता है तुम्हारा, न हो तो यहीं आ जाओ।'

'सब अच्छा है, अलबत्ता अपने जैसी दुखी बहिनों को देख कर तो मेरा मन अधिक शान्ति की अनुभूति पाता है। फिर मुझे सन्तोष भी होता है कि इसी मिस उनकी कुछ सेवा भी हो जाती है। ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है। आज का अभिशाप मेरे लिये कल का वरदान भी बन सकता है।

'जैसे मेरे लिये बन गया है।' साधना और सुनने के लिए चुप्पी साधे रही, 'हाँ साधु, यदि मैं अपने प्रेमकाण्ड में सफल होकर साधारण मनुष्यों की भांति गृहस्थी के चक्र में फंस

जाती तो कहां होता यह नारी मन्दिर, कहां होती मेरी मूक साधना।'

'सच है दीदी, कहां हमारे लिये फूल है कहां शूल, कुछ भी तो निश्चित नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि शूलों को स्वीकार करने से ही हम फूलों के अधिकारी हो सकेंगे।

माधवी ने नयन मूंद कर जैसे इस सत्य को स्वीकार कर लिया। साधना को विद्युत-प्रकाश चुभने लगा था, उठ कर उसने स्विच बन्द कर दिया। कक्ष में था केवल प्रगाढ़ अन्धकार—

३५

श्रीकान्त के ब्याह में केवल पन्द्रह दिवस रह गये थे। सरला देवी के पाँव ही भूमि पर नहीं पड़ते थे। इन दिनों उन्हें यों अनुभव होता जैसे उनका शरीर प्रत्येक प्रकार के रोग व शोक से मुक्त हो गया है। प्रसन्नता मुख पर खिली रहती। रेखा को आमन्त्रण भेज दिया गया था, वह आज कल आने वाली थी। सरला देवी कहती, 'मुझे तो आजकल के फ़ैशन का ज्ञान नहीं, कपड़े इत्यादि तो वही बनायेगी बहू के।'

रेखा का पत्र भी आ गया था कि वह आ कर सब कर लेगी। आजकल बाज़ार से सभी वस्तुयें एवं वस्त्र बने बनाए और नये ढंग के उपलब्ध हो जाते हैं फिर व्यर्थ ही पुराने युग की भांति चार-छः मास पूर्व वस्त्र संग्रह क्यों किये जायँ। और फैशन का तो पूछिये मत, हर तीसरे दिन यह बदलता है। आज का

बनी वेशभूषा चार दिन पश्चात पुराने फैशन की लगने लगती है। वैसे तो मनुष्य आरम्भ से ही परिवर्तन प्रिय है किन्तु युग चांचल्य के साथ उसकी रुचियों की चंचलता भी अनवरत रूप से वृद्धिशील होती जा रही है। एक दिन माधवी आकर काम काज के विषय में पूछ गई थी। सरला देवी ने कहा, 'भाई के ब्याह में तुम्हीं सब तो करोगी बेटी।'

'अच्छा मां. सभी भाइयों के ब्याह में बहिनों को उपहार मिलते हैं, आप क्या देंगी मुझे ?

श्रीकान्त चारपाई पर बैठा इत्यादि का अनुमान लगा रहा था। माधवी का प्रश्न सुनकर उसने उसकी ओर देखा, माधवी आज बिल्कुल बच्ची लग रही थी। सरला देवी ने हंसते हुए कहा, 'तेरे लिये सभी उपस्थित है बेटी, क्या लेगी तू ?

माधवी ने तिरछी दृष्टि से श्रीकान्त को देख कर कहा, 'क्या मागूं श्रीकान्त भाई ?'

' जो इच्छा हो माधवी दीदी, मां का हृदय तो सागर है वहां से सभी कुछ पा सको गी।'

'पगला है यह तो मां के पास जादू का पिटारा तो नहीं कि मांगने पर प्रत्येक वस्तु मिल जायेगी।'

इसी प्रकार हसी खेल में दिवस व्यतीत हो रहे थे। श्रीकान्त की सगाई अमृतसर में ही हुई थी। लड़की बड़ी सरल और सुशील थी। श्रीकान्त के कालेज में साथ काम करने वाले एक प्रोफैसर ने ही यह नाता पक्का करवाया था। मां को बहु का सलज्ज भाव अत्यन्त भाया था।

'मां, तो मैं बाजार हो आऊं।'

'हो आ बेटा, और निमन्त्रण पत्र छपने भी दे आ।'

'आज ही?'

बाहर रहने वालों को कम से कम दस दिन पूर्व तो आमन्त्रण पहुंचना ही चाहिये। नहीं तो उन्हें शिकायत रहती है।

'अच्छा मां'

श्रीकान्त चला गया। उसके जाने के पश्चात ही श्रीकान्त का भावी साला आ पहुंचा। नाम का परिचय देकर उसने सरला देवी को नमस्कार किया। स्नेह पूर्वक कुर्सी पर बैठाते हुये सरला देवी ने पूछा, 'कैसे कष्ट किया बेटा?

'जी पिता जी ने मुझे बारात इत्यादि के विषय में पूछने के लिए भेजा है।'

'क्या श्रीकान्त ने इस विषय में अभी तक सूचना नहीं दी। मैं कितने दिन से उसे कह रही थी।'

'इन विषयों में प्रायः ऐसा हो जाता है।'

'होना तो नहीं चाहिये न, मनुष्य का साधारण से साधारण कर्म भी सुव्यवस्थित होना चाहिये। बारात में केवल पांच मनुष्य आएंगे। मेरी ओर से प्रार्थना कर दीजियेगा कि लेन देन के सम्बन्ध में हम बिल्कुल कोइ आडम्बर नहीं चाहते। यदि देना ही चाहें तो लड़की को देवें, हमें नहीं।

सरला देवी की शालीनता ने आगन्तुक को मुग्ध कर लिया। एक श्रद्धा पूर्ण नमस्कार करके वह चला गया।

आंगन में कदम रखते ही श्रीकान्त ने मां! मां! कह कर पुकारा किन्तु मां का उत्तर न मिला फिर और जोर से पुकारा, 'मां! मां!' और उत्तर फिर भी नदारद। घर के सभी द्वार

खुले पड़े हैं और मां किधर चली गई। एक कमरे में गया, दूसरे में गया, फिर स्टोर में देखा तो कपड़ों का ट्रंक खोले मां औंधे मुख पड़ी थी। घबरा कर श्रीकान्त ने पुनः पुकारा, 'मां!' बदहवास सा मां को हाथों पर उठा कर वह दूसरे कक्ष में ले आया। माँ की साँस बहुत धीमी थी वे अचेतन थी। एक पड़ोसी को डाक्टर बुलाने भेजा और बात की बात में यह सूचना सर्वत्र फैल गई। कुछ लोग आंगन में इक्ट्ठे हो गये और श्रीकान्त उन्मत्तों की भांति मां, मां पुकार रहा था। मां का रंग विवर्ण हो गया था और शरीर निश्चल। डाक्टर के आगमन पर सभी लोग एक ओर हट गए। परीक्षण के पश्चात डाक्टर ने निराशा से सिर हिला दिया। वाणी में रुदन लिये श्रीकान्त बोला, 'माँ को क्या हो गया डाक्टर?

'हार्ट फेल का केस है। हृदय परीक्षण करते हुए डाक्टर ने कहा। मां की धड़कन बन्द थी।

'हार्ट फेल? श्रीकान्त के नेत्र फट गये, रोम रोम रो उठा। यदि निकट खड़ा व्यक्ति थाम न लेता तो वह अवश्य गिर पड़ता।

तभी एक रिक्शा खड़ी हुई द्वार पर, रेखा और डा· गुप्ता उतर रहे थे। घर के बाहर लोगों की भीड़ देख कर रेखा घबरा गई। उसे देख कर सभी लोग चुप के चुप रह गये किन्तु उनके शोक पूर्ण एवं अश्रु स्नान नयन देख रेखा को कुछ अशुभ होने की आशंका हो गई। जैसे ही भीतर प्रवेश किया कि श्रीकान्त फूट फूट कर रो पड़ा 'रेखा—मां—

रेखा ने मां का निष्प्राण शरीर देखा तो पछाड़ खा कर गिर पड़ी। किन उमंगों और भावनाओं से भरपूर होकर वह भाई के विवाह में सम्मिलित होने आई थी। यह क्या हो गया

है। रेखा बिलख बिलख कर रो रही थी। सरला देवी का मुख वैसा ही शान्त और उज्ज्वल था। निष्प्राण होने पर भी किसी प्रकार की मुर्दनी न थी। यों लग रहा था जैसे श्रान्त होकर विश्राम कर रही हों। यही बच्चे उसे कितने प्यारे थे, उनके मुख पर आई अवसाद की तनिक सी छाया भी उसे व्यथित कर डालती थी और आज उनका रुदन भी उसके कानों तक नहीं पहुंचता।

उधर अर्थी की योजना बन रही थी। उन दोनों के इतना विषण्ण एवं दुखी देख पड़ोसी स्वयं ही काम कर रहे थे। सभी के हृदय दुखी थे। किन आशाओं से बेचारी ने पुत्र का ब्याह रचाया था। सामने ही आंगन में श्रीकान्त का लाया रसद का सामान पड़ा था। श्रीकान्त अपने को ही पापी सिद्ध कर रहा था। अधूरी आशा लिये मां इस लोक से चली गई। इसका उत्तरदायी कौन है, केवल तू ही है श्रीकान्त— श्रीकान्त के मन ने कहा।

सान्त्वना देते हुए किसी ने कहा, 'धैर्य धारण करो श्रीकान्त।'

उत्तर में वह और भी रोने लगा। पुरुष होकर भी वह बच्चों की भांति फूट फूट कर रो रहा था। उधर माधवी पहुंच कर रेखा को सम्भाल रही थी।

श्मशान भूमि में तीन चित्ताएं और भी जल रही थीं। यह आग कभी शीतल नहीं होती। मनुष्य के जन्म मरण के खेल को देख कर यह जैसे खिलखिलाती है उसका उपहास उड़ाती है। इस ज्वाला को देख कर कुछ क्षण के लिये वैराग्य की भावना अवश्य उमड़ती है किन्तु आँखों से ओझल होते ही फिर मनुष्य उन्हीं माया जालों में फंस जाता है।

अन्तिम दर्शनों के लिये सरला देवी के मुख को निरावरण किया गया। रोते हुए श्रीकान्त ने रेखा का हाथ पकड़ कर खींच लिया और कहा, 'आओ रेखा......मां के इस वात्सल्य मय मुख को अन्तिम बार देखलें। यह प्यारा मुख पुनः देखने को नहीं मिलेगा बहिन। कोई हमें स्नेह से बेटा, बेटी कह कर नहीं पुकारेगा......फिर यह पावन शरीर खाक में मिल जायेगा। आज से हमारे लिये मां का स्नेह सदा के लिये छिन गया।

दोनों का रुदन अत्यन्त मर्म भेदी था। इधर-उधर खड़े समस्त नर-नारी रुमाल या आंचल नेत्रों पर रखे अश्रु वर्षण कर रहे थे। किसी वृद्ध ने धैर्य देते हुए कहा, 'श्रीकान्त बेटा, पुरुष होकर यों मन छोटा न करो और मां की दाह क्रिया करो। माँ तुम्हारी देवी थीं। संसार का चक्र इसी प्रकार घूमता है।'

'पुरुष होकर मैं क्या पाषाण हो जाऊंगा चाचा जी। अपनी स्नेहमयी मां के निधन पर मुझे जी भर कर रो लेने दो। मातृत्व जसी निधि छिन जाये और मैं हृदय पर पत्थर रख लूं!'

बहुत समझाने पर श्रीकान्त ज़रा सम्भला और सरला देवी के उस पावन शरीर को चिता पर रख दिया गया। देखते ही देखते चिता की अग्नि धू धू कर जलने लगी और उस शरीर को राख करने लगी।

स्नान के पश्चात घर लौटे तो घर का कोना २ जैसे माँ के लिये बिलख रहा था। एक २ जड़ वस्तु आज खिन्न और उदास दीख रही थी। वह ट्रंक अभी भी खुला पड़ा था। श्रीकान्त ने चाहा कि उसे उठा कर बाहर फैंक दे। धीरे २

सभी लोग चले गये' केवल घर के लोग रह गये। माधवी के घर से खाना बन कर आगया था पर खाने की रुचि किसी को भी न थी। माधवी ने समझा कर कहा, 'ऐसे तो नहीं चल सकेगा श्रीकान्त भाई। स्वयं भी खाओ और रेखा को भी खिलाओ।'

'भूख नहीं है दीदी।'

'आखिर कितने दिन न खाओगे ? मेरी ओर क्यों नहीं देखते। यह संसार ऐसे ही चलता है। कोई यहां अमरत्व लेकर नहीं आता; क्यों डाक्टर साहब।' अनुमोदन की इच्छा से उसने डा गुप्ता की ओर देखा।

'हां श्रीकान्त जी माधवी दीदी ठीक कहती हैं। देखिये रेखा कैसी हुई जा रही है। फिर मरने वाले के साथ कोई मरता नहीं है। तुम्हारा दुख सत्य और स्वभाविक है भाई। किन्तु कर्म फल तो स्वीकार करना ही पड़ता है।

सभी के समझाने बुझाने से श्रीकान्त और रेखा ने थोड़ा थोड़ा खाया। साधारण ज़ख्म भी समय की अवधि चाहता है, फिर हृदय के इन क्षतों और आघातों को ठीक करने के लिये घन्टे और दिन नहीं वर्ष चाहियें। तिस पर यह आघात साधारण नहीं, जीवन में जब जब कोई अवसर आयेगा, मां की स्मृति सतायेगी ही।

रोने की भी परनकाष्ठा होती है। बह बह कर अश्रु भी सूख गये किन्तु मन अभी रो रहा था। रात को लेटे तो भी चतुर्दिक माँ का वही निश्छल, पवित्र, मुस्कराता मुख दीख रहा था। सहसा रेखा उठ कर बैठ गई, फटे फटे नेत्रों से इधर-उधर देखने लगी।

'भय्या !'

'क्या है बहिन ?'

'मां पुकार रही है तुमने सुना।'

रेखा की दशा बुरी हुई जा रही है। कहीं यह सदमा उसके लिये मानसिक असन्तुलन उत्पन्न न कर दे। डा० गुप्ता घबरा कर उठे। प्यार से कहा, 'कुछ भी तो नहीं है रेखा, सो जाओ।'

उन्होंने ज़बरदस्ती रेखा को लेटा दिया और स्वयं उसकी चारपाई पर बैठ गये। अनमनी सी रेखा लेट गई। तब डा० गुप्ता ने कहा, 'श्रीकान्त जी, 'आप यह आघात सहन कर सकते हैं। मैं कहता हूं कि आप बहिन के लिये पाषाण हो जाइये। नहीं तो यह उद्‌भान्त हो जायेगी।'

श्रीकान्त ने अब अपने को सम्भाला, सचमुच वह अत्यन्त दुर्बल सिद्ध हुआ है। हज़ारों बार गीता के श्लोकों का पाठ वह करता है। यह भी जानता है कि आत्मा अजर अमर है केवल यह शरीर ही आवागमन के बन्धन में बन्धता है। जान बूझ कर वह मोह में पड़ा है। डा० गुप्ता की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा, 'अब यही होगा रमेश जी।'

'भय्या नींद नहीं आ रही।' रेखा पुनः उठ बैठी।

'हम सभी जग रहे हैं बहिन। जैसे भी हो अब जीवन में हमीं को तो बढ़ना है। माता-पिता कभी किसी के आजन्म नहीं रहते। मां ने हमें कर्त्तव्य पालन की जो शिक्षा दी है उस पर चल कर हम सदा उनका आशीर्वाद पायेंगे।

'मां हमें आशीर्वाद देंगी भय्या ?'

'हां! उनका भौतिक शरीर हमारे मध्य नहीं रहा किन्तु वह पावन आत्मा सदैव हमारी सुरक्षा करेगी बहिन। अहल्या

जगत में रह कर भी मां हमें नहीं भुलायेगी। मुझे केवल एक ही दुख है मैं उनकी अन्तिम साध पूर्ण न कर सका।

करवट लेते हुए रेखा ने पति से कहा, 'आप विश्राम करिये अब, मैं सोऊंगी।'

'तुम सो जाओ मैं बैठा हूं।'

'नहीं नहीं आप लेटिये अब।'

तेरह दिन के पश्चात जाते हुए रेखा ने कहा, 'भय्या! अब जल्दी घर बसा लो नहीं तो यह घर मेरे लिये शून्य हो जायेगा।'

'यह घर तेरा वैसे ही रहेगा बहिन। हाँ मां का निःस्वार्थ प्यार शायद तेरा भय्या न दे सकेगा।'

अश्रु पूरित नेत्रों से बहिन ने भाई से विदा ली। भीतर आकर श्रीकान्त एक बार पुनः खुल कर रोया। आज वह सर्वथा एकाकी हो गया था।

३६

सांझ के दीप जल चुके थे पर सावित्री देवी मशीन चलाये जा रही थीं। कितने ही दिन से काम रुका पड़ा था। उनके अपने ब्लाउज़, बेटियों की कमीज़ें फट चुकी थीं। पास बैठी सरिता तिरपाई कर रही थी। सरिता के नेत्रों में जब धुंधलका चुभने लगा तो उसने अंगड़ाई लेकर कहा, 'मां बस कर अब, कल सही।'

'तू रहने दे, मैं तो समाप्त करके ही उठूंगी । हर रोज मशीन रखने का अवकाश ही कहां मिलता है ।'

वे और भी लग्न से मशीन चलाने लगी । सहसा गगन मन्डल धूमिल एवं रक्तिम हो उठा । कुछ क्षण इधर-उधर देख कर सरिता ने पुनः कहा, 'मां लाल आंधी शायद आ रही है । मशीन उठा दो ।'

सावित्री देवी ने भी देखा कि आसार सचमुच आंधी के हैं तो खीझ भरे भाव से उठ पड़ीं । सरिता सभी वस्तुएं सम्भालने लगी । पूरी वस्तुएं सम्भाल भी न पाई थी कि ढेरों की ढेर मिट्टी उड़ उड़ कर आंखो में पड़ने लगी । त्वरा से सावित्री देवी ने कमरों के द्वार और खिड़कियां बन्द किये । आंधी निरन्तर भयंकर रूप धारण करती जा रही थी ! वृक्ष इतने जोर से हिल रहे थे कि लगता गिरने ही वाले हैं । सावित्री देवी को परितोष की चिन्ता लगी । जाने इस विषम समय में कहां भटक रहा है । यह बच्चे कभी किसी की सुनते भी हैं । लाख समझाइये कि निकट ही खेला करो किन्तु आज क्रिकेट का मैच है तो कल फुटबाल का, हरदम खेलना ही खेलना । तड़ाक से जोर की ध्वनि हुई । कोई वृक्ष गिरा था । क्षुब्ध हो कर सावित्री देवी बोली, 'आने दो आज इसे ठीक करूंगी ।

'किसे ठीक करोगी मां ? पीछे से आकर परितोष ने कहा ।

'तुझे, और किसे ? तंग करता है दुष्ट ।' सरिता ने पीठ पर एक थपकी लगाई ।

इसी समय एक रिक्शा द्वार पर खड़ी हुई । एक युवती उतर कर शीघ्रता से भीतर आई । आते ही कहा, 'नमस्ते मौसी जी ! भाबी कहां है ?'

आश्चर्य से सावित्री देवी बोली, कौन भाबी ?'

'आपने मुझे नहीं पहचाना ? मैं कला हूं।'

'अहा ! कला बेटी है। एक बार व्याह में ही तो देखा था।' कहते हुए सावित्री देवी ने कला को आलिंगन में ले लिया।

'भीतर चलो बेटी यहां मिट्टी बहुत है।'

किन्तु उनकी बात का उत्तर न देकर कला ने पुनः प्रश्न किया—

'साधना भाबी किधर है ?'

'वह तो नारी मन्दिर में है।' सरिता ने कहा।

'बहिन क्या तू मुझे अभी वहां ले जा सकेगी ?'

'इस आँधी-तूफान में कहाँ जाओगी। प्रभात-किरण के झांकते ही मैं तुम्हें ले चलूंगी। इस समय कुछ खा-पीकर विश्राम करो।'

कला अनिच्छा से भीतर चली। उसके मुख पर घबराहट के चिन्ह थे जिन्हें वह किसी प्रकार भी छुपा नहीं पा रही थी।

सावित्री देवी ने पूछा. ' रंजीत तो ठीक है। कला पानी पानी हुई जा रही थी। सुनते ही वह सिसक पड़ी।

'क्या बात है कला, रोती क्यों हो ?'

बार बार पूछने पर भी कला न बता सकी कि रोने का कारण क्या है।

मुंह अन्धेरे ही कला उठकर तैयार हो गई। वह जल्दी से जल्दी साधना के पास पहुंचने को उतावली थी। सावित्री देवी चलने लगीं तो सरिता ने कहा, मैं भी चलुंगी। दीदी को बहुत दिन से देखा नहीं।'

तीनों ही जब नारी मन्दिर पहुंची तो पप्पु पानी का गिलास हाथ में लिये कुल्ले कर रहा था । कुरता भीग गया था और साधना उसे डांट लगा रही थी । कला ने उसे उसी अवस्था में आकर गले से लगाया और चुम्बनों की बौछार करदी : पप्पु स्तम्भित सा यह देख रहा था । फिर कला साधना से मिली, दोनों के नयन छलक रहे थे । अपने कक्ष में ले जाते हुए साधना ने पूछा, 'मेरी स्मृति कैसे हो आई कला ?'

'तुम्हें लेने आई हूं भाबी ।'

'वहाँ मेरी आवश्यकता ही क्या है ?' साधना ने बुझे स्वर में कहा ।

'आवश्यकता है तभी तो लेने आई हूं ।'

कह कर कला ने साधना को एक पत्र दे दिया । लिखाई रंजीत की थी । तो क्या यह पत्र उसे लिखा गया है । उसके हाथ कांपने लगे, हृदय की गति तीव्र तर हो गई । एक ही सांस में पत्र पढ़ डाला । पत्र उसके नाम नहीं कला के नाम था । लिखा था—

कला बहिन,

न जाने कितनी लम्बी अवधि के पश्चात तुम्हारा यह कलंकी भय्या तुम्हें पत्र लिख रहा है । कसौली के सेनिटोरियम में पड़े केवल तुम्हारी और मां की स्मृति ने मुझे व्यथित कर डाला है । मां चारपाई पर हैं और यह सब मेरे ही कुकर्मों का फल है । मेरे जैसा कपूत उत्पन्न करके उनकी कोख भी रुदन कर रही होगी । समझता था कि जीवन केवल विलासिता और उच्छृंखलता का क्रीड़ा स्थल है अतः जी भर कर निषिद्ध कर्म भी किये किन्तु आज जीवन

को अन्तिम क्षितिज रेखा पर पहुंच कर लगता है कि जो किया वह एक दम हेय था। क्या करूं, समय तो अंजलिगत जल सदृश हाथ से निकल चुका है। डेढ़ मास से यहां पड़ा हूं, चिर एकाकी। कोई भी अपना कहने को नहीं है। साधारण ज्वर भी कभी यक्ष्मा का रूप धारण कर सकता है यह कभी सोचा है तुमने। दो मास तक वहां उपचार करने के पश्चात भी अन्तर न पड़ा तो डाक्टरों की सम्यत्यानुसार यहां आ गया। दुख तो यह है कि जिसके लिये सब किया; वह भी अपनी न हो सकी। जिस दिन उसे ज्ञात हुआ कि मैं यक्ष्मा के चँगुल में हूं उसी दिन खिसक गई। तब मुझे उस पवित्र प्रतिमा की स्मृति आई जिसके जीवन का आधार प्राण और प्रकाश मैं था, केवल मैं। जो मेरे लिए जी सकती थी, मर सकती थी। किन्तु उसे कुछ लिखने का साहस मैं कैसे करूं हां ! तुम्हें लिख रहा हूं, अपनी बहिन को। यद्यपि इसका अधिकारी भी नहीं हूं, किन्तु, बहिन के प्यार की स्मृति आते ही मेरे सामने एक अथाह सागर का चित्र खिंच जाता है। यदि अपने प्यारे भाई को क्षमा दान दे सकती हो तो शायद इसी जीवन में तुम्हारे प्रिय मुख को देख सकूंगा।

तुम्हारा भाई।

पत्र की क्या प्रतिक्रिया साधना पर हुई यह कहना कुछ कठिन था। वातावरण में निस्तब्धता छाई थी। कला ने उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहा, 'मैं अभी भय्या के पास नहीं गई। जाने क्यों मुझे विश्वास है कि केवल तुम्हीं उन्हें जीवन दान दे सकती हो भाबी।'

'कला।' साधना का कण्ठ स्वर रुद्ध था वह बोल

नहीं पा रही थी। उसके हृदय में भीषण संघर्ष चल रहा था। विरोधात्मक भाव उसके मानस में तुमुल युद्ध मचा रहे थे। विषय भावों के पलड़ों पर उसका मन अस्थिर हो रहा था। कभी उसके कर्त्तव्य की भावना मूर्त होकर उसे जाने के लिए बाध्य करती तो कभी प्रतिहिंसा और हठ का दुराग्रह बढ़ जाता। उसे वे दिन स्मरण थे जब वह उस नन्हे कोमल फूल सदृश शिशु के साथ घर छोड़ने को विवश हुई थी। तब कौन बना था उसका। कोई भी उसे आश्रय न दे सका था। यदि यह नारी मन्दिर न होता तो जाने वह कहां ठोकरें खाती। अपनी असंख्य दुखी बहिनों की भांति आत्म हत्या कर लेती या कुपथ पर चलने को बाध्य होती। और अब जब वह जीवन की डगमगाती नौका को खेए खेकर, बाधाओं की दलदलों से दूर ले आई है तो उसकी आवश्यकता भी पड़ने लगी। भूमि पर दृष्टि को टिकाये वह विचार रत थी।

'क्या सोच रही हो भाबी?' कला उसकी मूकता से जैसे थक गई थी।

'कुछ भी तो निर्णय नहीं कर पा रही हूं कला।

'मैं तो कहती हूं तुम्हें चली जाना चाहिये। घर तो तुम्हारा वही है।' सावित्री देवी ने कहा।

'मां तुम चुप रहो, यह मेरा अपना प्रश्न है।' साधना के स्वर में कुछ रुक्षता थी। सावित्री देवी कुछ सकपका गई थी। कला भी निस्तब्ध सी रह गई साधना के इस व्यवहार पर। वह भाबी से अनभिज्ञ नहीं थी। साधना सहन शीलता की प्रतिमूर्ति थी। ससुराल में अत्याचार की पराकाष्ठा होने पर भी जो कभी मुख नहीं खोलती थी, यह वही साधना है। कैसे इतनी रुक्ष एवं हृदय-हीन हो गई। अनुनय पूर्ण स्वर में

कहा कला ने, 'भाबी मैं बड़ी आशा लेकर आई हूं। मुझे ज्ञात है कि भय्या की ओर से तुम पर अन्याय ही नहीं, घोर अन्याय हुआ है किन्तु मैं तुम्हें भी जानती हूं तुम इतनी हृदय-हीन हो ही नहीं सकती।'

'क्यों ? मैं देवता नहीं हूं मानवी हूं। और मानव हृदय कब राक्षस से भी दुर्दान्त और कब सुमन से भी मृदुल हो जायेगा यह केवल परिस्थितियों पर निर्भर होता है।'

'मैं सब समझती हूं किन्तु यह नहीं भूल सकती कि नारी का हृदय सदैव क्षमा शील होता है। क्षमा, दया, करुणा यह उसके ईश्वरीय अधिकार हैं। भारतीय नारी होकर तुम इसका अपवाद हो सकोगी मुझे तो विश्वास नहीं आता।'

'मुझे सोचने का समय दो कला।' साधना के मुख पर विषाद की रेखाएं घिर आई थीं। सरिता पप्पु के गीले कपड़े बदल कर ले आई, कला ने पुनः उसे लेकर चूम लिया। बच्चा आश्चर्य-चकित भाव से देखने लगा। कला बोली, 'मैं तेरी बुआ हूं बेटा।' बच्चे ने 'बुआ' शब्द नया ही सुना था किन्तु उसे लगा सरल इसलिये बार बार इसी नाम की आवृत्ति करने लगा।

दोपहर का पूरा वक्त सबने नारी मन्दिर में व्यतीत किया। इस अस्थिर स्थिति में सावित्री देवी किसी प्रकार भी घर न जा सकीं। उन्हें साधना पर ही गुस्सा आ रहा था। लड़की कितनी हठी हो गई है। इसका दिमाग़ फिर गया है। इसे सद्-असद् का विवेक ही नहीं रहा। चार बजे माधवी नारी मन्दिर में निरीक्षणार्थ आई तो देखा कि साधना के कक्ष में खूब जमघट लगा है। कला का वहां उपस्थित होना सर्वथा आशातीत था। उसके नमस्कार करने पर विस्मय से

माधवी ने पूछा, 'कला तुम कब आई ?' 'आज ही दीदी......
कला कुछ बात करे इससे पूर्व ही साधना किसी कार्य के
बहाने माधवी को बाहर ले गई और सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट
करते हुए माधवी की राय पूछी । किन्तु माधवी की राय
जैसे स्वयं ही साधना के सम्मुख स्पष्ट हो उठी । उसके मन
ने कहा– साधना माधवी के संसर्ग में रह कर भी तू क्या
सीखी । प्रेम निबाहने के लिये उसने समस्त भौतिक सुखों
को तिलांजलि दे दी और तू कर्त्तव्य निर्वाह के लिये आनाकानी
कर रही है । अन्ततः रंजीत तेरा पति है । तभी माधवी
का स्वर कानों में घन्टी के सामान गूंज उठा । माधवी कह
रही थी, 'अत्याचार का प्रश्न होता तो मैं तुम्हें कभी नत
होने के लिये न कहती किन्तु अब तो स्थिति ही और है
साध । अग्नि को साक्षी देकर तुमने उसे पति रूप में स्वीकार
किया है । हम लोग कितना ही करें पाश्चात्य देशों की
भांति हमारा अन्तर्मन कभी पुरातन परम्पराओं और
संस्कारों से मुक्त नहीं हो सकता । उन देशों में विवाह
विच्छेद और द्वितीय विवाह सहज सरल हो सकता है किन्तु
तुम स्वयं से ही पूछो कि क्या तुम सरलता से ऐसा कर
सकोगी ?'

साधना के नेत्रों के सम्मुख आलोक घूम गया । वह सत्य
हो ऐसा करने की दुष्कल्पना भी नहीं कर सकती । इसमें
सन्देह नहीं कि यहां भी पुरुष के अत्याचार के विरुद्ध प्रति-
क्रिया हुई और ऐसे नियम एवं विधान बने किन्तु एक पति
के जीवित रहते द्वितीय विवाह की कल्पना भी भारतीय
नारी कभी नहीं कर सकती चाहे जीवन भर ही घुलना और
जलना क्यों न पड़े । उसने पूछा, 'तो मैं चली जाऊं दीदी ?'

दोनों पुनः सावित्री देवी तथा कला के निकट आईं। साधना का निर्णय सुन कर कला का उदास चेहरा खिल उठा। उसने साधना को भावोद्वेग की दशा में गले से लगा लिया। शाम को सात बजे की गाड़ी से चलने का कार्यक्रम बना। शीघ्रता से साधना ने अपनी वस्तुएँ समेटीं। पप्पु के कपड़े जब वह अटैची में डालने लगी तो माधवी ने कहा, 'इसे मेरे पास छोड़ जाओ, कहां ले जाओगीं सेनी टोरियम में।'

'यदि भय्या देखना चाहेंगे तो......?' कला ने कहा।

'तो मैं स्वयं इसे ले आऊंगी वहां।'

साधना कभी शिशु से विलग नहीं हुई थी। उसका दिल डूबा जा रहा था। तिस पर वियोग और दुख के क्षणों में केवल वही उसका सम्बल रहा था इससे कुछ मोह भी अधिक था। परन्तु माधवी का प्रस्ताव भी अनुचित न था। एक तो ऐसे अस्पतालों में बच्चों को ले जाना भी ठीक नहीं, दूसरे परदेश में अपने ठहरने की ही कठिनाई होगी।

जैसे ही साधना को छोड़ने के लिये माधवी इत्यादि स्टेशन के प्लेट फार्म पर पहुंची कि श्रीकान्त को टहलते पाया। थोड़ी ही दूर कुली उसका सामान लेकर बैठा था। आज प्रातः ही श्रीकान्त माधवी से मिलने आया था जाने की तो कोई बात ही नहीं थी। श्रीकान्त भी इन्हें देखते ही निकट आ गया।

'कहां जा रहे हैं श्रीकान्त भाई?'

'जहां भाग्य ले जाये।' अनमन्यस्क भाव से श्रीकान्त बोला।

'सुबह तक तो यात्रा का कोई विचार न था।'

'एका एक बन गया दीदी, मां के न रहने से घर में कोई आकर्षण ही नहीं दीखता। मन और मस्तिष्क दोनों का सन्तुलन जा रहा था। सोचा बाहर ही हो आऊं। शायद कुछ स्थिरता मिल जाये। आप कैसे आई हैं,।' इसके साथ ही श्रीकान्त ने साधना की ओर देखा। वह अत्यन्त क्लान्त सी दीख रही थी।

'साधना जा रही है, इसके पति अस्वस्थ हैं। आप कब लौटेंगे' ?

'कुछ कह नहीं सकता, जाने आऊँ या न आऊं।'

'ऐसी बेरुखी भी क्या अच्छी होती है ? साधना तो खैर लड़की है उसका जाना तो अवश्यभावी है किन्तु श्रीकान्त भाई आपको तो यह अच्छा नहीं लगता। आपको स्मरण है आपने सदैव के लिये मेरे उद्देश्य में सहयोग का वचन दिया था।

'स्मरण तो है, कुछ देर घूम आने दीजिये, अधिक स्वस्थ मन लेकर लौटूँगा। जीवन का कुछ भी तो निश्चित नहीं है। घूमते हुए नक्षत्रों को देख कर मुझे लगता हैं कि हम सब भी घूमते नक्षत्र हैं माधवी दीदी, कहीं मिल जाते हैं और किसी रेखा पर विलग हो जायेंगे। हमारे पथ में कहां क्या जायेगा नाश या विकास, प्रकाश या अन्धकार कुछ भी निश्चित नहीं।

'फिर भी हमें इन नक्षत्रों की भाँति अपना अस्तित्व स्थिर रखना है श्रीकान्त भाई। सूर्य चन्द्र की भाँति कोई ज्योति की सराहना करता है या नहीं इसकी चिन्ता इन नक्षत्रों को नहीं होती।'

गाड़ी का समय हो गया था। साधना और कला का

सामान स्त्रियों के डिब्बे में रख दिया गया । सावित्री देवी बेटी से गले मिली और भरे गले से कहा, 'तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड रहे बेटी ।'

'तुम्हारा आशीर्वाद सार्थक हो मां ।'

माधवी की शुभकामनाओं से लद कर साधना गाड़ी में जा बैठी । माधवी ने कहा, 'वहां पहुंचते ही सूचना देना ।'

'अच्छा दीदी ।'

श्रीकान्त भी सब को अभिवादन करके अपने डिब्बे में जा बैठा । गाड़ी प्लेट फ़ार्म से सरकने लगी । माधवी दूर तक हाथ हिला कर साधना का अभिवादन करती रही । जब गाड़ी नेत्रों से ओझल हो गई तो माधवी घूम पड़ी । सांझ की धूमिलता में असंख्य नन्हें २ नक्षत्र टिमटिमा रहे थे । माधवी के कानों में श्रीकान्त के शब्द गूंज रहे थे–हम सब घूमते नक्षत्र हैं, जो कभी मिलते हैं कभी विलग होते हैं । *as*